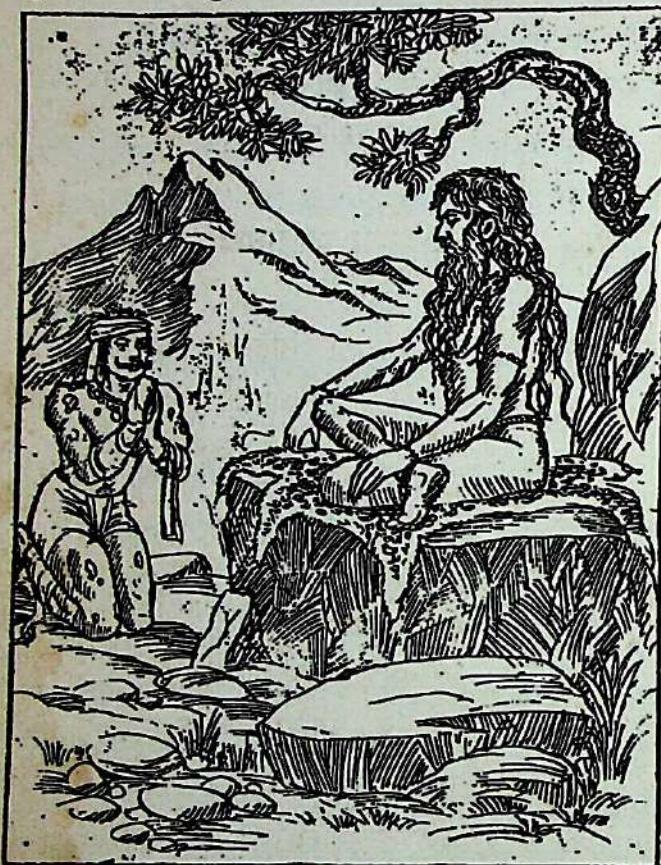


समयका ज्ञान ही नहीं रहा; अतः राजाधिराज कुबेरने कुपित होकर मुझे शाप दे दिया, जिससे मैं कोढ़से



आक्रान्त होकर अपनी प्रियतमासे बिछुड़ गया। मुनि-श्रेष्ठ ! इस समय किसी शुभ कर्मके प्रभावसे मैं आपके निकट आ पहुँचा हूँ। संतोंका चित्त स्वभावतः परोपकारमें लगा रहता है, यह जानकर मुझ अपराधीको कर्तव्यका उपदेश दीजिये ।

मार्कण्डेयजीने कहा—तुमने यहाँ सच्ची बात कही है, असत्य-भाषण नहीं किया है; इसलिये मैं तुम्हें कल्याणप्रद व्रतका उपदेश करता हूँ। तुम आषाढ़के कृष्णपक्षमें 'योगिनी' एकादशीका व्रत करो। इस व्रतके पुण्यसे तुम्हारी कोढ़ निश्चय ही दूर हो जायगी ।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—ऋषिके ये वचन सुनकर हेममाली दण्डकी भाँति मुनिके चरणोंमें पड़ गया। मुनिने उसे उठाया, इससे उसको बड़ा हर्ष हुआ। मार्कण्डेयजीके उपदेशसे उसने योगिनी एकादशीका व्रत किया, जिससे उसके शरीरकी कोढ़ दूर हो गयी। मुनिके कथनानुसार उस उत्तम व्रतका अनुष्ठान करनेपर वह पूर्ण सुखी हो गया। नृपश्रेष्ठ ! यह योगिनीका व्रत ऐसा ही

बताया गया है। जो अद्वासी हजार ब्राह्मणोंको भोजन करता है, उसके समान ही फल उस मनुष्यको भी मिलता है, जो योगिनी एकादशीका व्रत करता है। 'योगिनी' महान् पापोंको शान्त करनेवाली और महान् पुण्य-फल देनेवाली है। इसके पढ़ने और सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! आषाढ़के शुक्ल-पक्षमें कौन-सी एकादशी होती है ? उसका नाम और विधि क्या है ? यह बतलानेकी कृपा करें ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! आषाढ़ शुक्लपक्षकी एकादशीका नाम 'शयनी' है। मैं उसका वर्णन करता हूँ। वह महान् पुण्यमयी, स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली, सब पापोंको हरनेवाली तथा उत्तम व्रत है। आषाढ़ शुक्लपक्षमें शयनी एकादशीके दिन जिन्होंने कमल-पुष्पसे कमललोचन भगवान् विष्णुका पूजन तथा एकादशीका उत्तम व्रत किया है, उन्होंने तीनों लोकों और तीनों सनातन देवताओंका पूजन कर लिया। हरिशयनी एकादशीके दिन मेरा एक स्वरूप राजा बलिके यहाँ रहता है और दूसरा क्षीरसागरमें शेषनागकी शय्यापर तबतक शयन करता है, जबतक आगामी कार्तिककी एकादशी नहीं आ जाती; अतः आषाढ़शुक्ला एकादशीसे लेकर कार्तिकशुक्ला एकादशीतक मनुष्यको भलीभाँति धर्मका आचरण करना चाहिये। जो मनुष्य इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है, इस कारण यलपूर्वक इस एकादशीका व्रत करना चाहिये। एकादशीकी रातमें जागरण करके शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णुकी भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेवाले पुरुषके पुण्यकी गणना करनेमें चतुर्मुख ब्रह्माजी भी असमर्थ हैं। राजन् ! जो इस प्रकार भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले सर्वपापहारी एकादशीके उत्तम व्रतका पालन करता है, वह जातिका चाप्डाल होनेपर भी संसारमें सदा मेरा प्रिय करनेवाला है। जो मनुष्य दीपदान, पलाशके पत्तेपर भोजन और व्रत करते हुए चौमासा व्यतीत करते हैं, वे मेरे प्रिय हैं। चौमासेमें भगवान् विष्णु सोये रहते हैं; इसलिये मनुष्यको भूमिपर



COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

शयन करना चाहिये। सावनमें साग, भादोमें दही, कारमें दूध और कार्तिकमें दालका त्याग कर देना चाहिये।* अथवा जो चौमासेमें ब्रह्मचर्यका पालन करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। राजन्! एकादशीके व्रतसे ही मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है; अतः सदा इसका

व्रत करना चाहिये। कभी भूलना नहीं चाहिये। 'शयनी' और 'बोधिनी'के बीचमें जो कृष्णपक्षकी एकादशियाँ होती हैं, गृहस्थके लिये वे ही व्रत रखने योग्य हैं—अन्य मासोंकी कृष्णपक्षीय एकादशी गृहस्थके रखने योग्य नहीं होती। शुक्लपक्षकी एकादशी सभी करनी चाहिये।



श्रावणमासकी 'कामिका' और 'पुत्रदा' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—गोविन्द! वासुदेव! आपको नमस्कार है! श्रावणके कृष्णपक्षमें कौन-सी एकादशी होती है? उसका वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! सुनो, मैं तुम्हें एक पापनाशक उपाख्यान सुनाता हूँ, जिसे पूर्वकालमें ब्रह्माजीने नारदजीके पूछनेपर कहा था।

नारदजीने प्रश्न किया—भगवन्! कमलासन! मैं आपसे यह सुनना चाहता हूँ कि श्रावणके कृष्णपक्षमें जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है, उसके कौन-से देवता हैं तथा उससे कौन-सा पुण्य होता है? प्रभो! यह सब बताइये।

ब्रह्माजीने कहा—नारद! सुनो—मैं सम्पूर्ण लोकोंके हितकी इच्छासे तुम्हारे प्रश्नका उत्तर दे रहा हूँ। श्रावणमासमें जो कृष्णपक्षकी एकादशी होती है, उसका नाम 'कामिका' है; उसके स्मरणमात्रसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है। उस दिन श्रीधर, हरि, विष्णु, माधव और मधुसूदन आदि नामोंसे भगवान्‌का पूजन करना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णके पूजनसे जो फल मिलता है, वह गङ्गा, काशी, नैमिषारण्य तथा पुष्कर क्षेत्रमें भी सुलभ नहीं है। सिंहराशिके बृहस्पति होनेपर तथा व्यतीपात और दण्डयोगमें गोदावरीस्नानसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही फल भगवान् श्रीकृष्णके पूजनसे भी मिलता है। जो समुद्र और वनस्थित समूची पृथ्वीका दान करता है तथा जो कामिका एकादशीका व्रत करता है, वे दोनों समान फलके भागी माने गये हैं। जो व्यायी

हुई गायको अन्यान्य सामग्रियोंसहित दान करता है, उस मनुष्यको जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही 'कामिका'का व्रत करनेवालेको मिलता है। जो नरश्रेष्ठ श्रावणमासमें भगवान् श्रीधरका पूजन करता है, उसके द्वारा गन्धवें और नागोंसहित सम्पूर्ण देवताओंकी पूजा हो जाती है; अतः पापभीरु मनुष्योंको यथाशक्ति पूरा प्रयत्न करके 'कामिका'के दिन श्रीहरिका पूजन करना चाहिये। जो पापरूपी पङ्क्षसे भरे हुए संसारसमुद्रमें डूब रहे हैं, उनके उद्धार करनेके लिये कामिकाका व्रत सबसे उत्तम है अध्यात्मविद्यापरायण पुरुषोंको जिस फलकी प्राप्ति होती है; उससे बहुत अधिक फल 'कामिका' व्रतका सेवन करनेवालोंको मिलता है। 'कामिका'का व्रत करनेवाल मनुष्य रात्रिमें जागरण करके न तो कभी भयङ्कर यमराजका दर्शन करता है और न कभी दुर्गतिमें हपड़ता है।

लाल मणि, मोती, वैदूर्य और मूँगे आदिसे पूजि होकर भी भगवान् विष्णु वैसे संतुष्ट नहीं होते, जैसे तुलसीदलसे पूजित होनेपर होते हैं। जिसने तुलसीब मञ्जरियोंसे श्रीकेशवका पूजन कर लिया है; उस जन्मधरका पाप निश्चय ही नष्ट हो जाता है। जो दश करनेपर सारे पापसमुदायका नाश कर देती है, स्पर्श करनेपर शरीरको पवित्र बनाती है, प्रणाम करने रोगोंका निवारण करती है, जलसे सींचनेपर यमराज भी भय पहुँचाती है, आरोपित करनेपर भगवान् श्रीकृष्णके समीप ले जाती है और भगवान्‌के चरण-

* श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधि भाद्रपदे तथा ॥ दुर्घमाशयुजि त्यज्यं कार्तिके द्विदलं त्यजेत् । (५५। ३३-३४)

चढ़ानेपर मोक्षरूपी फल प्रदान करती है, उस तुलसी देवीको नमस्कार है।* जो मनुष्य एकादशीको दिन-रात दीपदान करता है, उसके पुण्यकी संख्या चित्रगुप्त भी नहीं जानते। एकादशीके दिन भगवान् श्रीकृष्णके सम्मुख जिसका दीपक जलता है, उसके पितर स्वर्गलोकमें स्थित होकर अमृतपानसे तृप्त होते हैं। घी अथवा तिलके तेलसे भगवान्के सामने दीपक जलाकर मनुष्य देह-त्यागके पश्चात् करोड़ों दीपकोंसे पूजित हो स्वर्गलोकमें जाता है।

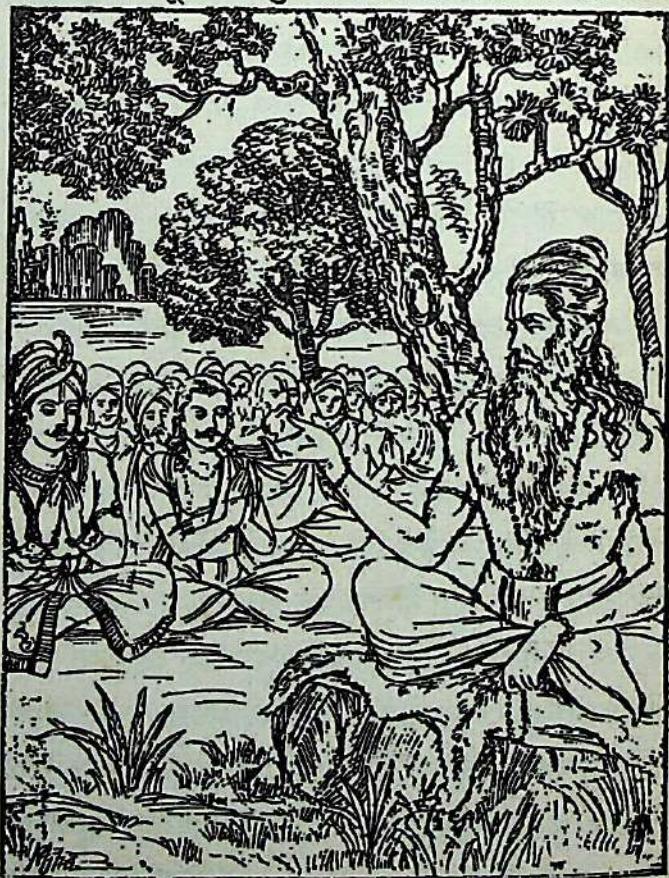
भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—युधिष्ठिर ! यह तुम्हारे सामने मैंने कामिका एकादशीकी महिमाका वर्णन किया है। 'कामिका' सब पातकोंको हरनेवाली है; अतः मानवोंको इसका व्रत अवश्य करना चाहिये। यह स्वर्गलोक तथा महान् पुण्यफल प्रदान करनेवाली है। जो मनुष्य श्रद्धाके साथ इसका माहात्म्य श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुलोकमें जाता है।

युधिष्ठिरने पूछा—मधुसूदन ! श्रावणके शुक्रपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है? कृपया मेरे सामने उसका वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! प्राचीन कालकी बात है, द्वापर युगके प्रारम्भका समय था, माहिष्मतीपुरमें राजा महीजित् अपने राज्यका पालन करते थे, किन्तु उन्हें कोई पुत्र नहीं था; इसलिये वह राज्य उन्हें सुखदायक नहीं प्रतीत होता था। अपनी अवस्था अधिक देख राजाको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने प्रजावर्गमें बैठकर इस प्रकार कहा—'प्रजाजनो ! इस जन्ममें मुझसे कोई पातक नहीं हुआ। मैंने अपने खजानेमें अन्यायसे कमाया हुआ धन नहीं जमा किया है। ब्राह्मणों और देवताओंका धन भी मैंने कभी नहीं लिया है। प्रजाका पुत्रवत् पालन किया, धर्मसे पृथ्वीपर अधिकार जमाया तथा दुष्टोंको, वे बन्धु और पुत्रोंके समान ही क्यों न रहे हों, दण्ड दिया है। शिष्ट पुरुषोंका सदा सम्मान

किया और किसीको द्वेषका पात्र नहीं समझा। फिर क्या कारण है, जो मेरे घरमें आजतक पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। आपलोग इसका विचार करें।'

राजाके ये वचन सुनकर प्रजा और पुरोहितोंके साथ ब्राह्मणोंने उनके हितका विचार करके गहन वनमें प्रवेश किया। राजाका कल्याण चाहनेवाले वे सभी लोग इधर-उधर धूमकर ऋषिसेवित आश्रमोंकी तलाश करने लगे। इतनेहीमें उन्हें मुनिश्रेष्ठ लोमशका दर्शन हुआ। लोमशजी धर्मके तत्त्वज्ञ, सम्पूर्ण शास्त्रोंके विशिष्ट विद्वान् दीर्घायु और महात्मा हैं। उनका शरीर लोमसे भरा हुआ है। वे ब्रह्माजीके समान तेजस्वी हैं। एक-एक कल्प बीतनेपर उनके शरीरका एक-एक लोम विशीर्ण होता—टूटकर गिरता है; इसीलिये उनका नाम लोमश हुआ है। वे महामुनि तीनों कालोंकी बातें जानते हैं। उन्हें देखकर सब लोगोंको बड़ा हर्ष हुआ। उन्हें निकट आया देख लोमशजीने पूछा—'तुम सब लोग किसलिये यहाँ आये



* या दृष्टा निखिलावसंघशमनी सृष्टा वपुष्पावनी रोगाणामभिवन्दिता निरसनी सिक्कान्तकत्रासिनी।

प्रल्यासत्तिविधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरेपिता न्यस्ता तद्वरणे विमुक्तिफलदा तस्य तुलस्यै नमः ॥ (५६ । २२)

हो ? अपने आगमनका कारण बताओ। तुमलोगोंके लिये जो हितकर कार्य होगा, उसे मैं अवश्य करूँगा।

प्रजाओंने कहा—ब्रह्मन् ! इस समय महीजित् नामवाले जो राजा हैं, उन्हें कोई पुत्र नहीं है। हमलोग उन्हींकी प्रजा हैं, जिनका उन्होंने पुत्रकी भाँति पालन किया है। उन्हें पुत्रहीन देख, उनके दुःखसे दुःखित हो हम तपस्या करनेका दृढ़ निश्चय करके यहाँ आये हैं। द्विजोत्तम ! राजाके भाग्यसे इस समय हमें आपका दर्शन मिल गया है। महापुरुषोंके दर्शनसे ही मनुष्योंके सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं। मुने ! अब हमें उस उपायका उपदेश कीजिये, जिससे राजाको पुत्रकी प्राप्ति हो।

उनकी बात सुनकर महर्षि लोमश दो घड़ीतक ध्यानमग्र हो गये। तत्पश्चात् राजाके प्राचीन जन्मका वृत्तान्त जानकर उन्होंने कहा—‘प्रजावृन्द ! सुनो—राजा महीजित् पूर्वजन्ममें मनुष्योंको चूसनेवाला धनहीन वैश्य था। वह वैश्य गाँव-गाँव घूमकर व्यापार किया करता था। एक दिन जेठके शुक्लपक्षमें दशमी तिथिको, जब दोपहरका सूर्य तप रहा था, वह गाँवकी सीमामें एक जलाशयपर पहुँचा। पानीसे भरी हुई बावली देखकर वैश्यने वहाँ जल पीनेका विचार किया। इतनेहीमें वहाँ बछड़ेके साथ एक गौ भी आ पहुँची। वह घ्याससे

व्याकुल और तापसे पीड़ित थी; अतः बावलीमें जाकर जल पीने लगी। वैश्यने पानी पीती हुई गायको हाँककर दूर हटा दिया और स्वयं पानी पीया। उसी पाप-कर्मके कारण राजा इस समय पुत्रहीन हुए हैं। किसी जन्मके पुण्यसे इन्हें अकण्टक राज्यकी प्राप्ति हुई है।’

प्रजाओंने कहा—मुने ! पुराणमें सुना जाता है कि प्रायश्चित्तरूप पुण्यसे पाप नष्ट होता है; अतः पुण्यका उपदेश कीजिये, जिससे उस पापका नाश हो जाय।

लोमशजी बोले—प्रजाजनो ! श्रावण मासके शुक्लपक्षमें जो एकादशी होती है, वह ‘पुत्रदा’के नामसे विख्यात है। वह मनोवाञ्छित फल प्रदान करनेवाली है। तुमलोग उसीका व्रत करो।

यह सुनकर प्रजाओंने मुनिको नमस्कार किया और नगरमें आकर विधिपूर्वक पुत्रदा एकादशीके व्रतका अनुष्ठान किया। उन्होंने विधिपूर्वक जागरण भी किया और उसका निर्मल पुण्य राजाको दे दिया। तत्पश्चात् रानीने गर्भ धारण किया और प्रसवका समय आनेपर बलवान् पुत्रको जन्म दिया।

इसका महात्म्य सुनकर मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है तथा इहलोकमें सुख पाकर परलोकमें स्वर्गीय गतिको प्राप्त होता है।



भाद्रपद मासकी 'अजा' और 'पद्मा' एकादशीका महात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—जनार्दन ! अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि भाद्रपद मासके कृष्णपक्षमें कौन-सी एकादशी होती है ? कृपया बताइये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! एकचित्त होकर सुनो। भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी एकादशीका नाम 'अजा' है, वह सब पापोंका नाश करनेवाली बतायी गयी है। जो भगवान् हृषीकेशका पूजन करके इसका व्रत करता है, उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। पूर्वकालमें हरिश्चन्द्र नामक एक विख्यात चक्रवर्ती राजा हो गये हैं, जो समस्त भूमप्दलके स्वामी और सत्यप्रतिज्ञ थे। एक समय किसी कर्मका फलभोग प्राप्त होनेपर उन्हें

राज्यसे भ्रष्ट होना पड़ा। राजाने अपनी पत्नी और पुत्रको बेचा। फिर अपनेको भी बेच दिया। पुण्यात्मा होते हुए भी उन्हें चाढ़ालकी दासता करनी पड़ी। वे मुर्देंव कफन लिया करते थे। इतनेपर भी नृपश्रेष्ठ हरिश्चन्द्रसत्यसे विचलित नहीं हुए। इस प्रकार चाढ़ालव दासता करते उनके अनेक वर्ष व्यतीत हो गये। इस राजाको बड़ी चिन्ता हुई। वे अत्यन्त दुःखी होकर सोच लगे—‘क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कैसे मेरा उद्ध होगा ?’ इस प्रकार चिन्ता करते-करते वे शोक समुद्रमें डूब गये। राजाको आतुर जानकर कोई मृत्युनके पास आये, वे महर्षि गौतम थे। श्रेष्ठ ब्राह्मण

आया देख नृपश्रेष्ठने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और दोनों हाथ जोड़ गौतमके सामने खड़े होकर अपना सारा दुःखमय समाचार कह सुनाया। राजाकी बात सुनकर गौतमने कहा—‘राजन्! भादोंके कृष्णपक्षमें अत्यन्त कल्याणमयी ‘अजा’ नामकी एकादशी आ रही है, जो पुण्य प्रदान करनेवाली है। इसका व्रत करो। इससे पापका अन्त होगा। तुम्हारे भाग्यसे आजके सातवें दिन एकादशी है। उस दिन उपवास करके रातमें जागरण करना।’

ऐसा कहकर महर्षि गौतम अन्तर्धान हो गये। मुनिकी बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्रने उस उत्तम व्रतका अनुष्ठान किया। उस व्रतके प्रभावसे राजा सारे दुःखोंसे पार हो गये। उन्हें पलीका सत्रिधान और पुत्रका जीवन मिल गया। आकाशमें दुन्दुभियाँ बज उठीं। देवलोकसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। एकादशीके प्रभावसे राजाने अकण्टक राज्य प्राप्त किया और अन्तमें वे पुरजन तथा परिजनोंके साथ स्वर्गलोकको प्राप्त हो गये। राजा युधिष्ठिर ! जो मनुष्य ऐसा व्रत करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें जाते हैं। इसके पढ़ने और सुननेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है।

युधिष्ठिरने पूछा—केशव ! भाद्रपद मासके शुक्लपक्षमें जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम, कौन देवता और कैसी विधि है ? यह बताइये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! इस विषयमें मैं तुम्हें आश्र्यजनक कथा सुनाता हूँ; जिसे ब्रह्माजीने महात्मा नारदसे कहा था।

नारदजीने पूछा—चतुर्मुख ! आपको नमस्कार है। मैं भगवान् विष्णुकी आराधनाके लिये आपके मुखसे यह सुनना चाहता हूँ कि भाद्रपद मासके शुक्लपक्षमें कौन-सी एकादशी होती है ?

ब्रह्माजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! तुमने बहुत उत्तम बात पूछी है। क्यों न हो, वैष्णव जो ठहरे। भादोंके शुक्लपक्षकी एकादशी ‘पद्मा’ के नामसे विरस्त है। उस दिन भगवान् हृषीकेशकी पूजा होती है। यह उत्तम व्रत अवश्य करने योग्य है।

सूर्यवंशमें मान्धाता नामक एक चक्रवर्ती, सत्य-प्रतिज्ञ और प्रतापी राजर्षि हो गये हैं। वे प्रजाका अपने औरस पुत्रोंकी धाँति धर्मपूर्वक पालन किया करते थे। उनके राज्यमें अकाल नहीं पड़ता था, मानसिक चिन्ताएँ नहीं सताती थीं और व्याधियोंका प्रकोप भी नहीं होता था। उनकी प्रजा निर्भय तथा धन-धान्यसे समृद्ध थी। महाराजके कोषमें केवल न्यायोपार्जित धनका ही संग्रह था। उनके राज्यमें समस्त वर्णों और आश्रमोंके लोग अपने-अपने धर्ममें लगे रहते थे। मान्धाताके राज्यकी भूमि कामधेनुके समान फल देनेवाली थी। उनके राज्य करते समय प्रजाको बहुत सुख प्राप्त होता था। एक समय किसी कर्मका फलभोग प्राप्त होनेपर राजाके राज्यमें तीन वर्षोंतक वर्षा नहीं हुई। इससे उनकी प्रजा भूखसे पीड़ित हो नष्ट होने लगी; तब सम्पूर्ण प्रजाने महाराजके पास आकर इस प्रकार कहा—

प्रजा बोली—नृपश्रेष्ठ ! आपको प्रजाकी बात सुननी चाहिये। पुराणोंमें मनीषी पुरुषोंने जलको ‘नारा’ कहा है; वह नारा ही भगवान्का अयन—निवासस्थान है; इसलिये वे नारायण कहलाते हैं। नारायणस्वरूप भगवान् विष्णु सर्वत्र व्यापकरूपमें विराजमान हैं। वे ही मेघस्वरूप होकर वर्षा करते हैं, वर्षासे अन्न पैदा होता है और अन्नसे प्रजा जीवन धारण करती है। नृपश्रेष्ठ ! इस समय अन्नके बिना प्रजाका नाश हो रहा है; अतः ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे हमारे योगक्षेमका निर्वाह हो।

राजाने कहा—आपलोगोंका कथन सत्य है, क्योंकि अन्नको ब्रह्म कहा गया है। अन्नसे प्राणी उत्पन्न होते हैं और अन्नसे ही जगत् जीवन धारण करता है। लोकमें बहुधा ऐसा सुना जाता है तथा पुराणमें भी बहुत विस्तारके साथ ऐसा वर्णन है कि राजाओंके अत्याचारसे प्रजाको पीड़ा होती है; किन्तु जब मैं बुद्धिसे विचार करता हूँ तो मुझे अपना किया हुआ कोई अपराध नहीं दिखायी देता। फिर भी मैं प्रजाका हित करनेके लिये पूर्ण प्रयत्न करूँगा।

ऐसा निश्चय करके राजा मान्धाता इने-गिने व्यक्तियोंको साथ ले विधाताको प्रणाम करके सघन

वनकी ओर चल दिये। वहाँ जाकर मुख्य-मुख्य मुनियों और तपस्वियोंके आश्रमोंपर घूमते फिरे। एक दिन उन्हें ब्रह्मपुत्र अङ्गिरा ऋषिका दर्शन हुआ। उनपर दृष्टि पड़ते ही राजा हर्षमें भरकर अपने वाहनसे उत्तर पड़े और इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया। मुनिने भी 'स्वस्ति' कहकर राजाका अभिनन्दन किया और उनके राज्यके सातों अङ्गोंकी कुशल पूछी। राजाने अपनी कुशल बताकर मुनिके स्वास्थ्यका समाचार पूछा। मुनिने राजाको आसन और अर्थ्य दिया। उन्हें ग्रहण करके जब वे मुनिके संमीप बैठे तो उन्होंने इनके आगमनका कारण पूछा।

तब राजाने कहा—भगवन्! मैं धर्मानुकूल प्रणालीसे पृथ्वीका पालन कर रहा था। फिर भी मेरे राज्यमें वर्षाका अभाव हो गया। इसका क्या कारण है इस बातको मैं नहीं जानता।

ऋषि बोले—राजन्! यह सब युगोंमें उत्तम सत्ययुग है। इसमें सब लोग परमात्माके चिन्तनमें लगे रहते हैं। तथा इस समय धर्म अपने चारों चरणोंसे युक्त होता है। इस युगमें केवल ब्राह्मण ही तपस्वी होते हैं, दूसरे लोग नहीं। किन्तु महाराज ! तुम्हारे राज्यमें यह शूद्र तपस्या करता है; इसी कारण मेघ पानी नहीं बरसाते। तुम इसके प्रतीकारका यत्न करो; जिससे यह अनावृष्टिका दोष शान्त हो जाय।

राजाने कहा—मुनिवर ! एक तो यह तपस्यामें लगा है, दूसरे निरपराध है; अतः मैं इसका अनिष्ट नहीं करूँगा। आप उक्त दोषको शान्त करनेवाले किसी धर्मका उपदेश कीजिये।

ऋषि बोले—राजन्! यदि ऐसी बात है तो पापोंसे मुक्त हो जाता है।



आश्विन मासकी 'इन्दिरा' और 'पापाङ्कुशा' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—मधुसूदन ! कृपा करके मुझे यह बताइये कि आश्विनके कृष्णपक्षमें कौन-सी एकादशी होती है ?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! आश्विन

एकादशीका व्रत करो। भाद्रपद मासके शुक्लपक्षमें जो 'पद्मा' नामसे विख्यात एकादशी होती है, उसके व्रतके प्रभावसे निश्चय ही उत्तम वृष्टि होगी। नरेश ! तुम अपनी प्रजा और परिजनोंके साथ इसका व्रत करो।

ऋषिका यह वचन सुनकर राजा अपने घर लौट आये। उन्होंने चारों वर्णोंको समस्त प्रजाओंके साथ भादोंके शुक्लपक्षकी 'पद्मा' एकादशीका व्रत किया। इस प्रकार व्रत करनेपर मेघ पानी बरसाने लगे। पृथ्वी जलसे आप्लावित हो गयी और हरी-भरी खेतीसे सुशोभित होने लगी। उस व्रतके प्रभावसे सब लोग सुखी हो गये।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन् ! इस कारण इस उत्तम व्रतका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। 'पद्मा' एकादशीके दिन जलसे भरे हुए घड़ेको वस्त्रसे ढँककर दही और चावलके साथ ब्राह्मणको दान देना चाहिये, साथ ही छाता और जूता भी देने चाहिये। दान करते समय निप्राङ्गित मन्त्रका उच्चारण करे—

नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक ॥
अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ।
भुक्तिमुक्तिप्रदश्वैव लोकानां सुखदायकः ॥

(५९। ३८-३९)

[बुधवार और श्रवण नक्षत्रके योगसे युक्त द्वादशीके दिन] बुद्धश्रवण नाम धारण करनेवाले भगवान् गोविन्द ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है; मेरी पापराशिका नाश करके आप मुझे सब प्रकारके सुख प्रदान करें। आप पुण्यात्माजनोंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले तथा सुखदायक हैं।'

राजन् ! इसके पढ़ने और सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

कृष्णपक्षमें 'इन्दिरा' नामकी एकादशी होती है, उसके व्रतके प्रभावसे बड़े-बड़े पापोंका नाश हो जाता है। नीचे योनिमें पड़े हुए पितरोंको भी यह एकादशी सद्वत्ति देनेवाली हैं।

राजन् ! पूर्वकालकी बात है, सत्ययुगमें इन्द्रसेन नामसे विख्यात राजकुमार थे, जो अब माहिष्मतीपुरीके राजा होकर धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते थे। उनका यश सब ओर फैल चुका था। राजा इन्द्रसेन भगवान् विष्णुकी भक्तिमें तत्पर हो गोविन्दके मोक्षदायक नामोंका जप करते हुए समय व्यतीत करते थे और विधिपूर्वक अध्यात्मतत्त्वके चिन्तनमें संलग्न रहते थे। एक दिन राजा राजसभामें सुखपूर्वक बैठे हुए थे, इतनेहीमें देवर्षि नारद आकाशसे उतरकर वहाँ आ पहुँचे। उन्हें आया देख राजा हाथ जोड़कर खड़े हो गये और विधिपूर्वक पूजन करके उन्हें आसनपर बिठाया, इसके बाद वे इस प्रकार बोले—‘मुनिश्रेष्ठ ! आपकी कृपासे मेरी सर्वथा कुशल



है। आज आपके दर्शनसे मेरी सम्पूर्ण यज्ञ-क्रियाएँ सफल हो गयीं। देवर्षे ! अपने आगमनका कारण बताकर मुझपर कृपा करें।’

नारदजीने कहा—नृपश्रेष्ठ ! सुनो, मेरी बात तुम्हें आश्चर्यमें डालनेवाली है, मैं ब्रह्मलोकसे यमलोकमें आया था, वहाँ एक श्रेष्ठ आसनपर बैठा और यमराजने मेरी भक्तिपूर्वक पूजा की। उस समय यमराजकी सभामें

मैंने तुम्हारे पिताको भी देखा था। वे ब्रतभंगके दोषसे वहाँ आये थे। राजन् ! उन्होंने तुमसे कहनेके लिये एक सन्देश दिया है, उसे सुनो। उन्होंने कहा है, ‘बेटा ! मुझे ‘इन्दिरा’ के ब्रतका पुण्य देकर स्वर्गमें भेजो।’ उनका यह सन्देश लेकर मैं तुम्हारे पास आया हूँ। राजन् ! अपने पिताको स्वर्गलोककी प्राप्ति करानेके लिये ‘इन्दिरा’ का ब्रत करो।

राजाने पूछा—भगवन् ! कृपा करके ‘इन्दिरा’ का ब्रत बताइये। किस पक्षमें, किस तिथिको और किस विधिसे उसका ब्रत करना चाहिये।

नारदजीने कहा—राजेन्द्र ! सुनो, मैं तुम्हें इस ब्रतकी शुभकारक विधि बतलाता हूँ। आश्विन मासके कृष्णपक्षमें दशमीके उत्तम दिनको श्रद्धायुक्त चित्तसे प्रातःकाल स्नान करे। फिर मध्याह्नकालमें स्नान करके एकाग्रचित्त हो एक समय भोजन करे तथा रात्रिमें भूमिपर सोये। रात्रिके अन्तमें निर्मल प्रभात होनेपर एकादशीके दिन दातुन करके मुँह धोये; इसके बाद भक्तिभावसे निम्राङ्कित मन्त्र पढ़ते हुए उपवासका नियम ग्रहण करे—

अद्य स्थित्वा निराहारः सर्वभोगविवर्जितः ।
श्रो भोक्ष्ये पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥

(६०।२३)

‘कमलनयन भगवान् नारायण ! आज मैं सब भोगोंसे अलग हो निराहार रहकर कल भोजन करूँगा। अच्युत ! आप मुझे शरण दें।’

इस प्रकार नियम करके मध्याह्नकालमें पितरोंकी प्रसन्नताके लिये शालग्राम-शिलाके समुख विधिपूर्वक श्राद्ध करे तथा दक्षिणासे ब्राह्मणोंका सत्कार करके उन्हें भोजन करावे। पितरोंको दिये हुए अन्नमय पिण्डको सूँघकर विद्वान् पुरुष गायको खिला दे। फिर धूप और गन्ध आदिसे भगवान् हृषीकेशका पूजन करके रात्रिमें उनके समीप जागरण करे। तत्पश्चात् सबेरा होनेपर द्वादशीके दिन पुनः भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी पूजा करे। उसके बाद ब्राह्मणोंको भोजन कराकर भाई-बन्धु, नाती और पुत्र आदिके साथ स्वयं मौन होकर भोजन करे।

राजन् ! इस विधिसे आलस्यरहित होकर तुम 'इन्द्रिय' का व्रत करो । इससे तुम्हारे पितर भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें चले जायेंगे ।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन् ! राजा इन्द्रसेनसे ऐसा कहकर देवर्षि नारद अन्तर्धान हो गये । राजाने उनकी बतायी हुई विधिसे अन्तःपुरकी रानियों, पुत्रों और भूत्योंसहित उस उत्तम व्रतका अनुष्ठान किया । कुत्तीनन्दन ! व्रत पूर्ण होनेपर आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी । इन्द्रसेनके पिता गरुडपर आरूढ़ होकर श्रीविष्णुधामको चले गये और राजर्षि इन्द्रसेन भी अकण्टक राज्यका उपभोग करके अपने पुत्रको राज्यपर बिठाकर स्वयं स्वर्गलोकको गये । इस प्रकार मैंने तुम्हारे सामने 'इन्द्रिय' व्रतके माहात्म्यका वर्णन किया है । इसको पढ़ने और सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ।

युधिष्ठिरने पूछा—मधुसूदन ! अब कृपा करके यह बताइये कि आश्विनके शुक्लपक्षमें किस नामकी एकादशी होती है ?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! आश्विनके शुक्लपक्षमें जो एकादशी होती है, वह 'पापाङ्कुशा' के नामसे विख्यात है । वह सब पापोंको हरनेवाली तथा उत्तम है । उस दिन सम्पूर्ण मनोरथकी प्राप्तिके लिये मनुष्योंको स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाले पद्मनाभसंज्ञक मुझ वासुदेवका पूजन करना चाहिये । जितेन्द्रिय मुनि चिरकालतक कठोर तपस्या करके जिस फलको प्राप्त करता है, वह उस दिन भगवान् गरुडध्वजको प्रणाम करनेसे ही मिल जाता है । पृथ्वीपर जितने तीर्थ और पवित्र देवालय हैं, उन सबके सेवनका फल भगवान् विष्णुके नामकीर्तनमात्रसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है । जो शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले सर्वव्यापक भगवान् जनार्दनकी शरणमें जाते हैं, उन्हें कभी यमलोककी यातना नहीं भोगनी पड़ती । यदि अन्य कार्यके प्रसङ्गसे भी मनुष्य एकमात्र एकादशीको उपवास

कर ले तो उसे कभी यम-यातना नहीं प्राप्त होती । जो पुरुष विष्णुभक्त होकर भगवान् शिवकी निन्दा करता है, वह भगवान् विष्णुके लोकमें स्थान नहीं पाता; उसे निश्चय ही नरकमें गिरना पड़ता है । इसी प्रकार यदि कोई शैव या पाशुपत होकर भगवान् विष्णुकी निन्दा करता है तो वह घोर रौरव नरकमें डालकर तबतक पकाया जाता है, जबतक कि चौदह इन्द्रोंकी आयु पूरी नहीं हो जाती । यह एकादशी स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाली, शरीरको नीरोग बनानेवाली तथा सुन्दर स्त्री, धन एवं मित्र देनेवाली है । राजन् ! एकादशीको दिनमें उपवास और रात्रिमें जागरण करनेसे अनायास ही विष्णुधामकी प्राप्ति हो जाती है । राजेन्द्र ! वह पुरुष मातृ-पक्षकी दस, पिताके पक्षकी दस तथा स्त्रीके पक्षकी भी दस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है । एकादशी व्रत करनेवाले मनुष्य दिव्यरूपधारी, चतुर्भुज, गरुड़की ध्वजासे युक्त, हारसे सुशोभित और पीताम्बरधारी होकर भगवान् विष्णुके धामको जाते हैं । आश्विनके शुक्लपक्षमें पापाङ्कुशाका व्रत करनेमात्रसे ही मानव सब पापोंसे मुक्त हो श्रीहरिके लोकमें जाता है । जो पुरुष सुवर्ण, तिल, भूमि, गौ, अन्न, जल, जूते और छातेका दान करता है, वह कभी यमराजको नहीं देखता । नृपश्रेष्ठ ! दरिद्र पुरुषको भी चाहिये कि वह यथाशक्ति स्नानदान आदि क्रिया करके अपने प्रत्येक दिनको सफल बनावे ।* जो होम, स्नान, जप, ध्यान और यज्ञ आदि पुण्यकर्म करनेवाले हैं, उन्हें भयंकर यमयातना नहीं देखनी पड़ती । लोकमें जो मानव दीर्घायु, धनाढ़ी, कुलीन और नीरोग देखे जाते हैं, वे पहलेके पुण्यात्मा हैं । पुण्यकर्ता पुरुष ऐसे ही देखे जाते हैं । इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ, मनुष्य पापसे दुर्गतिमें पड़ते हैं और धर्मसे स्वर्गमें जाते हैं । राजन् ! तुमने मुझसे जो कुछ पूछा था उसके अनुसार पापाङ्कुशाका माहात्म्य मैंने वर्णन किया । अब और क्या सुनना चाहते हो ?



* अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद् दर्जोऽपि नृपोत्तम । समाचरन् यथाशक्ति स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥ (६१। २४-२५)

कार्तिक मासकी 'रमा' और 'प्रबोधिनी' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा—जनार्दन ! मुझपर आपका स्नेह है; अतः कृपा करके बताइये। कार्तिकके कृष्णपक्षमें कौन-सी एकादशी होती है ?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! कार्तिकके कृष्णपक्षमें जो परम कल्याणमयी एकादशी होती है, वह 'रमा'के नामसे विख्यात है। 'रमा' परम उत्तम है और बड़े-बड़े पापोंको हरनेवाली है।

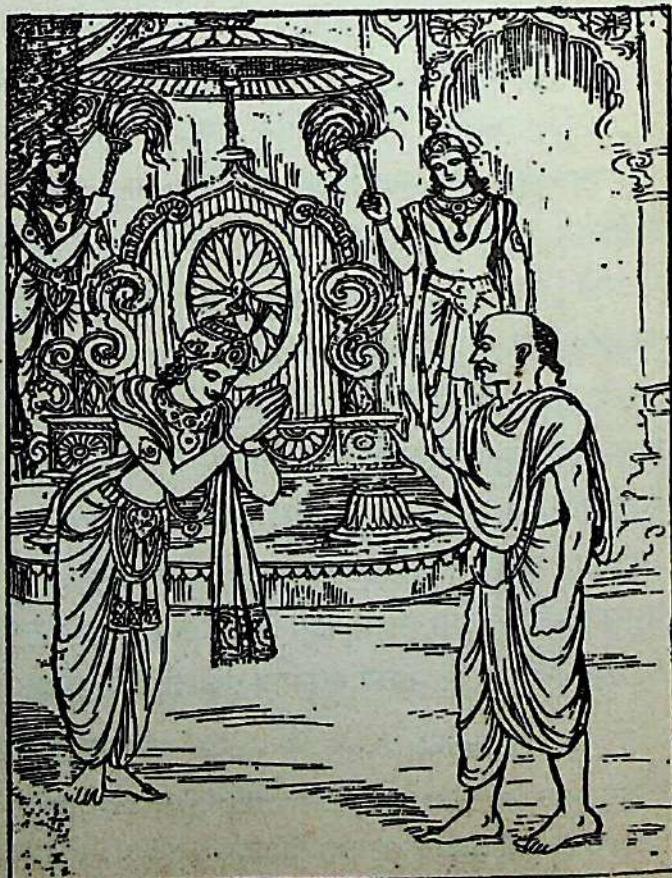
पूर्वकालमें मुचुकुन्द नामसे विख्यात एक राजा हो चुके हैं, जो भगवान् श्रीविष्णुके भक्त और सत्यप्रतिज्ञ थे। निष्कण्टक राज्यका शासन करते हुए उस राजाके यहाँ नदियोंमें श्रेष्ठ चन्द्रभागा कन्याके रूपमें उत्पन्न हुई। राजाने चन्द्रसेनकुमार शोभनके साथ उसका विवाह कर दिया। एक समयकी बात है, शोभन अपने ससुरके घर आये। उनके यहाँ दशमीका दिन आनेपर समूचे नगरमें ढिढोरा पिटवाया जाता था कि एकादशीके दिन कोई भी भोजन न करे, कोई भी भोजन न करे। यह डंकेकी घोषणा सुनकर शोभनने अपनी प्यारी पत्नी चन्द्रभागासे कहा—'प्रिये ! अब मुझे इस समय क्या करना चाहिये, इसकी शिक्षा दो।'

चन्द्रभागा बोली—प्रभो ! मेरे पिताके घरपर तो एकादशीको कोई भी भोजन नहीं कर सकता। हाथी, घोड़े, हाथियोंके बच्चे तथा अन्यान्य पशु भी अन्न, घास तथा जलतकका आहार नहीं करने पाते; फिर मनुष्य एकादशीके दिन कैसे भोजन कर सकते हैं। प्राणनाथ ! यदि आप भोजन करेंगे तो आपकी बड़ी निन्दा होगी। इस प्रकार मनमें विचार करके अपने चित्तको दृढ़ कीजिये।

शोभनने कहा—प्रिये ! तुम्हारा कहना सत्य है, मैं भी आज उपवास करूँगा। दैवका जैसा विधान है, वैसा ही होगा।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके शोभनने व्रतके नियमका पालन किया। सुधासे उनके शरीरमें पीड़ा होने लगी; अतः वे बहुत दुःखी हुए। भूखकी चिन्तामें पड़े-पड़े सूर्यास्त हो

गया। रात्रि आयी, जो हरिपूजापरायण तथा जागरणमें आसक्त वैष्णव मनुष्योंका हर्ष बढ़ानेवाली थी; परन्तु वही रात्रि शोभनके लिये अत्यन्त दुःखदायिनी हुई। सूर्योदय होते-होते उनका प्राणान्त हो गया। राजा मुचुकुन्दने राजोचित काष्ठोंसे शोभनका दाह-संस्कार कराया। चन्द्रभागा पतिका पारलैकिक कर्म करके पिताके ही घरपर रहने लगी। नृपश्रेष्ठ ! 'रमा' नामक एकादशीके व्रतके प्रभावसे शोभन मन्दराचलके शिखरपर बसे हुए परम रमणीय देवपुरको प्राप्त हुआ। वहाँ शोभन द्वितीय कुबेरकी भाँति शोभा पाने लगा। राजा मुचुकुन्दके नगरमें सोमशर्मा नामसे विख्यात एक ब्राह्मण रहते थे, वे तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे घूमते हुए कभी मन्दराचल पर्वतपर गये। वहाँ उन्हें शोभन दिखायी दिये। राजाके दामादको पहचानकर वे उनके समीप गये। शोभन भी उस समय द्विजश्रेष्ठ सोमशर्माको आया जान शीघ्र ही आसनसे उठकर खड़े हो गये और उन्हें प्रणाम किया। फिर क्रमशः अपने श्वशुर राजा



मुचुकुन्दका, प्रिय पत्नी चन्द्रभागाका तथा समस्त नगरका कुशल-समाचार पूछा ।

सोमशर्मनि कहा—राजन्! वहाँ सबकी कुशल है । यहाँ तो अद्भुत आश्वर्यकी बात है ! ऐसा सुन्दर और विचित्र नगर तो कहीं किसीने भी नहीं देखा होगा । बताओ तो सही, तुम्हें इस नगरकी प्राप्ति कैसे हुई ?

शोभन बोले—द्विजेन्द्र ! कार्तिकके कृष्णपक्षमें जो 'रमा' नामकी एकादशी होती है, उसीका व्रत करनेसे मुझे ऐसे नगरकी प्राप्ति हुई है । ब्रह्मन् ! मैंने श्रद्धाहीन होकर इस उत्तम व्रतका अनुष्ठान किया था; इसलिये मैं ऐसा मानता हूँ कि यह नगर सदा स्थिर रहनेवाला नहीं है । आप मुचुकुन्दकी सुन्दरी कन्या चन्द्रभागासे यह सारा वृत्तान्त कहियेगा ।

शोभनकी बात सुनकर सोमशर्मा ब्राह्मण मुचुकुन्द-पुरमें गये और वहाँ चन्द्रभागाके सामने उन्होंने सारा वृत्तान्त कह सुनाया ।

सोमशर्मा बोले—शुभे ! मैंने तुम्हरे पतिको प्रत्यक्ष देखा है तथा इन्द्रपुरीके समान उनके दुर्धर्ष नगरका भी अवलोकन किया है । वे उसे अस्थिर बतलाते थे । तुम उसको स्थिर बनाओ ।

चन्द्रभागाने कहा—ब्रह्मर्षे ! मेरे मनमें पतिके दर्शनकी लालसा लगी हुई है । आप मुझे वहाँ ले चलिये । मैं अपने व्रतके पुण्यसे उस नगरको स्थिर बनाऊँगी ।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन् ! चन्द्रभागाकी बात सुनकर सोमशर्मा उसे साथ ले मन्दराचल पर्वतके निकट वामदेव मुनिके आश्रमपर गये । वहाँ ऋषिके मन्त्रकी शक्ति तथा एकादशी-सेवनके प्रभावसे चन्द्रभागाका शरीर दिव्य हो गया तथा उसने दिव्य गति प्राप्त कर ली । इसके बाद वह पतिके समीप गयी । उस समय उसके नेत्र हृषोल्लाससे खिल रहे थे । अपनी प्रिय पत्नीको आयी देख शोभनको बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने उसे बुलाकर अपने वामभागमें सिंहासनपर बिठाया; तदनन्तर चन्द्रभागाने हर्षमें भरकर अपने प्रियतमसे यह प्रिय वचन कहा—'नाथ ! मैं हितकी बात कहती हूँ सुनिये । पिताके घरमें रहते समय

जब मेरी अवस्था आठ वर्षसे अधिक हो गयी, तभीसे लेकर आजतक मैंने जो एकादशीके व्रत किये हैं और उनसे मेरे भीतर जो पुण्य सञ्चित हुआ है, उसके प्रभावसे यह नगर कल्पके अन्ततक स्थिर रहेगा तथा सब प्रकारके मनोवाञ्छित वैभवसे समृद्धिशाली होगा ।'

नृपश्रेष्ठ ! इस प्रकार 'रमा' व्रतके प्रभावसे चन्द्रभागा दिव्य भोग, दिव्य रूप और दिव्य आभरणोंसे विभूषित हो अपने पतिके साथ मन्दराचलके शिखरपर विहार करती है । राजन् ! मैंने तुम्हरे समक्ष 'रमा' नामके एकादशीका वर्णन किया है । यह चिन्तामणि तथा कामधेनुके समान सब मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली है मैंने दोनों पक्षोंके एकादशीव्रतोंका पापनाशक माहात्म्य बताया है । जैसी कृष्णपक्षकी एकादशी है, वैसी ही शुक्रपक्षकी भी है; उनमें भेद नहीं करना चाहिये । जैसे सफेद रंगकी गाय हो या काले रंगकी, दोनोंका दूष एक-सा ही होता है, इसी प्रकार दोनों पक्षोंके एकादशीयाँ समान फल देनेवाली हैं । जो मनुष्य एकादशी व्रतोंका माहात्म्य सुनता है, वह सब पापोंमुक्त हो श्रीविष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है ।

युधिष्ठिरने पूछा—श्रीकृष्ण ! मैंने आपके मुख 'रमा'का यथार्थ माहात्म्य सुना । मानद ! अब कार्तिक शुक्रपक्षमें जो एकादशी होती है; उसकी महिमा बताइये ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! कार्तिक शुक्रपक्षमें जो एकादशी होती है, उसका जैसा वर्ण लोकस्त्रष्टा ब्रह्माजीने नारदजीसे किया था; वही मैं तुम्हारा बतलाता हूँ ।

नारदजीने कहा—पिताजी ! जिसमें धर्म-क्रम प्रवृत्ति करानेवाले भगवान् गोविन्द जागते हैं, वे 'प्रबोधिनी' एकादशीका माहात्म्य बतलाइये ।

ब्रह्माजी बोले—मुनिश्रेष्ठ ! 'प्रबोधिनी' माहात्म्य पापका नाश, पुण्यकी वृद्धि तथा उत्तम बुद्धिवाले पुरुषोंको मोक्ष प्रदान करनेवाला है । समुद्रलेकर सरोवरतक जितने भी तीर्थ हैं, वे सभी उमाहात्म्यकी तभीतक गर्जना करते हैं, जबतक कार्तिक मासमें भगवान् विष्णुकी 'प्रबोधिनी' तिथि

आ जाती। 'प्रबोधिनी' एकादशीको एक ही उपवास कर लेनेसे मनुष्य हजार अश्वमेध तथा सौ राजसूय यज्ञका फल पा लेता है। बेटा! जो दुर्लभ है, जिसकी प्राप्ति असम्भव है तथा जिसे त्रिलोकीमें किसीने भी नहीं देखा है; ऐसी वस्तुके लिये भी याचना करनेपर 'प्रबोधिनी' एकादशी उसे देती है। भक्तिपूर्वक उपवास करनेपर मनुष्योंको 'हरिबोधिनी' एकादशी ऐश्वर्य, सम्पत्ति, उत्तम बुद्धि, राज्य तथा सुख प्रदान करती है। मेरुपर्वतके समान जो बड़े-बड़े पाप हैं, उन सबको यह पापनाशिनी 'प्रबोधिनी' एक ही उपवाससे भस्म कर देती है। पहलेके हजारों जन्मोंमें जो पाप किये गये हैं, उन्हें 'प्रबोधिनी' की रात्रिका जागरण रूईकी ढेरीके समान भस्म कर डालता है। जो लोग 'प्रबोधिनी' एकादशीका मनसे ध्यान करते तथा जो इसके व्रतका अनुष्ठान करते हैं, उनके पितर नरकके दुःखोंसे छुटकारा पाकर भगवान् विष्णुके परमधामको चले जाते हैं। ब्रह्मन्! अश्वमेध आदि यज्ञोंसे भी जिस फलकी प्राप्ति कठिन है, वह 'प्रबोधिनी' एकादशीको जागरण करनेसे अनायास ही मिल जाता है। सम्पूर्ण तीर्थोंमें नहाकर सुवर्ण और पृथ्वी दान करनेसे जो फल मिलता है, वह श्रीहरिके निमित्त जागरण करनेमात्रसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है। जैसे मनुष्योंके लिये मृत्यु अनिवार्य है, उसी प्रकार धन-सम्पत्तिमात्र भी क्षणभद्र है; ऐसा समझकर एकादशीका व्रत करना चाहिये। तीनों लोकोंमें जो कोई भी तीर्थ सम्भव है, वे सब 'प्रबोधिनी' एकादशीका व्रत करनेवाले मनुष्यके घरमें मौजूद रहते हैं। कार्तिकी 'हरिबोधिनी' एकादशी पुन तथा पौत्र प्रदान करनेवाली है। जो 'प्रबोधिनी'को उपासना करता है, वही ज्ञानी है, वही योगी है, वही तपस्वी और जितेन्द्रिय है तथा उसीको भोग और मोक्षकी प्राप्ति होती है।

बेटा! 'प्रबोधिनी' एकादशीको भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे मानव जो स्नान, दान, जप और होम करता है, वह सब अक्षय होता है। जो मनुष्य उस तिथिको उपवास करके भगवान् माधवकी भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं, वे सौ जन्मोंके पापोंसे छुटकारा पा जाते हैं।

इस व्रतके द्वारा देवेश्वर! जनार्दनको सन्तुष्ट करके मनुष्य सम्पूर्ण दिशाओंको अपने तेजसे प्रकाशित करता हुआ श्रीहरिके वैकुण्ठ धामको जाता है। 'प्रबोधिनी' को पूजित होनेपर भगवान् गोविन्द मनुष्योंके बचपन, जवानी और बुढ़ापेमें किये हुए सौ जन्मोंके पापोंको, चाहे वे अधिक हों या कम, धो डालते हैं। अतः सर्वथा प्रयत्न करके सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाले देवाधिदेव जनार्दनकी उपासना करनी चाहिये। बेटा नारद! जो भगवान् विष्णुके भजनमें तत्पर होकर कार्तिकमें पराये अन्नका त्याग करता है, वह चान्द्रायण व्रतका फल पाता है। जो प्रतिदिन शास्त्रीय चर्चासे मनोरञ्जन करते हुए कार्तिक मास व्यतीत करता है, वह अपने सम्पूर्ण पापोंको जला डालता और दस हजार यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। कार्तिक मासमें शास्त्रीय कथाके कहने-सुननेसे भगवान् मधुसूदनको जैसा सन्तोष होता है, वैसा उन्हें यज्ञ, दान अथवा जप आदिसे भी नहीं होता। जो शुभकर्म-परायण पुरुष कार्तिक मासमें एक या आधा इलोक भी भगवान् विष्णुकी कथा बाँचते हैं, उन्हें सौ गोदानका फल मिलता है। महामुने! कार्तिकमें भगवान् केशवके सामने शास्त्रका स्वाध्याय तथा श्रवण करना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ! जो कार्तिकमें कल्याण-प्राप्तिके लोभसे श्रीहरिकी कथाका प्रबन्ध करता है, वह अपनी सौ पीढ़ियोंको तार देता है। जो मनुष्य सदा नियमपूर्वक कार्तिक मासमें भगवान् विष्णुकी कथा सुनता है, उसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। जो 'प्रबोधिनी' एकादशीके दिन श्रीविष्णुकी कथा श्रवण करता है, उसे सातों द्वीपोंसे युक्त पृथ्वी दान करनेका फल प्राप्त होता है। मुनिश्रेष्ठ! जो भगवान् विष्णुकी कथा सुनकर अपनी शक्तिके अनुसार कथा-वाचककी पूजा करते हैं, उन्हें अक्षय लोककी प्राप्ति होती है। नारद! जो मनुष्य कार्तिक मासमें भगवत्संबन्धी गीत और शास्त्रविनोदके द्वारा समय बिताता है, उसकी पुनरावृत्ति मैंने नहीं देखी है। मुने! जो पुण्यात्मा पुरुष भगवान्के समक्ष गान, नृत्य, वाद्य और श्रीविष्णुकी कथा करता है, वह तीनों लोकोंके ऊपर विराजमान होता है।

मुनिश्रेष्ठ ! कार्तिककी 'प्रबोधिनी' एकादशीके दिन बहुत-से फल-फूल, कपूर, अरगजा और कुङ्गमके द्वारा श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये । एकादशी आनेपर धनकी कंजूसी नहीं करनी चाहिये; क्योंकि उस दिन दान आदि करनेसे असंख्य पुण्यकी प्राप्ति होती है । 'प्रबोधिनी' को जागरणके समय शङ्खमें जल लेकर फल तथा नाना प्रकारके द्रव्योंके साथ श्रीजनार्दनको अर्घ्य देना चाहिये । सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करने और सब प्रकारके दान देनेसे जो फल मिलता है, वही 'प्रबोधिनी' एकादशीको अर्घ्य देनेसे करोड़ गुना होकर प्राप्त होता है । देवर्षे ! अर्घ्यके पश्चात् भोजन-आच्छादन और दक्षिणा आदिके द्वारा भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये गुरुकी पूजा करनी चाहिये । जो मनुष्य उस दिन श्रीमद्भागवतकी कथा सुनता अथवा पुराणका पाठ करता है, उसे एक-एक अक्षरपर कपिलादानका फल मिलता है । मुनिश्रेष्ठ ! कार्तिकमें जो मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार शास्त्रोक्त रीतिसे वैष्णवब्रत (एकादशी) का पालन करता है, उसकी मुक्ति अविचल है । केतकीके एक पत्तेसे पूजित

होनेपर भगवान् गरुड़ध्वज एक हजार वर्षतक अत्यन्त तृप्त रहते हैं । देवर्षे ! जो अगस्तके फूलसे भगवान् जनार्दनकी पूजा करता है, उसके दर्शनमात्रसे नरककी आग बुझ जाती है । वत्स ! जो कार्तिकमें भगवान् जनार्दनको तुलसीके पत्र और पुष्प अर्पण करते हैं, उनका जन्मभरका किया हुआ सारा पाप भस्म हो जाता है । मुने ! जो प्रतिदिन दर्शन, स्पर्श, ध्यान, नाम-कीर्तन, स्तवन, अर्पण, सेचन, नित्यपूजन तथा नमस्कारके द्वारा तुलसीमें नव प्रकारकी भक्ति करते हैं, वे कोटि सहस्र युगोंतक पुण्यका विस्तार करते हैं ।* नारद ! सब प्रकारके फूलों और पत्तोंको चढ़ानेसे जो फल होता है, वह कार्तिक मासमें तुलसीके एक पत्तेसे मिल जाता है । कार्तिक आया देख प्रतिदिन नियमपूर्वक तुलसीके कोमल पत्तोंसे महाविष्णु श्रीजनार्दनका पूजन करना चाहिये । सौ यज्ञोद्वारा देवताओंका यजन करने और अनेक प्रकारके दान देनेसे जो पुण्य होता है, वह कार्तिकमें तुलसीदल्पमात्रसे केशवकी पूजा करनेपर प्राप्त हो जाता है ।

— ★ —

)

पुरुषोत्तम मासकी 'कमला' और 'कामदा' एकादशीका माहात्म्य

युधिष्ठिरने पूछा — भगवन् ! अब मैं श्रीविष्णुके व्रतोंमें उत्तम व्रतका, जो सब पापोंको हर लेनेवाला तथा व्रती मनुष्योंको मनोवाञ्छित फल देनेवाला हो, श्रवण करना चाहता हूँ । जनार्दन ! पुरुषोत्तम मासकी एकादशीकी कथा कहिये, उसका क्या फल है ? और उसमें किस देवताका पूजन किया जाता है ? प्रभो ! किस दानका क्या पुण्य है ? मनुष्योंको क्या करना चाहिये ? उस समय कैसे स्नान किया जाता है ? किस मन्त्रका जप होता है ? कैसी पूजन-विधि बतायी गयी है ? पुरुषोत्तम ! पुरुषोत्तम मासमें किस अन्नका भोजन

उत्तम है ?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले — राजेन्द्र ! अधिक मास आनेपर जो एकादशी होती है, वह 'कमला' नाम प्रसिद्ध है । वह तिथियोंमें उत्तम तिथि है । उसके व्रत प्रभावसे लक्ष्मी अनुकूल होती हैं । उस दिन ब्रामुहूर्तमें उठकर भगवान् पुरुषोत्तमका स्परण करे अविधिपूर्वक स्नान करके व्रती पुरुष व्रतका नियम ग्रह करे । धूरपर जप करनेका एक गुना, नदीके तटपर दूर गोशालामें सहस्रगुना, अम्भिहोत्रगृहमें एक हजार एक गुना, शिवके क्षेत्रोंमें, तीर्थोंमें, देवताओंके निकट

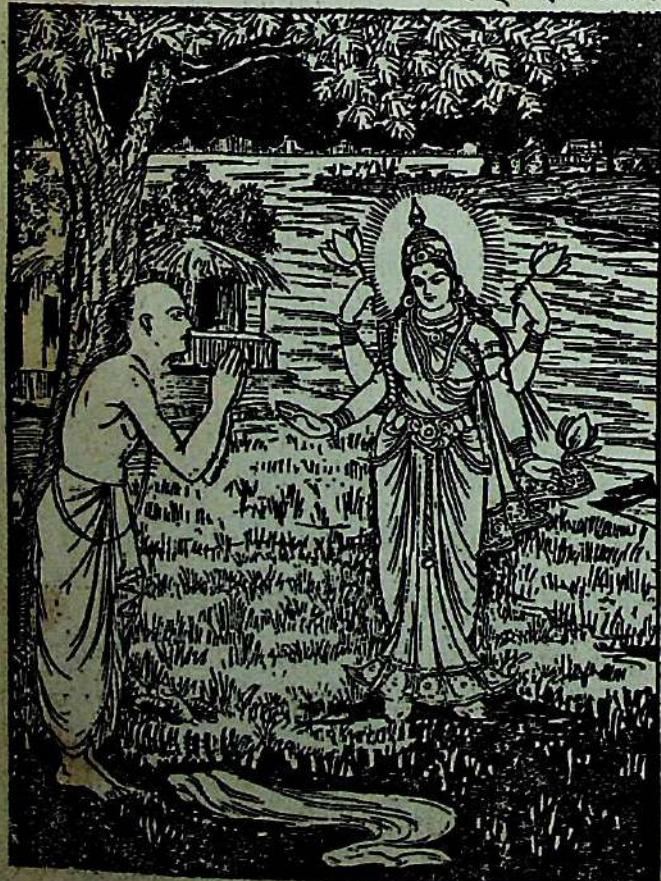
* तुलसीदलपुष्पाणि ये यच्छन्ति जनार्दने । कार्तिके सकल वत्स पापं जन्मार्जितं दहेत् ॥

दृष्टा स्पृष्टाथ वा ध्याता कीर्तिता नामतः स्तुता । स्मैपिता सेचिता नित्यं पूजिता तुलसी नता ॥

नवधा तुलसीभक्ति ये कुर्वन्ति दिने दिने । युगकोटिसहस्राणि तत्वन्ति सुकृतं मुने ॥ (६३ । ६१—६३)

तुलसीके समीप लाख गुना और भगवान् विष्णुके निकट अनन्त गुना फल होता है।

अवन्तीपुरीमें शिवशर्मा नामक एक श्रेष्ठ ब्राह्मण रहते थे, उनके पाँच पुत्र थे। इनमें जो सबसे छोटा था, वह पापाचारी हो गया; इसलिये पिता तथा स्वजनोंने उसे त्याग दिया। अपने बुरे कर्मोंके कारण निर्वासित होकर वह बहुत दूर बनमें चल गया। दैवयोगसे एक दिन वह तीर्थराज प्रयागमें जा पहुँचा। भूखसे दुर्बल शरीर और दीन मुख लिये उसने त्रिवेणीमें स्नान किया। फिर क्षुधासे पीड़ित होकर वह वहाँ मुनियोंके आश्रम खोजने लगा। इतनेमें उसे वहाँ हरिमित्र मुनिका उत्तम आश्रम दिखायी दिया। पुरुषोत्तम मासमें वहाँ बहुत-से मनुष्य एकत्रित हुए थे। आश्रमपर पापनाशक कथा कहनेवाले ब्राह्मणोंके मुखसे उसने श्रद्धापूर्वक 'कमला' एकादशीकी महिमा सुनी, जो परम पुण्यमयी तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। जयशमनि विधिपूर्वक 'कमला' एकादशीकी कथा सुनकर उन सबके साथ मुनिके आश्रमपर ही व्रत किया। जब आधी रात हुई तो भगवती लक्ष्मी उसके पास आकर बोली—'ब्रह्मन्! इस समय



'कमला' एकादशीके व्रतके प्रभावसे मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ और देवाधिदेव श्रीहरिकी आज्ञा पाकर वैकुण्ठधामसे आयी हूँ। मैं तुम्हें वर दूँगी।'

ब्राह्मण बोला—माता लक्ष्मी! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो वह व्रत बताइये, जिसकी कथा-वार्तामें साधु-ब्राह्मण सदा संलग्न रहते हैं।

लक्ष्मीने कहा—**ब्राह्मण!** एकादशी-व्रतका माहात्म्य श्रोताओंके सुनने योग्य सर्वोत्तम विषय है। यह पवित्र वस्तुओंमें सबसे उत्तम है। इससे दुःखप्रका नाश तथा पुण्यकी प्राप्ति होती है, अतः इसका यत्पूर्वक श्रवण करना चाहिये। उत्तम पुरुष श्रद्धासे युक्त हो एक या आधे इलोकका पाठ करनेसे भी करोड़ों महापातकोंसे तत्काल मुक्त हो जाता है। जैसे मासोंमें पुरुषोत्तम मास, पक्षियोंमें गरुड़ तथा नदियोंमें गङ्गा श्रेष्ठ हैं; उसी प्रकार तिथियोंमें द्वादशी तिथि उत्तम है। समस्त देवता आज भी [एकादशी व्रतके ही लोभसे] भारतवर्षमें जन्म लेनेकी इच्छा रखते हैं। देवगण सदा ही रोग-शोकसे रहित भगवान् नारायणका पूजन करते हैं। जो लोग मेरे प्रभु भगवान् नारायणके नामका सदा भक्तिपूर्वक जप करते हैं, उनकी ब्रह्मा आदि देवता सर्वदा पूजा करते हैं। जो लोग श्रीहरिके नाम-जपमें संलग्न हैं, उनकी लीला-कथाओंके कीर्तनमें तत्पर हैं तथा निरन्तर श्रीहरिकी पूजामें ही प्रवृत्त रहते हैं; वे मनुष्य कलियुगमें कृतार्थ हैं। यदि दिनमें एकादशी और द्वादशी हो तथा रात्रि बीतते-बीतते त्रयोदशी आ जाय तो उस त्रयोदशीके पारणमें सौ यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। व्रत करनेवाला पुरुष चक्रसुदर्शनधारी देवाधिदेव श्रीविष्णुके समक्ष निम्राङ्कित मन्त्रका उच्चारण करके भक्तिभावसे संतुष्टचित्त होकर उपवास करे। वह मन्त्र इस प्रकार है—

एकादश्यां निराहारः स्थित्वाहमपरेऽहनि ॥

भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥

(६४ । ३४)

'कमलनयन! भगवान् अच्युत! मैं एकादशीको निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा। आप मुझे शरण दें।'

तत्पश्चात् व्रत करनेवाला मनुष्य मन और इन्द्रियोंको वशमें करके गीत, वाद्य, नृत्य और पुराण-पाठ आदिके द्वारा रात्रिमें भगवान्‌के समक्ष जागरण करे। फिर द्वादशीके दिन उठकर स्नानके पश्चात् जिंतेन्द्रियभावसे विधिपूर्वक श्रीविष्णुकी पूजा करे। एकादशीको पञ्चामृतसे जनार्दनको नहलाकर द्वादशीको केवल दूधमें स्नान करनेसे श्रीहरिका सायुज्य प्राप्त होता है। पूजा करके भगवान्‌से इस प्रकार प्रार्थना करे—

अज्ञानतिमिरान्धस्य ब्रतेनानेन केशव ।

प्रसीद सुमुखो भूत्वा ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ॥

(६४।३९)

'केशव ! मैं अज्ञानरूपी रत्नधीसे अंधा हो गया हूँ। आप इस ब्रतसे प्रसन्न हों और प्रसन्न होकर मुझे ज्ञानदृष्टि प्रदान करें।'

इस प्रकार देवताओंके स्वामी देवाधिदेव भगवान् गदाधरसे निवेदन करके भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराये तथा उन्हें दक्षिणा दे। उसके बाद भगवान् नरायणके शरणागत होकर बलिवैश्वदेवकी विधिसे पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान करके स्वयं मौन हो अपने बन्धु-बाध्यवोंके साथ भोजन करे। इस प्रकार जो शुद्ध भावसे पुण्यमय एकादशीका व्रत करता है, वह पुनरावृत्तिसे रहित वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन् ! ऐसा कहकर लक्ष्मीदेवी उस ब्राह्मणको वरदान दे अन्तर्धान हो गयीं। फिर वह ब्राह्मण भी धनी होकर पिताके घरपर आ गया। इस प्रकार जो 'कमला' का उत्तम व्रत करता है तथा एकादशीके दिन इसका माहात्म्य सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

युधिष्ठिर बोले—जनार्दन ! पापका नाश और पुण्यका दान करनेवाली एकादशीके माहात्म्यका पुनः वर्णन कीजिये, जिसे इस लोकमें करके मनुष्य परम पदको प्राप्त होता है।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन् ! शुक्ल या कृष्णपक्षमें जब्ती एकादशी प्राप्त हो, उसका परित्याग न करे, क्योंकि वह मोक्षरूप सुखको बढ़ानेवाली है।

कलियुगमें तो एकादशी ही भव-बन्धनसे मुक्त करनेवाली, सम्पूर्ण मनोवाञ्छित कामनाओंको देनेवाली तथा पापोंका नाश करनेवाली है। एकादशी रविवारको, किसी मङ्गलमय पर्वके समय अथवा संक्रान्तिके ही दिन क्यों न हो, सदा ही उसका व्रत करना चाहिये। भगवान् विष्णुके प्रिय भक्तोंको एकादशीका त्याग कभी नहीं करना चाहिये। जो शास्त्रोक्त विधिसे इस लोकमें एकादशीका व्रत करते हैं, वे जीवन्मुक्त देखे जाते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

युधिष्ठिरने पूछा—श्रीकृष्ण ! वे जीवन्मुक्त कैसे हैं ? तथा विष्णुरूप कैसे होते हैं ? मुझे इस विषयको जाननेके लिये बड़ी उत्सुकता हो रही है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! जो कलियुगमें भक्तिपूर्वक शास्त्रीय विधिके अनुसार निर्जल रहकर एकादशीका उत्तम व्रत करते हैं, वे विष्णुरूप तथा जीवन्मुक्त क्यों नहीं हो सकते हैं ? एकादशीव्रतके समान सब पापोंको हरनेवाला तथा मनुष्योंकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला पवित्र व्रत दूसरा कोई नहीं है। दशमीको एक बार भोजन, एकादशीको निर्जल व्रत तथा द्वादशीको पारण करके मनुष्य श्रीविष्णुके समान हो जाते हैं। पुरुषोत्तम मासवे द्वितीय पक्षकी एकादशीका नाम 'कामदा' है। जो श्रद्धापूर्वक 'कामदा'के शुभ व्रतका अनुष्ठान करता है वह इस लोक और परलोकमें भी मनोवाञ्छित वस्तुव पाता है। यह 'कामदा' पवित्र, पावन, महापातकनाशिन तथा व्रत करनेवालोंको भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाल है। नृपत्रेष्ठ ! 'कामदा' एकादशीको विधिपूर्वक पूष्ट धूप, नैवेद्य तथा फल आदिके द्वारा भगव पुरुषोत्तमकी पूजा करनी चाहिये। व्रत करनेवाला वैष्ण या पुरुष दशमी तिथिको काँसके बर्तन, उड़द, मसूर, चकोदो, साग, मधु, पराया अन्न, दो बार भोजन त मैथुन—इन दसोंका परित्याग करे। इसी प्रव एकादशीको जूआ, निद्रा, पान, दाँतुन, परायी नि चुगली, चोरी, हिसा, मैथुन, क्रोध और अस भाषण—इन ग्यारह दोषोंको त्याग दे तथा द्वादश

दिन काँसका बर्तन, उड़द, मसूर, तेल, असत्य-भाषण, व्यायाम, परदेशगमन, दो बार भोजन, मैथुन, बैलकी पीठपर सवारी, पराया अन्न तथा साग—इन बारह वस्तुओंका त्याग करे। राजन् ! जिन्होंने इस विधि से

'कामदा' एकादशीका व्रत किया और रात्रिमें जागरण करके श्रीपुरुषोत्तमकी पूजा की है, वे सब पापोंसे मुक्त हो परम गतिको प्राप्त होते हैं। इसके पढ़ने और सुननेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है।



चातुर्मास्य व्रतकी विधि और उद्यापन

नारदजीने पूछा—महेश्वर ! पृथ्वीपर चातुर्मास्य व्रतके जो प्रसिद्ध नियम हैं, उन्हें मैं सुनना चाहता हूँ; आप उनका वर्णन कीजिये ।

महादेवजी बोले—देवर्षे ! सुनो, मैं तुम्हरे प्रश्नका उत्तर देता हूँ। आषाढ़के शुक्लपक्षमें एकादशीको उपवास करके भक्तिपूर्वक चातुर्मास्य व्रतके नियम ग्रहण करे। श्रीहरिके योगनिद्रामें प्रवृत्त हो जानेपर मनुष्य चार मास अर्थात् कार्तिककी पूर्णिमातक भूमिपर शयन करे। इस बीचमें न तो घर या मन्दिर आदिकी प्रतिष्ठा होती है और न यज्ञादि कार्य ही सम्पन्न होते हैं, विवाह, यज्ञोपवीत, अन्यान्य माझ़लिक कर्म, राजाओंकी यात्रा तथा नाना प्रकारकी दूसरी-दूसरी क्रियाएँ भी नहीं होतीं। मनुष्य एक हजार अश्वमेध यज्ञ करनेसे जिस फलको पाता है, वही चातुर्मास्य व्रतके अनुष्ठानसे प्राप्त कर लेता है। जब सूर्य मिथुन राशिपर हों, तब भगवान् मधुसूदनको शयन कराये और तुला राशिके सूर्य होनेपर पुनः श्रीहरिको शयनसे उठाये। यदि मलमास आ जाय तो निम्नलिखित विधिका अनुष्ठान करे। भगवान् विष्णुकी प्रतिमा स्थापित करे, जो शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाली हो, जिसे पीताम्बर पहनाया गया हो तथा जो सौम्य आकारवाली हो। नारद ! उसे शुद्ध एवं सुन्दर पलंगपर, जिसके ऊपर सफेद चादर बिछी हो और तकिया रखी हो, स्थापित करे। फिर दही, दूध, मधु, लावा और धीसे नहलाकर उत्तम चन्दनका लेप करे। तत्पश्चात् धूप दिखाकर मनोहर पुष्टोंसे शृङ्खार करे। इस प्रकार उसकी पूजा करके निम्राङ्कित मन्त्रसे प्रार्थना करे—

सप्ते त्वयि जगन्नाथं जगत्सुप्तं भवेदिदम् ।
विषुद्धे त्वयि बुद्ध्येत जगत्सर्वं चराचरम् ॥ १५ ॥

'जगन्नाथ ! आपके सो जानेपर यह सारा जगत् सो जाता है तथा आपके जाग्रत् होनेपर सम्पूर्ण चराचर जगत् जाग उठता है ।'

नारद ! इस प्रकार भगवान् विष्णुकी प्रतिमाको स्थापित करके उसीके आगे स्वयं वाणीसे कहकर चातुर्मास्य व्रतके नियम ग्रहण करे। रुदी हो या पुरुष, जो भगवान्का भक्त हो, उसे हरिबोधिनी एकादशीतक चार महीनोंके लिये नियम अवश्य ग्रहण करने चाहिये। जितात्मा पुरुष निर्मल प्रभातकालमें दन्तधावनपूर्वक उपवास करके नित्यकर्मका अनुष्ठान करनेके पश्चात् भगवान् विष्णुके समक्ष जिन नियमोंको ग्रहण करता है, उनका तथा उनके पालन करनेवालोंका फल पृथक्-पृथक् बतलाता हूँ।

विद्वन् ! चातुर्मास्यमें गुडका त्याग करनेसे मनुष्यको मधुरताकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार तेलको त्याग देनेसे दीर्घायु संतान और सुगच्छित तेलके त्यागसे अनुपम सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। योगाभ्यासी मनुष्य ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। ताम्बूलका त्याग करनेसे मनुष्य भोग-सामग्रीसे सम्पन्न होता और उसका कण्ठ सुरीला होता है। धीके त्यागसे लावण्यकी प्राप्ति होती और शरीर चिकना होता है। विप्रवर ! फलका त्याग करनेवालेको बहुत-से पुत्रोंकी प्राप्ति होती है। जो चौमासेभर पलाशके पत्तेमें भोजन करता है, वह रूपवान् और भोगसामग्रीसे सम्पन्न होता है। दही-दूध छोड़नेवाले मनुष्यको गोलोक मिलता है। जो मौनव्रत धारण करता है, उसकी आशा भंग नहीं होती। जो स्थालीपाक (बटलोईमें भोजन बनाकर खाने) का त्याग करता है, वह इन्द्रका सिंहासन प्राप्त करता है। नारद ! इस प्रकारके त्यागसे धर्मकी सिद्धि होती है। इसके साथ 'नमो नारायणाय' का जप

करनेसे सौगुने फलकी प्राप्ति होती है। चौमासेका व्रत करनेवाला पुरुष पोखरेमें स्नान करनेमात्रसे गङ्गा-स्नानका फल पाता है। जो सदा पृथ्वीपर भोजन करता है, वह पृथ्वीका स्वामी होता है। श्रीविष्णुकी चरण-वन्दना करनेसे गोदानका फल मिलता है। उनके चरण-कमलोंका स्पर्श करनेसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। प्रतिदिन एक समय भोजन करनेवाला पुरुष अग्निष्ठोम यज्ञका फलभागी होता है। जो श्रीविष्णुकी एक सौ आठ बार परिक्रमा करता है, वह दिव्य विमानपर बैठकर यात्रा करता है। विद्वन्! पञ्चगव्य खानेवाले मनुष्यको चान्द्रायणका फल मिलता है। जो प्रतिदिन भगवान् विष्णुके आगे शास्त्रविनोदके द्वारा लोगोंको ज्ञान देता है, वह व्यासस्वरूप विद्वान् श्रीविष्णुधामको प्राप्त होता है। तुलसीदलसे भगवान्की पूजा करके मानव वैकुण्ठ-धाममें जाता है। गर्म जलका त्याग कर देनेसे पुष्कर तीर्थमें स्नान करनेका फल होता है। जो पत्तोंमें भोजन करता है, उसे कुरुक्षेत्रका फल मिलता है। जो प्रतिदिन पत्थरकी शिलापर भोजन करता है, उसे प्रयाग-तीर्थका पुण्य प्राप्त होता है।

चौमासेमें काँसीके बरतनोंका त्याग करके अन्यान्य धातुओंके पात्रोंका उपयोग करे। अन्य किसी प्रकारका पात्र न मिलनेपर मिट्टीका ही पात्र उत्तम है। अथवा खयं ही पलाशके पत्ते लाकर उनकी पत्तल बनावे और उनसे भोजन-पात्रका काम ले। जो पूरे एक वर्षतक प्रतिदिन अग्निहोत्र करता है और जो वनमें रहकर केवल पत्तोंमें भोजन करता है, उन दोनोंको समान फल मिलता है। पलाशके पत्तोंमें किया हुआ भोजन चान्द्रायणके समान माना गया है। पलाशके पत्तोंमें एक-एक बारका भोजन त्रिरात्र-व्रतके समान पुण्यदायक और बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला बताया गया है। एकादशीके व्रतका जो पुण्य है, वही पलाशके पत्तेमें भोजन करनेका भी बतलाया गया है। उससे मनुष्य सब प्रकारके दानों तथा समस्त तीर्थोंका फल पा लेता है। कमलके पत्तोंमें भोजन करनेसे कभी नरक नहीं देखना पड़ता। ब्रह्मण उसमें भोजन करनेसे वैकुण्ठमें जाता है। ब्रह्माजीका महान्

वृक्ष—पलाश पापोंका नाशक और सम्पूर्ण कामनाओंका दाता है। नारद ! इसका बिचला पत्ता शूद्र जातिके लिये निषिद्ध है। यदि शूद्र पलाशके बिचले पत्रमें भोजन करता है तो उसे चौदह इन्द्रोंकी आयुपर्यन्त नरकमें रहना पड़ता है; अतः वह बिचले पत्रको त्याग दे और शेष पत्रोंमें भोजन किया करे। ब्रह्मन् ! जो शूद्र बिचले पत्रमें भोजन करता है, वह ब्राह्मणको कपिला गौ दान करनेसे ही शुद्ध होता है, अन्यथा नहीं।

यदि शूद्र अपने घरमें कपिला गौका दोहन करे तो वह दस हजार वर्षोंतक विष्णुका कीड़ा होता है। कीड़ेकी योनिसे छूटनेपर पशुयोनिमें जन्म लेता है। जो शूद्र कपिल जातिके बैलको गाड़ीमें जोतकर हाँकता है, वह उस बैलके शरीरमें जितने रोएं होते हैं, उतने वर्षोंतक कुम्भीपाकमें पकाया जाता है; यदि शूद्र पानी लानेके लिये किसी ब्राह्मणको घरमें भेजे तो वह जल मदिराके तुल्य होता है और उसे पीनेवाला नरकमें जाता है। जो शूद्र बुलानेपर ब्राह्मणोंके घर भोजन करता है, उसके लिये वह अन्न अमृतके समान होता है और उसे खाकर वह मोक्ष प्राप्त करता है। जो शूद्र लोभवश दूसरेका, विशेषतः ब्राह्मणोंका सोना या चाँदी ले लेता है, वह नरकमें जाता है। शूद्रको चाहिये कि वह सदा ब्राह्मणोंको दान दे और उनमें विशेषरूपसे भक्तिभाव करे। विशेषतः चौमासेमें जैसे भगवान् विष्णु आराधनीय हैं, वैसे ही ब्राह्मण भी। नारद ! ब्राह्मणोंकी विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। भाद्रपद मास आनेपर उनकी महापूजा होती है। चौमासेमें भूमिपर शयन करनेवाला मनुष्य विमान प्राप्त करता है। दस हजार वर्षोंतक उसे रोग नहीं सताते। वह मनुष्य बहुत-से पुत्र और धनसे युक्त होता है। उसे कभी कोढ़की बीमारी नहीं होती। बिना माँगी स्वतः प्राप्त हुए अन्नका भोजन करनेसे बावली और कुआँ बनवानेका फल होता है। जो प्राणियोंकी हिंसासे मुँह मोड़कर द्रोहका त्याग कर देता है, वह भी पूर्वोक्त पुण्यका भागी होता है। वेदोंमें बताया गया है कि 'अहिंसा श्रेष्ठ धर्म है।' दान, दया और दम—ये भी उत्तम धर्म हैं, यह बात मैंने सर्वत्र ही सुनी है; अतः बड़े लोगोंको भी

चाहिये कि वे पूरा प्रयत्न करके उक्त धर्मोंका पालन करें। यह चातुर्मास्य व्रत मनुष्योद्धारा सदा पालन करनेयोग्य है। ब्रह्मन्! और अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता? इस पृथ्वीपर जो लोग भगवान् विष्णुके भक्त हैं, वे धन्य हैं! उनका कुल अत्यन्त धन्य है! तथा उनकी जाति भी परम धन्य मानी गयी है।

जो भगवान् जनार्दनके शयन करनेपर मधु भक्षण करता है, उसे महान् पाप लगता है; अब उसके त्यागनेका जो पुण्य है, उसका भी श्रवण करो, नाना प्रकारके जितने भी यज्ञ हैं, उन सबके अनुष्ठानका फल उसे प्राप्त होता है। चौमासेमें अनार, नीबू और नारियलका भी त्याग करे। ऐसा करनेवाला पुरुष विमानपर विचरनेवाला देवता होकर अन्तमें भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है। जो मनुष्य धान, जौ और गेहूँका त्याग करता है, वह विधिपूर्वक दक्षिणासहित अश्वमेधादि यज्ञोंके अनुष्ठानका फल पाता है। साथ ही वह धन-धान्यसे सम्पन्न और अनेक पुत्रोंसे युक्त होता है। तुलसीदल, तिल और कुशोंसे तर्पण करनेका फल कोटिगुना बताया गया है। विशेषतः चातुर्मास्यमें उसका फल बहुत अधिक होता है। जो भगवान् विष्णुके सामने वेदके एक या आधे पदका अथवा एक या आधे ऋचाका भी गान करते हैं, वे निश्चय ही भगवान्के भक्त हैं; इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। नारद! जो चौमासेमें दही, दूध, पत्र, गुड़ और साग छोड़ देता है, वह निश्चय ही मोक्षका भागी होता है। मुने! जो मनुष्य प्रतिदिन आँवला मिले हुए जलसे ही स्नान करते हैं, उन्हें नित्य महान् पुण्य प्राप्त होता है। मनीषी पुरुष आँवलेके फलको पापहारी बतलाते हैं। ब्रह्माजीने तीनों लोकोंको तारनेके लिये पूर्वकालमें आँवलेकी सृष्टि की थी। जो मनुष्य चौमासेभर अपने हाथसे भोजन बनाकर खाता है, वह दस हजार वर्षोंतक इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो मौन होकर भोजन करता है, वह कभी दुःखमें नहीं पड़ता। मौन होकर भोजन करनेवाले रक्षस भी स्वर्गलोकमें चले गये हैं। यदि पके हुए अन्नमें कीड़े-मकोड़े पड़ जायें तो वह

अशुद्ध हो जाता है। यदि मानव उस अपवित्र अन्नको खा ले तो वह दोषका भागी होता है।

मौन होकर भोजन करनेवाला पुरुष निस्सन्देह स्वर्गलोकमें जाता है। जो बात करते हुए भोजन करता है, उसके वार्तालापसे अन्न अशुद्ध हो जाता है, वह केवल पापका भोजन करता है; अतः मौन-धारण अवश्य करना चाहिये। नारद! मौनावलम्बनपूर्वक जो भोजन किया जाता है, उसे उपवासके समान जानना चाहिये। जो नरश्रेष्ठ प्रतिदिन प्राणवायुको पाँच आहुतियाँ देकर मौन भोजन करता है, उसके पाँच पातक निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मन्! पितृकर्म (श्राद्ध) में सिला हुआ वस्त्र नहीं पहनना चाहिये। अपवित्र अङ्गपर पड़ा हुआ वस्त्र भी अशुद्ध हो जाता है। मल-मूत्रका त्याग अथवा मैथुन करते समय कमर अथवा पीठपर जो वस्त्र रहता है, उस वस्त्रको अवश्य ही बदल दे। श्राद्धमें तो ऐसे वस्त्रको त्याग देना ही उचित है। मुने! विद्वान् पुरुषोंको सदा चक्रधारी भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। विशेषतः पवित्र एवं जितेन्द्रिय पुरुषोंका यह आवश्यक कर्तव्य है। भगवान् हृषीकेशके शयन करनेपर तृणशाक (पत्तियोंका साग), कुसुमिका (लौकी) तथा सिले हुए कपड़े यत्नपूर्वक त्याग देने चाहिये। जो चौमासेमें भगवान्के शयन करनेपर इन वस्तुओंको त्याग देता है, वह कल्पपर्यन्त कभी नरकमें नहीं पड़ता। विप्रवर! जिसने असत्य-भाषण, क्रोध, शहद तथा पर्वके अवसरपर मैथुनका त्याग कर दिया है, वह अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। विद्वन्! किसी पदार्थको उपभोगमें लानेके पहले उसमेंसे कुछ ब्राह्मणको दान करना चाहिये; जो ब्राह्मणको दिया जाता है, वह धन अक्षय होता है। ब्रह्मन्! मनुष्य दानमें दिये हुए धनका कोटि-कोटि गुना फल पाता है। जो पुरुष सदा ब्राह्मणकी बतायी हुई उत्तम विधि तथा शास्त्रोक्त नियमोंका पालन करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है, अतः पूर्ण प्रयत्न करके यथाशक्ति नियम और दानके द्वारा देवाधिदेव जनार्दनको संतुष्ट करना चाहिये।

नारदजीने पूछा—विश्वेश्वर! जिसके आचरणसे

भगवान् गोविन्द मनुष्योंपर संतुष्ट होते हैं, वह ब्रह्मचर्य कैसा होता है ? प्रभो ! यह बतलानेकी कृपा करें।

महादेवजीने कहा—विद्वन् ! जो केवल अपनी ही स्त्रीसे अनुराग रखता है, उसे विद्वानोंने ब्रह्मचारी माना है। केवल ऋतुकालमें स्त्रीसमागम करनेसे ब्रह्मचर्यकी रक्षा होती है। जो अपनेमें भक्ति रखनेवाली निर्दोष पतीका परित्याग करता है, वह पापी मनुष्य लोकमें भ्रूणहत्याको प्राप्त होता है।

चौमासेमें जो स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय और देवपूजन किया जाता है, वह सब अक्षय होता है। जो एक अथवा दोनों समय पुराण सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके धामको जाता है। जो भगवान्के शयन करनेपर विशेषतः उनके नामका कीर्तन और जप करता है, उसे कोटिगुना फल मिलता है। जो ब्राह्मण भगवान् विष्णुका भक्त है और प्रतिदिन उनका पूजन करता है, वही सबमें धर्मात्मा तथा वही सबसे पूज्य है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। मुने ! इस पुण्यमय पवित्र एवं पापनाशक चातुर्मास्य व्रतको सुननेसे मनुष्यको गङ्गास्नानका फल मिलता है।

नारदजीने कहा—प्रभो ! चातुर्मास्य व्रतका उद्यापन बतलाइये; क्योंकि उद्यापन करनेपर निश्चय ही सब कुछ परिपूर्ण होता है।

महादेवजी बोले—महाभाग ! यदि व्रत करनेवाला पुरुष व्रत करनेके पश्चात् उसका उद्यापन नहीं करता, तो वह कर्मोंके यथावत् फलका भागी नहीं होता। मुनिश्रेष्ठ ! उस समय विशेषरूपसे सुवर्णके साथ अन्नका दान करना चाहिये; क्योंकि अन्नके दानसे वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो मनुष्य चौमासेभर पलशाकी पतलमें भोजन करता है, वह उद्यापनके समय

घीके साथ भोजनका पदार्थ ब्राह्मणको दान करे। यदि उसने अयाचित व्रत (बिना माँगी स्वतः प्राप्त अन्नका भोजन) किया हो तो सुवर्णयुक्त वृषभका दान करे। मुनिश्रेष्ठ ! उड़दका त्याग करनेवाला पुरुष बछड़ेसहित गौका दान करे। आँवलेके फलसे स्नानका नियम पालन करनेपर मनुष्य एक माशा सुवर्ण दान करे। फलोंके त्यागका नियम करनेपर फल दान करे। धान्यके त्यागका नियम होनेपर कोई-सा धान्य (अन्न) अथवा अगहनीके चावलका दान करे। भूमिशयनका नियम पालन करनेपर रुईके गदे और तकियेसहित शव्यादान करे। द्विजवर ! जिसने चौमासेमें ब्रह्मचर्यका पालन किया है, उसको चाहिये कि भक्तिपूर्वक ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन दे, साथ ही उपधोगके अन्यान्य सामान, दक्षिणा, साग और नमक दान करे। प्रतिदिन बिना तेल लगाये स्नानका नियम पालन करनेवाला मनुष्य घी और सत्तू दान करे। नख और केश रखनेका नियम पालन करनेपर दर्पण दान करे। यदि जूते छोड़ दिये हों तो उद्यापनके समय जूतोंका दान करना चाहिये। जो प्रतिदिन दीपदान करता रहा हो, वह उस दिन सोनेका दीप प्रस्तुत करे और उसमें घी डालकर विष्णुभक्त ब्राह्मणको दे दे। देते समय यही उद्देश्य होना चाहिये कि मेरा व्रत पूर्ण हो जाय। पान न खानेका नियम लेनेपर सुवर्णसहित कपूरका दान करे। द्विजश्रेष्ठ ! इस प्रकार नियमके द्वारा समय-समयपर जो कुछ परित्याग किया हो, वह परलोकमें सुख-प्राप्तिकी इच्छासे विशेषरूपसे दान करे। पहले स्नान आदि करके भगवान् विष्णुके समक्ष उद्यापन करना चाहिये। शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णु आदि-अन्तसे रहित हैं, उनके आगे उद्यापन करनेसे व्रत परिपूर्ण होता है।



यमराजकी आराधना और गोपीचन्दनका महात्म्य

नारदजीने कहा—सुरश्रेष्ठ ! अब मेरे हितके लिये आप यमकी आराधना बताइये । देव ! किस उपायसे मनुष्यको एक नरकसे दूसरे नरकमें नहीं जाना पड़ता । सुना जाता है—यमलोकमें वैतरणी नदी है, जो दुर्दर्श, अपार, दुस्तर तथा रक्तकी धारा बहानेवाली है । वह समस्त प्राणियोंके लिये दुस्तर है, उसे सुगमताके साथ किस प्रकार पार किया जा सकता है ?

महादेवजी बोले—ब्रह्मन् ! पूर्वकालकी बात है, द्वारकापुरीके समुद्रमें स्नान करके मैं ज्यों ही निकला, सामनेसे मुझे ब्रह्मचारी मुद्गल मुनि आते दिखायी दिये । उन्होंने प्रणाम किया और विस्मित होकर इस प्रकार कहना आरम्भ किया ।



मुद्गल बोले—देव ! मैं अकस्मात् मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा था । उस समय मेरे सारे अङ्ग जल रहे थे । इतनेहीमें यमराजके दूतोंने आकर मुझे बलपूर्वक शरीरसे खींचा । मैं अंगूठेके बराबर पुरुष-शरीर धारण करके बाहर निकला; फिर उन दूतोंने मुझे

खूब कसकर बाँधा और उसी अवस्थामें यमराजके पास पहुँचा दिया । मैं एक ही क्षणमें यमराजकी सभामें पहुँचकर देखता हूँ कि पीले नेत्र और काले मुखवाले यम सामने ही बैठे हैं । वे महाभयङ्कर जान पड़ते थे । भयानक राक्षस और दानव उनके पास बैठे और सामने खड़े थे । अनेक धर्माधिकारी तथा चित्रगुप्त आदि लेखक वहाँ मौजूद थे । मुझे देखकर विश्वके शासक यमने अपने किङ्करोंसे कहा—‘अरे ! तुमलोग नामके भ्रममें पड़कर मुनिको कैसे ले आये ? इन्हें छोड़ो और कौपिण्य नामक ग्राममें जो भीमकका पुत्र मुद्गल नामक क्षत्रिय है, उसको ले आओ; क्योंकि उसकी आयु समाप्त हो चुकी है ।’

यह सुनकर वे दूत वहाँ गये और पुनः लैट आये । फिर समस्त यमदूत धर्मराजसे बोले—‘सूर्यनन्दन ! वहाँ जानेपर भी हमलोगोंने ऐसे किसी प्राणीको नहीं देखा, जिसकी आयु क्षीण हो चुकी हो । न जाने, कैसे हमलोगोंका चित्त भ्रममें पड़ गया ?’

यमराज बोले—जिन लोगोंने ‘वैतरणी’ नामक द्वादशीका ब्रत किया है, वे तुम यमदूतोंके लिये प्रायः अदृश्य हैं । उज्जैन, प्रयाग अथवा यमुनाके तटपर जिनकी मृत्यु हुई है तथा जिन्होंने तिल, हाथी, सुवर्ण और गौ आदिका दान किया है, वे भी तुमलोगोंकी दृष्टिमें नहीं आ सकते ।

दूतोंने पूछा—स्वामिन् ! वह ब्रत कैसा है ? आप उसका पूरा-पूरा वर्णन कीजिये । देव ! मनुष्योंको उस समय ऐसा कौन-सा कर्म करना चाहिये जो आपको संतोष देनेवाला हो । जिन्होंने कृष्णपक्षकी एकादशीका ब्रत किया है, वे कैसे पापमुक्त हो सकते हैं ?

यमराज बोले—दूतो ! मार्गशीर्ष आदि मासोंमें जो ये कृष्णपक्षकी द्वादशियाँ आती हैं, उन सबमें विधिपूर्वक वैतरणी ब्रत करना चाहिये । जबतक वर्ष पूरा न हो जाय, तबतक प्रतिमास ब्रतको चालू रखना चाहिये । ब्रतके दिन उपवासका नियम ग्रहण करना

चाहिये, जो भगवान् विष्णुको संतोष प्रदान करनेवाला है। द्वादशीको श्रद्धा और भक्तिके साथ श्रीगोविन्दकी पूजा करके इस प्रकार कहे—‘देव ! स्वप्रमें इन्द्रियोंकी विकलताके कारण यदि भोजन और मैथुनकी क्रिया बन जाय तो आप मुझपर कृपा करके क्षमा कीजिये।’ इस प्रकार नियम करके मिठ्ठी, गोमय और तिल लेकर मध्याह्नमें तीर्थ (जलाशय) के पास जाय और व्रतकी पूर्तिके लिये निम्नाङ्कित मन्त्रसे विधिपूर्वक स्नान करे—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे ॥
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसञ्चितम् ।
त्वया हतेन पापेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
काश्यां चैव तु संभूतास्तिला वै विष्णुरूपिणः ।
तिलस्नानेन गोविन्दः सर्वपापं व्यपोहति ॥
विष्णुदेहोद्भवे देवि महापापापहारिणि ।
सर्वपापं हर त्वं वै सर्वौषधि नमोऽस्तु ते ॥

(६८। ३४—३७)

‘वसुन्धरे ! तुम्हारे ऊपर अश्व और रथ चला करते हैं तथा वामन अवतारके समय भगवान् विष्णुने भी तुम्हें अपने चरणोंसे नापा था। मृत्तिके ! मैंने पूर्वजन्ममें जो पाप सञ्चित किया है, मेरा वह सारा पाप तुम हर लो। तुम्हारे द्वारा पापका नाश हो जानेपर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। तिल काशीमें उत्पन्न हुए हैं तथा वे भगवान् विष्णुके स्वरूप हैं। तिलमिश्रित जलके द्वारा स्नान करनेपर भगवान् गोविन्द सब पापोंका नाश कर देते हैं। देवी सर्वौषधि ! तुम भगवान् विष्णुके देहसे प्रकट हुई तथा महान् पापोंका अपहरण करनेवाली हो। तुम्हें नमस्कार है। तुम मेरे सारे पाप हर लो।’

इस प्रकार मृत्तिका आदिके द्वारा स्नान करके सिरपर तुलसीदल धारण कर तुलसीका नाम लेते हुए स्नान करे। यह स्नान ऋषियोंद्वारा बताया गया है। इसे विधिपूर्वक करना चाहिये। इस तरह स्नान करनेके पश्चात् जलसे बाहर निकलकर दो शुद्ध वस्त्र धारण करे। फिर देवताओं और पितरोंका तर्पण करके श्रीविष्णुका पूजन करे। उसकी विधि इस प्रकार है। पहले एक कलशकी, जो फूटा-टूटा न हो, स्थापना करे। उसमें पञ्चपल्लव

और पञ्चरत्न डाल दे। फिर दिव्य माला पहनाकर उस कलशको गन्धसे सुवासित करे। कलशमें जल भर दे और उसमें द्रव्य डालकर उसके ऊपर ताँबेका पात्र रख दे। इसके बाद उस पात्रमें देवाधिदेव तपोनिधि भगवान् श्रीधरकी स्थापना करके पूर्वोक्त विधिसे पूजा करे। फिर मिठ्ठी और गोबर आदिसे सुन्दर मण्डल बनावे। सफेद और धुले हुए चावलोंको पानीमें पीसकर उसके द्वारा मण्डलका संस्कार करे। तत्पश्चात् हाथ-पैर आदि अङ्गोंसे युक्त धर्मराजका स्वरूप बनावे और उसके आगे ताँबेकी वैतरणी नदी स्थापित करके उसकी पूजा करे। उसके बाद पृथक् आवाहन आदि करके यमराजकी विधिवत् पूजा करे।

पहले भगवान् विष्णुसे इस प्रकार प्रार्थना करे—महाभाग केशव ! मैं विश्वरूपी देवेश्वर यमका आवाहन करता हूँ। आप यहाँ पधारें और समीपमें निवास करें। लक्ष्मीकान्त ! हरे ! यह आसनसहित पाद्य आपकी सेवामें समर्पित है। प्रभो ! विश्वका प्राणिसमुदाय आपका स्वरूप है। आपको नमस्कार है। आप प्रतिदिन मुझपर कृपा कीजिये।’ इस प्रकार प्रार्थना करके ‘भूतिदाय नमः’ इस मन्त्रके द्वारा भगवान् विष्णुके चरणोंका, ‘अशोकाय नमः’ से घुटनोंका, ‘शिवाय नमः’ से जाँधोंका, ‘विश्वमूर्तये नमः’ से कटिभागका, ‘कन्दपाय नमः’ से लिङ्गका, ‘आदित्याय नमः’ से अण्डकोषका, ‘दामोदराय नमः’ से उदरका, ‘दासुदेवाय नमः’ से स्तनोंका, ‘श्रीधराय नमः’ से मुखका, ‘क्षेत्रवाय नमः’ से केशोंका, ‘शार्ङ्गधराय नमः’ से पीठका, ‘वरदाय नमः’ से पुनः चरणोंका, ‘शङ्खपाणये नमः’, चक्रपाणये नमः, ‘असिपाणये नमः’, ‘गदापाणये नमः’ और ‘परशुपाणये नमः’—इन नाममन्त्रोंद्वारा क्रमशः शङ्ख, चक्र, खड्ग, गदा तथा परशुका तथा ‘सर्वात्मने नमः’ इस मन्त्रके द्वारा मस्तकका ध्यान करे। इसके बाद यों कहे—‘मैं समस्त पापोंकी राशिका नाश करनेके लिये मत्स्य, कच्छप, वंशाह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध तथा कल्पिकका पूजन करता हूँ। भगवन् ! इन अवतारोंके रूपमें आपको

नमस्कार है। बारम्बार नमस्कार है।' इन सभी मन्त्रोंके द्वारा श्रीविष्णुका ध्यान करके उनका पूजन करे।*

तत्पश्चात् निम्नाङ्कित नाममन्त्रोंके द्वारा भगवान् धर्मराजका पूजन करना चाहिये—

धर्मराज नमस्तेऽस्तु धर्मराज नमोऽस्तु ते ।
दक्षिणाशाय ते तुभ्यं नमो महिषवाहन ॥
चित्रगुप्त नमस्तुभ्यं विचित्राय नमो नमः ।
नरकार्तिप्रशान्त्यर्थं कामान् यच्छ ममेप्सितान् ॥
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ।
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः ।
नीलाय चैव दध्नाय नित्यं कुर्यान्नमो नमः ॥

(६८।५३—५६)

'धर्मराज ! आपको बारम्बार नमस्कार है। दक्षिण दिशाके स्वामी ! आपको नमस्कार है। महिषपर चलनेवाले देवता ! आपको नमस्कार है। चित्रगुप्त ! आपको नमस्कार है। नरककी पीड़ा शान्त करनेके लिये विचित्र नामसे प्रसिद्ध आपको नमस्कार है। आप मेरी मनोवाञ्छित कामनाएँ पूर्ण करें। यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूत-क्षय, वृकोदर, चित्र, चित्रगुप्त, नील और दध्नको नित्य नमस्कार करना चाहिये।'

तदनन्तर वैतरणीकी प्रतिमाको अर्घ्य देते हुए इस प्रकार कहे—'वैतरणी ! तुम्हें पार करना अत्यन्त कठिन है। तुम पापोंका नाश करनेवाली और सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली हो। महाभागे ! यहाँ आओ और मेरे दिये हुए अर्घ्यको ग्रहण करो। यमद्वारके भयङ्कर मार्गमें वैतरणी नदी विख्यात है। उससे उद्धार पानेके

लिये मैं यह अर्घ्य दे रहा हूँ। जो जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्थासे परे है, पापी पुरुषोंके लिये जिसको पार करना अत्यन्त कठिन है, जो समस्त प्राणियोंके भयका निवारण करनेवाली है तथा यातनामें पड़े हुए प्राणी भयके मारे जिसमें डूब जाते हैं, उस भयङ्कर वैतरणी नदीको पार करनेके लिये मैंने यह पूजन किया है। वैतरणी देवी ! तुम्हारी जय हो। तुम्हें बारम्बार नमस्कार है। जिसमें देवता वास करते हैं, वही वैतरणी नदी है। मैंने भगवान् केशवकी प्रसन्नताके लिये भक्तिपूर्वक उस नदीका पूजन किया है। पापोंका नाश करनेवाली सिन्धु-रूपिणी वैतरणी नदीकी पूजा सम्पन्न हुई। मैं उसे पार करने तथा सब पापोंसे छुटकारा पानेके लिये इस वैतरणी-प्रतिमाका दान करता हूँ।'

इसके बाद निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर भगवान्से प्रार्थना करे—

कृष्ण कृष्ण जगन्नाथ संसारादुद्धरस्य माम् ॥
नामग्रहणमात्रेण सर्वपापं हरस्व मे ।

(६८।६४-६५)

'कृष्ण ! कृष्ण ! जगदीश्वर ! आप संसारसे मेरा उद्धार कीजिये। अपने नामोंके कीर्तनमात्रसे मेरा सारा पाप हर लीजिये।'

फिर क्रमशः यज्ञोपवीत आदि समर्पण करे। यज्ञोपवीतका मन्त्र इस प्रकार है—

यज्ञोपवीतं परमं कारितं नवतन्तुभिः ॥
प्रतिगृहीष्व देवेशं प्रीतो यच्छ ममेप्सितम् ।

(६८।६५-६६)

'देवेश्वर ! 'मैंने नौ तन्तुओंसे इस उत्तम-

* आवाहयामि देवेशं यमं वै विश्वरूपिणम्। इहाभ्येहि महाभाग सांनिध्यं कुरु केशव॥

इदं पाद्यं श्रियः कान्त सोपविष्टं हरे प्रभो। विश्वैषाय नमो नित्यं कृपां कुरु ममोपरि॥

भूतिदाय नमः पादौ अशोकाय च जानुनी। ऊरु नमः शिवायेति विश्वमूर्ते नमः कटिम्॥

कन्दपाय नमो मेद्मादित्याय फलं तथा। दामोदराय जठरं वासुदेवाय वै स्तनौ॥

श्रीधराय मुखं केशान् केशवायेति वै नमः। पृष्ठं शार्ङ्गधरायेति चरणौ वरदाय च॥

स्वनामा शङ्खचक्रसिगदापशुपाणये। सर्वात्मने नमस्तुभ्यं शिर इत्यभिधीयते॥

मत्स्यं कूर्मं च वाराहं नारसिंहं च वामनम्। रामं रामं च कृष्णं च बुद्धं कल्पिं नमोऽस्तु ते॥

सर्वपापैवनाशार्थं पूजयामि नमो नमः। एषिष्व सर्वशो मन्त्रैर्विष्णुं ध्यात्वा प्रपूजयेत्॥ (६८।४५—५२)

यज्ञोपवीतका निर्माण कराया है, आप इसे ग्रहण करें और प्रसन्न होकर मेरा मनोरथ पूर्ण करें।'

ताम्बूल-मन्त्र

इदं दत्तं च ताम्बूलं यथाशक्ति सुशोभनम् ॥
प्रतिगृहीष्व देवेश मामुद्धर भवार्णवात् ।

(६८ । ६६-६७)

'देवेश ! मैंने यथाशक्ति उत्तम शोभासम्पन्न ताम्बूल दान किया है, इसे स्वीकार करें और भवसागरसे मेरा उद्धार कर दें।'

दीप-आरतीका मन्त्र

पञ्चवर्तिंप्रदीपोऽयं देवेशारातिंकं तव ॥
मोहान्धकारद्युमणे भक्तियुक्तो भवार्तिहन् ।

(६८ । ६७-६८)

'देवेश ! आप मोहरूपी अन्धकार दूर करनेके लिये सूर्यरूप हैं। भव-बन्धनकी पीड़ा हरनेवाले परमात्मन् ! मैं भक्तियुक्त होकर आपकी सेवामें यह पाँच बत्तियोंका दीपक प्रस्तुत करता हूँ। यह आपके लिये आरती है।'

नैवेद्य-मन्त्र

परमात्मं सुपक्षात्मं समस्तरससंयुतम् ॥
निवेदितं मया भक्त्या भगवन् प्रतिगृह्णताम् ।

(६८ । ६८-६९)

'भगवन् ! मैंने सब रसोंसे युक्त सुन्दर पकवान, जो परम उत्तम अन्त्र है, भक्तिपूर्वक सेवामें निवेदन किया है; आप इसे स्वीकार करें।'

जप-समर्पण

द्वादशाक्षरमन्त्रेण यथासंरब्यजपेन च ॥
प्रीयतां मे श्रियः कान्तः प्रीतो यच्छतु वाञ्छितम् ।

(६८ । ६९-७०)

'द्वादशाक्षर मन्त्रका यथाशक्ति जप करनेसे भगवान् लक्ष्मीकान्त मुझपर प्रसन्न हों और प्रसन्न होकर मुझे मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करें।'

इस प्रकार श्रीहरिका पूजन करनेके बाद निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर गौको प्रणाम करे—

पञ्च गावः समुत्पन्ना यथ्यमाने महोदधौ ।

तासां मध्ये तु या नन्दा तस्यै धेन्वै नमो नमः ॥

(६८ । ७०-७१)

'समुद्रका मन्थन होते समय पाँच गौएँ उत्पन्न हुई थीं। उनमेंसे जो नन्दा नामकी धेनु है, उसे मेरा बारम्बार नमस्कार है।'

तत्पश्चात् विधिपूर्वक गौकी पूजा करके निम्नाङ्कित मन्त्रोद्घारा एकाग्रचित्त हो अर्ध्य प्रदान करे—

सर्वकामदुहे देवि सर्वार्तिकनिवारिणि ।
आरोग्यं संतति दीर्घा देहि नन्दिनि मे सदा ॥
पूजिता च वसिष्ठेन विश्वामित्रेण धीमता ।
कपिले हर मे पापं यन्मया पूर्वसञ्चितम् ॥
गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।
नाके मामुपतिष्ठन्तु हेमशृङ्खल्यः पयोमुचः ॥
सुरभ्यः सौरभेयाश्च सरितः सागरास्तथा ।
सर्वदेवमये देवि सुभद्रे भक्तवत्सले ॥

(६८ । ७२—७५)

'समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली तथा सब प्रकारकी पीड़ा हरनेवाली देवी नन्दिनी ! मुझे सर्वदा आरोग्य तथा दीर्घायु संतान प्रदान करो। कपिले ! महर्षि वसिष्ठ तथा बुद्धिमान् विश्वामित्रजीने भी तुम्हारी पूजा की है। मैंने पूर्वजन्ममें जो पाप सञ्चित किया है, उसे हर ले। गौएँ मेरे आगे रहें, गौएँ ही मेरे पीछे रहें तथा स्वर्गलोकमें भी सुवर्णमय सींगोंसे सुशोभित, सरिताओं और समुद्रोंकी भाँति दूधकी धारा बहानेवाली सुरभी और उनकी संतानें मेरे पास आवें। सर्वदेवमयी देवी नन्दिनी ! तुम परम कल्याणमयी और भक्तवत्सला हो। तुम्हें नमस्कार है।'

इस प्रकार विधिवत् पूजा करके गौओंको प्रतिदिन ग्रास समर्पण करे। उसका मन्त्र इस प्रकार है—

सौरभेद्यः सर्वहिताः पवित्राः पापनाशिनीः ।

प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः ॥

(६८ । ७६-७७)

'सबके हितमें लगी रहनेवाली, पवित्र, पापनाशिनी तथा त्रिभुवनकी माता गौएँ मेरा दिया हुआ ग्रास ग्रहण करें।'

महादेवजी कहते हैं—इस प्रकार धर्मराजके मुखसे सुने हुए वैतरणी-ब्रतका मेरे आगे वर्णन करके

इच्छानुसार भ्रमण करनेवाले द्विजश्रेष्ठ मुद्गल मुनि चले गये ।

द्विजवर ! जहाँ गोपीचन्दन रहता है, वह घर तीर्थ-स्वरूप है—यह भगवान् श्रीविष्णुका कथन है । जिस ब्राह्मणके घरमें गोपीचन्दन मौजूद रहता है, वहाँ कभी शोक, मोह तथा अमङ्गल नहीं होते । जिसके घरमें रात-दिन गोपीचन्दन प्रस्तुत रहता है, उसके पूर्वज सुखी होते हैं तथा सदा उसकी संतति बढ़ती है । गोपीतालाबसे उत्पन्न होनेवाली मिट्टी परम पवित्र एवं शरीरका शोधन करनेवाली है । देहमें उसका लेप करनेसे सारे रोग नष्ट होते हैं तथा मानसिक चिन्ताएँ भी दूर हो जाती हैं । अतः पुरुषोंद्वारा शरीरमें धारण किया हुआ गोपीचन्दन सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है । इसका

ध्यान और पूजन करना चाहिये । यह मल-दोषका विनाश करनेवाला है । इसके स्पर्शमात्रसे मनुष्य पवित्र हो जाता है । वह अन्तकालमें मनुष्योंके लिये मुक्तिदाता एवं परम पावन है । द्विजश्रेष्ठ ! मैं क्या बताऊँ, गोपीचन्दन मोक्ष प्रदान करनेवाला है । भगवान् विष्णुका प्रिय तुलसीकाष्ठ, उसके मूलकी मिट्टी, गोपीचन्दन तथा हरिचन्दन—इन चारोंको एकमें मिलाकर विद्वान् पुरुष अपने शरीरमें लगाये । जो ऐसा करता है, उसके द्वारा जम्बूद्वीपके समस्त तीर्थोंका सदाके लिये सेवन हो जाता है । जो गोपीचन्दनको धिसकर उसका तिलक लगाता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुके परम पदको प्राप्त होता है । जिस पुरुषने गोपीचन्दन धारण कर लिया, उसने मानो गयामें जाकर अपने पिताका श्राद्ध-तर्पण आदि सब कुछ कर लिया ।

— ★ —

वैष्णवोंके लक्षण और महिमा तथा श्रवणद्वादशी-ब्रतकी विधि और माहात्म्य-कथा

महादेवजी कहते हैं—नारद ! सुनो, अब मैं वैष्णवोंके लक्षण बताऊँगा, जिन्हें सुनकर लोग ब्रह्महत्या आदि पातकोंसे मुक्त हो जाते हैं । भक्त भगवान् विष्णुका होकर रहा है, इसलिये वह वैष्णव कहलाता है । समस्त वर्णोंकी अपेक्षा वैष्णवको श्रेष्ठ कहा गया है । जिनका आहार अत्यन्त पवित्र है, उन्हींके वंशमें वैष्णव पुरुष जन्म धारण करता है । ब्रह्मन् ! जिनके भीतर क्षमा, दया, तपस्या और सत्यकी स्थिति है, उन वैष्णवोंके दर्शनमात्रके आगसे रुईकी भाँति सारा पाप नष्ट हो जाता है । जो हिंसासे दूर रहता है, जिसकी मति सदा भगवान् विष्णुमें लगी रहती है, जो अपने कण्ठमें तुलसीकाष्ठकी माला धारण करता है, प्रतिदिन अपने अङ्गोंमें बारह तिलक लगाये रहता है तथा विद्वान् होकर धर्म और अधर्मका ज्ञान खेलता है, वह मनुष्य वैष्णव कहलाता है । जो सदा वेद-शास्त्रके अध्यासमें लगे रहते, प्रतिदिन यज्ञोंका अनुष्ठान करते तथा बारम्बार वर्षके चौबीस उत्सव मनाते रहते हैं, उनका कुल परम धन्य है; उन्हींका यश विस्तारको प्राप्त होता है तथा वे ही लोग संसारमें धन्यतम एवं भगवद्भक्त हैं । ब्रह्मन् ! जिसके कुलमें एक

ही भगवद्भक्त पुरुष उत्पन्न हो जाता है, उसका कुल बारम्बार उस पुरुषके द्वारा उद्धारको प्राप्त होता रहता है । वैष्णवोंके दर्शनमात्रसे ब्रह्महत्यारा भी शुद्ध हो जाता है । महामुने ! इस लोकमें जो वैष्णव पुरुष देखे जाते हैं, तत्त्ववेत्ता पुरुषोंको उन्हें विष्णुके समान ही जानना चाहिये । जिसने भगवान् विष्णुकी पूजा की, उसके द्वारा सबका पूजन हो गया । जिसने वैष्णवोंकी पूजा की, उसने महादान कर लिया । जो वैष्णवोंको सदा फल, पत्र, साग, अन्न अथवा वस्त्र दिया करते हैं, वे इस भूमप्डलमें धन्य हैं । ब्रह्मन् ! वैष्णवोंके विषयमें अब और क्या कहा जाय । बारम्बार अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं है; उनका दर्शन और स्पर्श—सब कुछ सुखद है । जैसे भगवान् विष्णु हैं, वैसा ही उनका भक्त वैष्णव पुरुष भी है । इन दोनोंमें कभी अन्तर नहीं रहता । ऐसा जानकर विद्वान् पुरुष सदा वैष्णवोंकी पूजा करे । जो इस पृथ्वीपर एक ही वैष्णव ब्राह्मणको भोजन करा देता है, उसने सहस्रों ब्राह्मणोंको भोजन करा दिया—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ।

नारदजीने कहा—सुरश्रेष्ठ ! जो सदा उपवास

करनेमें असमर्थ हैं, उनके लिये कोई एक ही द्वादशीका ब्रत, जो पुण्यजनक हो, बतलाइये।

महादेवजी बोले—भाद्रपद मासके शुक्लपक्षमें जो श्रवण नक्षत्रसे युक्त द्वादशी होती है, वह सब कुछ देनेवाली पुण्यमयी तथा उपवास करनेपर महान् फल देनेवाली है। जो नदियोंके संगममें नहाकर उक्त द्वादशीको उपवास करता है, वह अनायास ही बारह द्वादशियोंका फल पा लेता है। बुधवार और श्रवण नक्षत्रसे युक्त जो द्वादशी होती है, उसका महत्व बहुत बड़ा है। उस दिन किया हुआ सब कुछ अक्षय हो जाता है। श्रवण-द्वादशीके दिन विद्वान् पुरुष जलपूर्ण कलशकी स्थापना करके उसके ऊपर एक पात्र रखे और उसमें श्रीजनार्दनकी स्थापना करे। तत्पश्चात् उनके आगे घीमें पका हुआ नैवेद्य निवेदन करे; साथ ही अपनी शक्तिके अनुसार जलसे भरे हुए अनेक नये घड़ोंका दान करे। इस प्रकार श्रीगोविन्दकी पूजा करके उनके समीप रात्रिमें जागरण करे। फिर निर्मल प्रभातकाल आनेपर स्नान करके फूल, धूप, नैवेद्य, फल और सुन्दर वस्त्र आदिके द्वारा भगवान् गरुडध्वजकी पूजा करे। तदनन्तर पुमाञ्जलि दे और इस मन्त्रको पढ़े—

नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंयुत ।
अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ॥

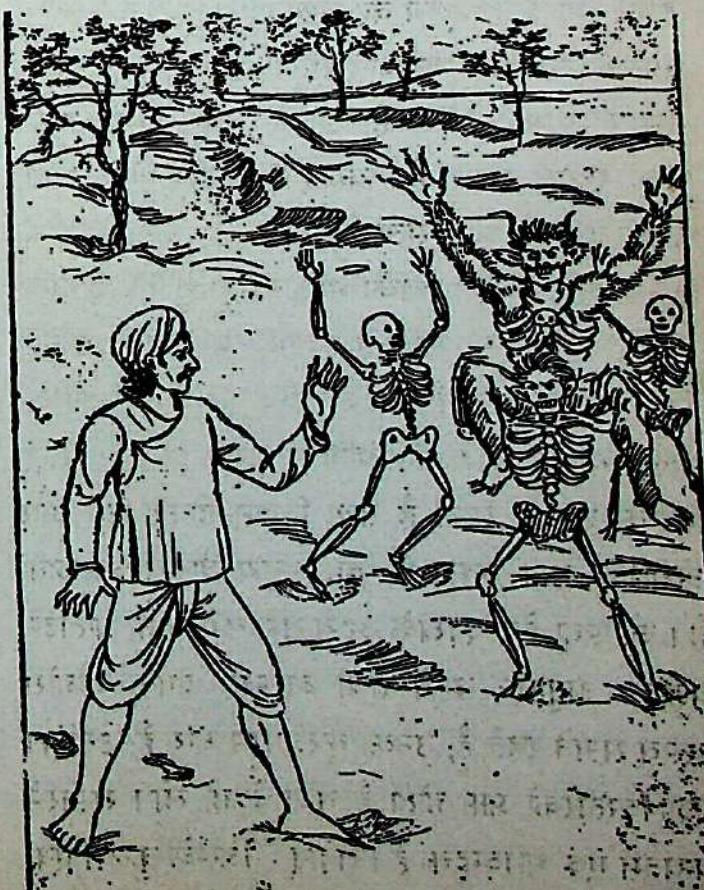
(७० | १०)

‘बुधवार और श्रवण नक्षत्रसे युक्त भगवान् गोविन्द ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। मेरी पापराशिका नाश करके आप मुझे सब प्रकारके सुख प्रदान करें।’

तत्पश्चात् वेद-वेदाङ्गोंके पारगामी, विशेषतः पुराणोंके ज्ञाता विद्वान् ब्राह्मणको विधिपूर्वक पवित्र अन्तर्का दान करे। इस प्रकार श्रेष्ठ पुरुष किसी नदीके किनारे एकचित्त होकर उक्त विधिसे सब कार्य पूर्ण करे। इस विषयमें जानकार लोग यह प्राचीन इतिहास कहा करते हैं—एक महान् वनमें जो घटना घटित हुई थी, उसका वर्णन करता हूँ: सुनो।

विद्वन् ! दाशोरक नामका जो देश है, उसके

पश्चिम भागमें मरु (मारवाड़) प्रदेश है, जो समस्त प्राणियोंके लिये भय उत्पन्न करनेवाला है। वहाँकी भूमि तपी हुई बालूसे भरी रहती है। वहाँ बड़े-बड़े साँप हैं, जो महादुष होते हैं। वह भूमि थोड़ी छायावाले वृक्षोंसे व्याप्त है। शमी, खैर, पलाश, करील और पीलू—ये ही वहाँके वृक्ष हैं। मजबूत काँटोंसे घिरे हुए वहाँके वृक्ष बड़े भयङ्कर दिखायी देते हैं; तथापि कर्मबन्धनसे बँधे होनेके कारण वहाँ भी सब जीव जीवन धारण करते हैं। विद्वन् ! उस देशमें न तो पर्याप्त जल है और न जल धारण करनेवाले बादल ही वहाँ दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसे देशमें कोई बनिया भाग्यवश अपने साथियोंसे बिछुड़कर इधर-उधर भटक रहा था। उसके हृदयमें भ्रम छा गया था। वह भूख, प्यास और परिश्रमसे पीड़ित हो रहा था। कहाँ गाँव है ? कहाँ जल है ? मैं कहाँ जाऊँगा ? यह कुछ भी उसे जान नहीं पड़ता था। इसी समय उसने कुछ प्रेत देखे, जो भूख-प्याससे व्याकुल एवं भयङ्कर दिखायी देते थे। उनमें एक प्रेत ऐसा था, जो दूसरे प्रेतके कंधेपर चढ़कर चलता था तथा और बहुत-से प्रेत उसे चारों ओरसे धेरे हुए थे। प्रेतोंकी भयानक आवाजके साथ वह



भयङ्कर प्रेत उधर ही आ रहा था । वह उस भयानक जंगलमें मनुष्यको आया देख प्रेतके कंधेसे पृथ्वीपर उतर पड़ा और बनियेके पास आकर उसे प्रणाम करके इस प्रकार बोला—‘इस घोर प्रदेशमें आपका कैसे प्रवेश हुआ ?’ यह सुनकर उस बुद्धिमान् बनियेने कहा—‘दैवयोगसे तथा पूर्वजन्मके किये हुए कर्मकी प्रेरणासे मैं अपने साथियोंसे बिछुड़ गया हूँ । इस प्रकार मेरा यहाँ प्रवेश सम्भव हुआ है । इस समय मुझे बड़े जोरकी भूख और प्यास सता रही है ।’

तब उस प्रेतने उस समय अपने अतिथिको उत्तम अन्न प्रदान किया । उसके खानेमात्रसे बनियेको बड़ी तृप्ति हुई । वह एक ही क्षणमें प्यास और संतापसे रहित हो गया । इसके बाद वहाँ बहुत-से प्रेत आ पहुँचे । प्रधान प्रेतने क्रमशः उन सबको अन्नका भाग दिया । दही, भात और जलसे उन्हें बड़ी प्रसन्नता और तृप्ति हुई । इस प्रकार अतिथि और प्रेतसमुदायको तृप्ति करके उसने स्वयं भी बचे हुए अन्नका सुखपूर्वक भोजन किया । उसके भोजन कर लेनेपर वहाँ जो सुन्दर अन्न और जल प्रस्तुत हुआ था, वह सब अदृश्य हो गया । तब बनियेने उस प्रेतराजसे कहा—‘भाई ! इस वनमें तो मुझे यह बड़े आश्चर्यकी बात प्रतीत हो रही है । तुम्हें यह उत्तम अन्न और जल कहाँसे प्राप्त हुआ ? तुमने थोड़े-से ही अन्नसे इन बहुत-से जीवोंको तृप्ति कर दिया । इस घोर जंगलमें तुमलोग कैसे निवास करते हो ?’

प्रेत बोला—महाभाग ! मैंने अपना पूर्वजन्म केवल वाणिज्य-व्यवसायमें आसक्त होकर व्यतीत किया है । समूचे नगरमें मेरे समान दूसरा कोई दुरात्मा नहीं था । धनके लोभसे मैंने कभी किसीको भीखतक नहीं दी । उन दिनों एक गुणवान् ब्राह्मण मेरे मित्र थे । एक समय भादोंके महीनेमें, जब श्रवण नक्षत्र और द्वादशीका योग आया था, वे मुझे साथ लेकर तापी नदीके तटपर गये, जहाँ उसका चन्द्रभाग नदीके साथ पवित्र संगम हुआ था, चन्द्रभाग चन्द्रमाकी पुत्री है और तापी सूर्यकी । उन दोनोंके मिले हुए शीत और उष्ण जलमें मैंने ब्राह्मणके साथ प्रवेश किया । श्रवण-

द्वादशीके योगमें बहुत-से मनुष्योंको संतुष्ट किया । चन्द्रभागके उत्तम जलसे भरकर ब्राह्मणको जलपात्र दान किया तथा दही और भातके साथ जलसे भरे हुए बहुत-से पुरवे भी ब्राह्मणोंको दिये । इसके सिवा भगवान् राङ्करके समक्ष श्रेष्ठ ब्राह्मणको छाता, जूते, वस्त्र तथा श्रीहरिकी प्रतिमा भी दान की । उस नदीके तीरपर मैंने धनकी रक्षाके लिये व्रत किया था । उपवासपूर्वक एक मनोहर जलपात्र भी दान किया था । यह सब करके मैं घर लौट आया । तदनन्तर, कुछ कालके बाद मेरी मृत्यु हो गयी । नास्तिक होनेके कारण मुझे प्रेतकी योनिमें आना पड़ा । श्रवण-द्वादशीके योगमें मैंने जलका बड़ा पात्र दान किया था, इसलिये प्रतिदिन मध्याह्नके समय यह मुझे प्राप्त होता है । ये सब ब्राह्मणका धन चुरानेवाले पापी हैं; जो प्रेतभावको प्राप्त हुए हैं । इनमें कुछ परस्तीलम्पट और कुछ अपने स्वामीसे द्रोह करनेवाले रहे हैं । इस मरुप्रदेशमें आकर ये मेरे मित्र हो गये हैं । सनातन परमात्मा भगवान् विष्णु अक्षय (अविनाशी) हैं । उनके उद्देश्यसे जो कुछ दिया जाता है, वह सब अक्षय कहा गया है । उस अक्षय अन्नसे ही ये प्रेत पुनः-पुनः तृप्ति होते रहते हैं । आज तुम मेरे अतिथिके रूपमें उपस्थित हुए हो । मैं अन्नसे तुम्हारी पूजा करके प्रेत-भावसे मुक्त हो परमगतिको प्राप्त होऊँगा, परन्तु मेरे बिना ये प्रेत इस भयङ्कर वनमें कर्मानुसार प्राप्त हुई प्रेतयोनिकी दुस्सह पीड़ा भोगेंगे; अतः तुम मुझपर कृपा करनेके लिये इन सबके नाम और गोत्र लिखकर ले लो । महामते ! यहाँसे हिमालयपर जाकर तुम खजाना प्राप्त करोगे । तत्पश्चात् गया जाकर इन सबका श्राद्ध करं देना ।

महादेवजी कहते हैं—नारद ! बनियेको इस प्रकार आदेश देकर प्रेतने उसे सुखपूर्वक विदा किया । घर आनेपर उसने हिमालयकी यात्रा की और वहाँसे प्रेतका बताया हुआ खजाना लेकर वह लौट आया । उस खजानेका छठा अंश साथ लेकर वह ‘गया’ तीर्थमें गया । वहाँ पहुँचकर उस परम बुद्धिमान् बनियेने शास्त्रोक्त विधिसे उन प्रेतोंका श्राद्ध किया । एक-एकके नाम और गोत्रका उच्चारण करके उनके लिये पिण्डदान

किया। वह जिस दिन जिसका श्राद्ध करता था, उस दिन वह आकर स्वप्नमें बनियेको प्रत्यक्ष दर्शन देता और कहता कि 'महाभाग ! तुम्हारी कृपासे मैंने प्रेतभावको त्याग दिया और अब मैं परमगतिको प्राप्त हो रहा हूँ।' इस प्रकार वह महामना वैश्य गया-तीर्थमें प्रेतोंका विधिपूर्वक श्राद्ध करके बारम्बार भगवान् विष्णुका ध्यान करता हुआ अपने घर लौट आया। फिर भाद्रपद मासके शुक्लपक्षमें, जब श्रवण-द्वादशीका योग आया, तब वह सब आवश्यक सामग्री साथ लेकर नदीके संगमपर गया और वहाँ स्नान करके उसने द्वादशीका व्रत किया। स्नान, दान और भगवान् विष्णुका पूजन करनेके अनन्तर ब्रह्मणको उपहार भेट किया। एकचित्त होकर उस बुद्धिमान् वैश्यने शास्त्रोक्त विधिसे सब कार्य सम्पन्न विष्णुलोकमें जाता है।

किया। उसके बाद प्रतिवर्ष भादोंका महीना आनेपर श्रवण-द्वादशीके योगमें नदीके संगमपर जाकर वह भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे पूर्वोक्त प्रकारसे स्नान-दान आदि सब कार्य करने लगा। तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् उसकी मृत्यु हो गयी। उसने सब मनुष्योंके लिये दुर्लभ परमधामको प्राप्त कर लिया। आज भी वह विष्णुदूतोंसे सेवित हो वैकुण्ठधाममें विहार कर रहा है। ब्रह्मन् ! तुम भी इसी प्रकार श्रवण-द्वादशीका व्रत करो। वह इस लोक और परलोकमें भी सम्पूर्ण सौभाग्य प्रदान करनेवाला, उत्तम बुद्धिका देनेवाला तथा सब पापोंको हरनेवाला उत्तम साधन है। जो श्रवण-द्वादशीके योगमें इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह इसके प्रभावसे बुद्धिमान् वैश्यने शास्त्रोक्त विधिसे सब कार्य सम्पन्न विष्णुलोकमें जाता है।



नाम-कीर्तनकी महिमा तथा श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रका वर्णन

ऋषियोंने कहा—सूतजी ! आपका हृदय अत्यन्त करुणायुक्त है; अतएव श्रीमहादेवजी और देवर्षि नारदका जो अद्भुत संवाद हुआ था, उसे आपने हमलोगोंसे कहा है। हमलोग श्रद्धापूर्वक सुन रहे हैं। अब आप कृपापूर्वक यह बताइये कि महात्मा नारदने ब्रह्माजीसे भगवन्नामोंकी महिमाका किस प्रकार श्रवण किया था।

सूतजी बोले—द्विजश्रेष्ठ मुनियो ! इस विषयमें मैं पुराना इतिहास सुनाता हूँ। आप सब लोग ध्यान देकर सुनें। इसके श्रवणसे भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति बढ़ती है। एक समयकी बात है, चित्तको पूर्ण एकाग्र रखनेवाले नारदजी अपने पिता ब्रह्माजीका दर्शन करनेके लिये मेर पर्वतके शिखरपर गये। वहाँ आसनपर बैठे हुए जगत्यति ब्रह्माजीको प्रणाम करके मुनिश्रेष्ठ नारदजीने इस प्रकार कहा—'विश्वेश्वर ! भगवान्के नामकी जितनी शक्ति है, उसे बताइये। प्रभो ! ये जो सम्पूर्ण विश्वके स्वामी साक्षात् श्रीनारायण हरि हैं, इन अविनाशी परमात्माके नामकी कैसी महिमा है ?'

ब्रह्माजी बोले—बेटा ! इस कलियुगमें

विशेषतः नामकीर्तनपूर्वक भगवान्की भक्ति जिस प्रकार



करनी चाहिये, वह सुनो। जिनके लिये शास्त्रोंमें कोई प्रायश्चित्त नहीं बताया गया है, उन सभी पापोंकी शुद्धिके

लिये एकमात्र विजयशील भगवान् विष्णुका प्रयत्नपूर्वक स्मरण ही सर्वोत्तम साधन देखा गया है, वह समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। * अतः श्रीहरिके नामका कीर्तन और जप करना चाहिये। जो ऐसा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त होता है। जो मनुष्य 'हरि' इस दो अक्षरोंवाले नामका सदा उच्चारण करते हैं, वे उसके उच्चारणमात्रसे मुक्त हो जाते हैं—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। तपस्याके रूपमें किये जानेवाले जो सम्पूर्ण प्रायश्चित्त हैं, उन सबकी अपेक्षा श्रीकृष्णका निरन्तर स्मरण श्रेष्ठ है। जो मनुष्य प्रातः, सायं, रात्रि तथा मध्याह्न आदिके समय 'नारायण' नामका स्मरण करता है, उसके समस्त पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं।

उत्तम व्रतका पालन करनेवाले नारद ! मेरा कथन सत्य है, सत्य है, सत्य है। भगवान्‌के नामोंका उच्चारण करनेमात्रसे मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे मुक्त हो जाता है। 'राम-राम-राम-राम' इस प्रकार बारम्बार जप करनेवाला मनुष्य यदि चाप्डाल हो तो भी वह पवित्रात्मा हो जाता है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। उसने नाम-कीर्तन-मात्रसे कुरुक्षेत्र, काशी, गया और द्वारका आदि सम्पूर्ण तीर्थोंका सेवन कर लिया। जो 'कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण !'

इस प्रकार जप और कीर्तन करता है, वह इस संसारका परित्याग करनेपर भगवान् विष्णुके समीप आनन्द भोगता है। ब्रह्मन् ! जो कलियुगमें प्रसन्नतापूर्वक 'नृसिंह' नामका जप और कीर्तन करता है, वह भगवद्भक्त मनुष्य महान् पापसे छुटकारा पा जाता है। सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञ तथा द्वापरमें पूजन करके मनुष्य जो कुछ पाता है, वही कलियुगमें केवल भगवान् केशवका कीर्तन करनेसे पा लेता है। जो लोग इस बातको जानकर जगदात्मा केशवके भजनमें लीन होते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त कर लेते हैं। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध तथा कलिक—ये दस अवतार इस पृथ्वीपर बताये गये हैं। इनके नामोच्चारण-मात्रसे सदा ब्रह्महत्यारा भी शुद्ध होता है। जो मनुष्य प्रातःकाल जिस किसी तरह भी श्रीविष्णुनामका कीर्तन, जप तथा ध्यान करता है, वह निस्सन्देह मुक्त होता है, निश्चय ही नरसे नारायण बन जाता है।

सूतजी कहते हैं—यह सुनकर नारदजीको बड़ा आश्र्य हुआ। वे अपनें पिता ब्रह्माजीसे बोले—'तात ! तीर्थसेवनके लिये पृथ्वीपर भ्रमण करनेकी क्या आवश्यकता है; जिनके नामका ऐसा माहात्म्य है कि

* दृष्टं परेषां पापानामनुक्तानां विशेषधनम्। विष्णोर्जिष्णोः प्रयत्नेन स्मरणं पापनाशनम्॥ (७२ । १०)

† ये वदन्ति नरा नित्यं हरिरित्यक्षरद्वयम्। तस्योच्चारणमात्रेण विमुक्तास्ते न संशयः॥

प्रायश्चित्तानि सर्वाणि तपःकर्मात्मकानि वै। यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम्॥

प्रातर्निशि तथा सायं मध्याह्नादिषु संस्मरन्। नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयं नरः॥ (७२ । १२—१४)

‡ सत्यं सत्यं पुनः सत्यं भाषितं मम सुन्नते। नामोच्चारणमात्रेण महापापात्ममुच्यते॥

राम रामेति रामेति रामेति च पुनर्जपन्। स चाप्डालोऽपि पूतात्मा जायते नात्र संशयः॥

कुरुक्षेत्रं तथा काशी गया वै द्वारका तथा। सर्वं तीर्थं कृतं तेन नामोच्चारणमात्रतः॥

कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति इति वा यो जपन् पठन्। इहलोकं परित्यज्य मोदते विष्णुसंनिधौ॥

नृसिंहेति मुदा विप्र वर्तते यो जपन् पठन्। महापापात् प्रमुच्येत कलौ भागवतो नरः॥

ध्यायन् कृते यज्ञं यज्ञस्तेतायां द्वापरेऽर्चयन्। यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥

ये तज्जात्वा निमग्राश्च जगदात्मनि केशवे। सर्वपापरिक्षीणा यान्ति विष्णोः परं पदम्॥

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा। रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्पी ततः स्मृतः॥

एते दशावताराश्च पृथिव्यां परिकीर्तिः। एतेषां नाममात्रेण ब्रह्महा शुद्धयते सदा॥

प्रातः पठञ्जपन् ध्यायन् विष्णोर्नाम यथा तथा। मुच्यते नात्र संदेहः स वै नारायणो भवेत्॥ (७२ । २०—२९)

उसे सुननेमात्रसे मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है, उन भगवान्‌का ही स्मरण करना चाहिये। जिस मुखमें 'राम-राम'का जप होता रहता है, वही महान् तीर्थ है, वही प्रधान क्षेत्र है तथा वही समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। सुन्रत ! भगवान्‌के कीर्तन करने-योग्य कौन-कौन-से नाम हैं ? उन सबको विशेष रूपसे बताइये ।

ब्रह्माजीने कहा—बेटा ! ये भगवान् विष्णु सर्वत्रव्यापक सनातन परमात्मा हैं। इनका न आदि है न अन्त । ये लक्ष्मीसे युक्त, सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा तथा समस्त प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले हैं। जिनसे मेरा प्रादुर्भाव हुआ है, वे भगवान् विष्णु सदा मेरी रक्षा करें। वही कालके भी काल और वही मेरे पूर्वज हैं। उनका कभी विनाश नहीं होता। उनके नेत्र कमलके समान शोभा पाते हैं। वे परम बुद्धिमान्, अविकारी एवं पुरुष (अन्तर्यामी) हैं। सदा शेषनागकी शश्यापर शयन करनेवाले भगवान् विष्णु सहस्रों मस्तकवाले हैं। वे महाप्रभु हैं। सम्पूर्ण भूत उन्हींके स्वरूप हैं। भगवान् जनार्दन साक्षात् विश्वरूप हैं। कैटभ नामक असुरका वध करनेके कारण वे कैटभारि कहलाते हैं। वे ही व्यापक होनेके कारण विष्णु, धारण-पोषण करनेके कारण धाता और जगदीश्वर हैं। नारद ! मैं उनका नाम और गोत्र नहीं जानता। तात ! मैं केवल वेदोंका वक्ता हूँ वेदातीत परमात्माका ज्ञाता नहीं, अतः देवर्षे ! तुम वहाँ जाओ, जहाँ भगवान् विश्वनाथ रहते हैं। मुनिश्रेष्ठ ! वे तुमसे सम्पूर्ण तत्त्वका वर्णन करेंगे। कैलासके स्वामी श्रीमहादेवजी ही अन्तर्यामी पुरुष हैं। वे देवताओंके स्वामी और सम्पूर्ण भूतोंके आराध्यदेव हैं। पाँच मुखोंसे सुशोभित भगवान् उमानाथ सब दुःखोंका विनाश करनेवाले हैं। सम्पूर्ण विश्वके ईश्वर श्रीविश्वनाथजी सदा भक्तोंपर दया करनेवाले हैं। नारद ! वहाँ जाओ, वे तुम्हें सब कुछ बता देंगे ।

सूतजी कहते हैं—पिताकी बात सुनकर देवर्षि नारद कैलास पर्वतपर, जहाँ कल्याणप्रद भगवान् विश्वेश्वर नित्य निवास करते हैं, गये। देवताओंद्वारा

पूजित देवाधिदेव जगदगुरु भगवान् शङ्कर कैलासके शिखरपर विराजमान थे। उनके पाँच मुख, दस भुजाएँ, प्रत्येक मुखमें तीन नेत्र तथा हाथोंमें त्रिशूल, कपाल, खट्टवाङ्म, तीक्ष्ण शूल, खड़ और पिनाक नामका धनुष शोभा पा रहे थे। बैलपर सवारी करनेवाले वरदाता भगवान् भीम अपने अङ्गोंमें भस्म स्माये सर्पोंकी शोभासे युक्त चन्द्रमाका मुकुट पहने करोड़ों सूर्योंके समान देदीप्यमान हो रहे थे। नारदजीने देवेश्वर शिवको साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। उन्हें देखकर महादेवजीके नेत्रकमल खिल उठे। उस समय वैष्णवोंमें सर्वश्रेष्ठ शिवने ब्रह्मचारियोंमें श्रेष्ठ नारदजीसे पूछा—‘देवर्षिप्रवर ! बताओ, कहाँसे आ रहे हो ?’

नारदजीने कहा—भगवन् ! एक समय मैं ब्रह्माजीके पास गया था। वहाँ उनके मुखसे मैंने भगवान् विष्णुके पापनाशक माहात्म्यका श्रवण किया। सुरश्रेष्ठ ! ब्रह्माजीने मेरे सामने भगवान्‌की महिमाका भलीभाँति वर्णन किया। भगवान्‌के नामकी जितनी शक्ति है, वह भी मैंने उनके मुखसे सुनी है। तत्पश्चात् पहले विष्णुके नामोंके विषयमें प्रश्न किया। तब उन्होंने कहा—‘नारद ! मैं इस बातको नहीं जानता; इसका ज्ञान महारुद्रको है। वे ही सब कुछ बतायेंगे।’ यह सुनकर मैं आपके पास आया हूँ। इस घोर कलियुगमें मनुष्योंकी आयु थोड़ी होगी। वे सदा अर्धमिमें तत्पर रहेंगे। भगवान्‌के नामोंमें उनकी निष्ठा नहीं होगी। कलियुगके ब्राह्मण पालपाणी, धर्मसे विरक्त, संध्या न करनेवाले, व्रतहीन, दुष्ट और मलिन होंगे; जैसे ब्राह्मण होंगे, वैसे ही क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य जातिके लोग भी होंगे। प्रायः मनुष्य भगवान्‌के भक्त नहीं होंगे। द्विजोंसे बाहर गिने जानेवाले शूद्र कलियुगमें धर्म-अधर्म तथा हिताहितका ज्ञान भी नहीं रखते; ऐसा जानकर मैं आपके निकट आया हूँ। आप कृपा करके विष्णुके सहस्र नामोंका वर्णन कीजिये, जो पुरुषोंके लिये सौभाग्यजनक, परम उत्तम तथा सर्वदा भक्तिभावको बढ़ानेवाले हैं; इसी प्रकार जो ब्राह्मणोंको ब्रह्मज्ञान, क्षत्रियोंको विजय, वैश्योंको धन तथा शूद्रोंको सदा सुख देनेवाले हैं।

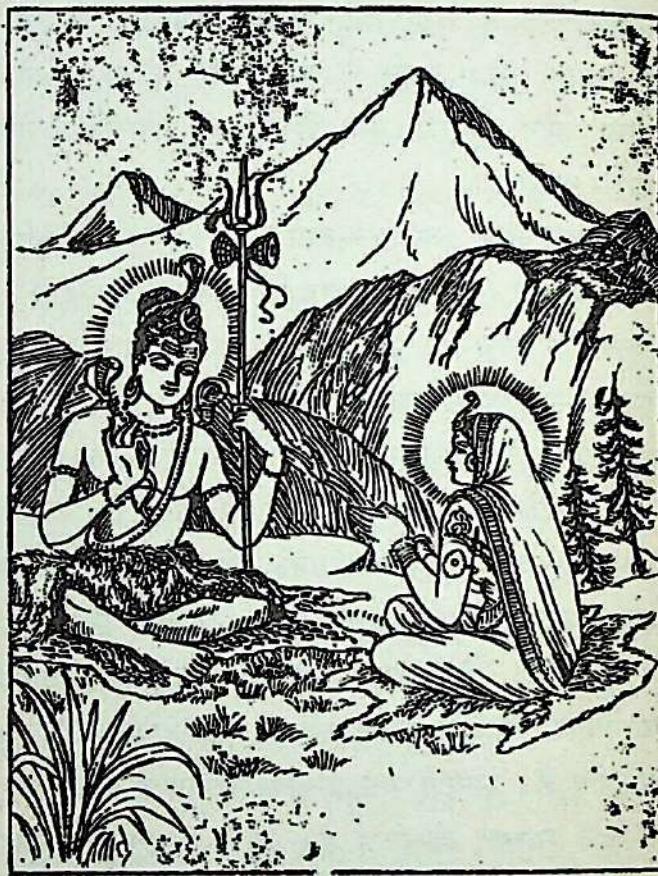
सुब्रत ! जो सहस्रनाम परम गोपनीय है, उसका वर्णन कीजिये । वह परम पवित्र एवं सदा सर्वतीर्थमय है; अतः मैं उसका श्रवण करना चाहता हूँ । प्रभो ! विश्वेश्वर ! कृपया उस सहस्रनामका उपदेश कीजिये ।

नारदजीके वंचन सुनकर भगवान् शङ्करके नेत्र आश्चर्यसे चकित हो उठे । भगवान् विष्णुके नामका बारम्बार स्मरण करके उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया । वे बोले—‘ब्रह्मन् ! भगवान् विष्णुके सहस्रनाम परम गोपनीय हैं । इन्हें सुनकर मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता ।’ यों कहकर भगवान् शङ्करने नारदजीको विष्णुसहस्रनामका उपदेश दिया, जिसे पूर्वकालमें वे भगवती पार्वतीजीको सुना चुके थे । इस प्रकार नारदजीने कैलास पर्वतपर भगवान् महेश्वरसे श्रीविष्णुसहस्रनामका ज्ञान प्राप्त किया । फिर दैवयोगसे एक बार वे कैलाससे उत्तरकर नैमित्तिक नामक तीर्थमें आये । वहाँके ऋषियोंने ऋषिश्रेष्ठ महात्मा नारदको आया देख विशेषरूपसे उनका स्वागत-सत्कार किया । उन्होंने विष्णुभक्त विप्रवर नारदजीके ऊपर फूल बरसाये, पाद्य और अर्घ्य निवेदन किया, उनकी आरती उतारी और फल-मूल निवेदन करके पृथ्वीपर साष्टाङ्ग प्रणाम किया । तत्पश्चात् वे बोले—‘महामुने ! हमलोग इस वंशमें जन्म लेकर आज कृतार्थ हो गये; क्योंकि आज हमें परम पवित्र और पापोंका नाश करनेवाला आपका दर्शन प्राप्त हुआ । देवर्णे ! आपके प्रसादसे हमने पुराणोंका श्रवण किया है । ब्रह्मन् ! अब आप यह बताइये कि किस प्रकारसे समस्त पापोंका क्षय हो सकता है । दान, तपस्या, तीर्थ, यज्ञ, योग, ध्यान, इन्द्रिय-निग्रह और शास्त्र-समुदायके बिना ही कैसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है ?’

नारदजी बोले—मुनिवरो ! एक समय भगवती पार्वतीने कैलासशिखरपर बैठे हुए अपने प्रियतम देवाधिदेव जगदगुरु महादेवजीसे इस प्रकार प्रश्न किया ।

पार्वती बोली—भगवन् ! आप सर्वज्ञ और सर्वपूजित श्रेष्ठ देवता हैं । जन्म और मृत्युसे रहित, स्वयम्भू एवं सर्वशक्तिमान् हैं । स्वामिन् ! आप सदा किसका ध्यान करते हैं ? किस मन्त्रका जप करते हैं ?

देवेश्वर ! इसे जाननेकी मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है । सुब्रत ! यदि मैं आपकी प्रियतमा और कृपापात्र हूँ तो मुझसे यथार्थ बात कहिये ।



महादेवजी बोले—देवि ! पहले सत्ययुगमें विशुद्ध चित्तवाले सब पुरुष सम्पूर्ण ईश्वरोंके भी ईश्वर एकमात्र भगवान् विष्णुका तत्त्व जानकर उन्हींके नामोंका जप किया करते थे और उसीके प्रभावसे इस लोक तथा परलोकमें भी परम ऐश्वर्यको प्राप्त करते थे । प्रिये ! तुलादान, अश्वमेध आदि यज्ञ, काशी, प्रयाग आदि तीर्थोंमें किये हुए स्नान आदि शुभकर्म, गयामें किये हुए पितरोंके श्राद्ध-तर्पण आदि, वेदोंके स्वाध्याय आदि, जप, उग्र तप, नियम, यम, जीवोंपर दया, गुरुशुश्रूषा, सत्यभाषण, वर्ण और आश्रमके धर्मोंका पालन, ज्ञान तथा ध्यान आदि साधनोंका कोटि जन्मोंतक भलीभाँति अनुष्ठान करनेपर भी मनुष्य परम कल्याणमय सर्वेश्वरेश्वर भगवान् विष्णुको नहीं पाते । परन्तु जो दूसरेका भरोसा न करके सर्वभावसे पुराण पुरुषोत्तम श्रीनारायणकी शरण ग्रहण करते हैं, वे उन्हें प्राप्त कर लेते हैं । जो लोग एकमात्र श्रीभगवान् विष्णुके नामोंका कीर्तन करते हैं, वे

सुखपूर्वक जिस गतिको प्राप्त करते हैं, उसे समस्त धार्मिक भी नहीं पा सकते। अतः सदा भगवान् विष्णुका स्मरण करना चाहिये, इन्हें कभी भी भूलना नहीं चाहिये। क्योंकि सभी विधि और निषेध इन्हींके किङ्कर हैं—इन्हींकी आज्ञाका पालन करते हैं। * प्रिये ! अब मैं तुमसे भगवान् विष्णुके मुख्य-मुख्य हजार नामोंका वर्णन करूँगा, जो तीनों लोकोंको मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं।

विनियोग

अस्य श्रीविष्णुर्नामसहस्रस्तोत्रस्य श्रीमहादेव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, परमात्मा देवता, हीं बीजम्, श्रीं शक्तिः, छीं कीलकम्, चतुर्वर्गधर्मार्थकाममोक्षार्थं जपे विनियोगः ॥ ११४ ॥

इस श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रके महादेवजी ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, परमात्मा देवता, हीं बीज, श्रीं शक्ति और छीं कीलक हैं। चारों पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षकी प्राप्तिके निमित्त जप करनेके लिये इस स्तोत्रका विनियोग (प्रयोग) किया जाता है ॥ ११४ ॥

ॐ वासुदेवाय विद्धहे, महाहंसाय धीमहि, तत्रो विष्णुः प्रचोदयात् ॥ ११५ ॥

हम श्रीवासुदेवका तत्त्व समझनेके लिये ज्ञान प्राप्त करते हैं, महाहंसस्वरूप नारायणके लिये ध्यान करते हैं, श्रीविष्णु हमें प्रेरित करें—हमारी मन, बुद्धिको प्रेरणा देकर इस कार्यमें लगायें ॥ ११५ ॥

अङ्गन्यासकरन्यासविधिपूर्वं यदा पठेत् ।

तत्फलं कोटिगुणितं भवत्येव न संशयः ॥ ११६ ॥

यदि पहले अङ्गन्यास और करन्यासकी विधि पूर्ण करके सहस्रनामस्तोत्रका पाठ किया जाय तो निस्सन्देह उसका फल कोटिगुना होता है ॥ ११६ ॥

अङ्गन्यास

श्रीवासुदेवः परं ब्रह्मेति हृदयम् । मूलप्रकृतिरिति शिरः । महावराह इति शिखा । सूर्यवंशाध्वज इति कवचम् । ब्रह्मादिकाम्यलालित्यजगदाश्चर्यशैशव इति नेत्रम् । पार्थर्थखण्डताशेष इत्यस्त्रम् । नमो नारायणायेति न्यासं सर्वत्र कारयेत् ॥ ११७ ॥

‘श्रीवासुदेवः परं ब्रह्म’ (श्रीवासुदेव परब्रह्म है) — यह कहकर दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे हृदयका स्पर्श करे। ‘मूलप्रकृतिः’ (मूल प्रकृति) का उच्चारण करके सिरका स्पर्श करे। ‘महावराहः’ (महान् वराहस्त्रधारी भगवान् विष्णु) — यह कहकर शिखाका स्पर्श करे। ‘सूर्यवंशाध्वजः’ (सूर्यवंशके ध्वजास्त्रप भगवान् श्रीराम) यों कहकर दोनों हाथोंसे दोनों भुजाओंके मूलभागका स्पर्श करे। ‘ब्रह्मादिकाम्यलालित्यजगदाश्चर्यशैशवः’ (अवतार धारण करनेपर जिनका शिशुरूप अपने अनुपम सौन्दर्यसे संसारको आश्र्यमें डाल देता है तथा ब्रह्मा आदि देवता भी उस रूपमें जिनकी झाँकी करनेकी अभिलाषा रखते हैं, वे भगवान् विष्णु धन्य हैं) यह कहकर नेत्रोंका स्पर्श करे। ‘पार्थर्थखण्डताशेषः’ (अर्जुनके लिये महाभारतके समस्त वीरोंका संहार करनेवाले श्रीकृष्ण) यों कहकर ताली बजाये। अन्तमें ‘नमो नारायणाय’ (श्रीनारायणको नमस्कार है) — ऐसा बोलकर सर्वाङ्गका स्पर्श करे ॥ ११७ ॥ †

ॐ नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने, विशुद्धसत्त्वाय महाहंसाय धीमहि, तत्रो देवः प्रचोदयात् ॥ ११८ ॥

ॐकाररूप सर्वान्तर्यामी महात्मा नारायणको

* सर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातुचित् । सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतस्यैव हि किङ्कराः ॥

(७२ । १००)

† यहाँ अङ्गन्यासकी विधिका उल्लेख किया गया है; इन्हीं मन्त्रोंसे करन्यास भी किया जा सकता है, उसकी विधि इस प्रकार है। ‘श्रीवासुदेवः परं ब्रह्म’ यह कहकर दोनों हाथोंके अँगुठोंको परस्पर मिलाये; इसी तरह ‘मूलप्रकृतिः’ कहकर दोनों तर्जनियोंको, ‘महावराहः’का उच्चारण करके दोनों बीचकी अँगुलियोंको, ‘सूर्यवंशाध्वजः’ कहकर दोनों अनामिकाओंको, ‘ब्रह्मादिकाम्यलालित्यजगदाश्चर्यशैशवः’का उच्चारण करके दोनों कनिष्ठिका अँगुलियोंको, ‘पार्थर्थखण्डताशेषः’ कहकर दोनों हथेलियोंको तथा ‘नमो नारायणाय’का उच्चारण करके हथेलियोंके पृष्ठभागोंको परस्पर स्पर्श कराये।

नमस्कार है, विशुद्ध सत्त्वमय महाहंसस्वरूप श्रीविष्णुका हम ध्यान करते हैं; अतः श्रीविष्णु देवता हमें सत्कार्यमें प्रेरित करें ॥ ११८ ॥

झीं कृष्णाय विद्यहे, हर्षी रामाय धीमहि, तन्नो देवः प्रचोदयात् ॥ ११९ ॥

'झीं' रूप श्रीकृष्णातत्त्वको समझनेके लिये हम ज्ञान प्राप्त करते हैं; 'हर्षी' रूप श्रीरामका हम ध्यान करते हैं; वे देव श्रीरघुनाथजी हमें प्रेरित करें ॥ १२० ॥

शं नृसिंहाय विद्यहे, श्रीकण्ठाय धीमहि, तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥ १२० ॥

शम्—कल्याणमय भगवान् नृसिंहका तत्त्व जाननेके लिये हम ज्ञान प्राप्त करते हैं, श्रीकण्ठका ध्यान करते हैं; वे श्रीनृसिंहरूप भगवान् विष्णु हमें प्रेरित करें ॥ १२० ॥

अँ वासुदेवाय विद्यहे, देवकीसुताय धीमहि, तन्नः कृष्णः प्रचोदयात् ॥ १२१ ॥

अँकाररूप श्रीवासुदेवका तत्त्व जाननेके लिये हम ज्ञान प्राप्त करते हैं, श्रीदेवकीनन्दन श्रीकृष्णका हम ध्यान करते हैं, वे श्रीकृष्ण हमें प्रेरित करें ॥ १२१ ॥

अँ हां हर्षी हूं हैं हौं हः झीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय नमः स्वाहा ॥ १२२ ॥

अँ हां हर्षी हूं हैं हौं हः झीं—सच्चिदानन्दस्वरूप, गोपीजनोंके प्रियतम भगवान् गोविन्दको नमस्कार है; हम उनकी तृप्तिके लिये उत्तम रीतिसे हवन करते हैं—अपना सब कुछ अर्पण करते हैं ॥ १२२ ॥

इति मन्त्र समुद्धार्य यजेद् वा विष्णुमव्ययम् ।

श्रीनिवासं जगन्नाथं ततः स्तोत्रं पठेत् सुधीः ।

अँ वासुदेवः परं ब्रह्म परमात्मा परात्परः ॥ १२३ ॥

—उपर्युक्त मन्त्रोंका उच्चारण करके लक्ष्मीके निवासस्थान और संसारके स्वामी अविनाशी भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करें; इसके बाद विद्वान् पुरुष सहस्रनामस्तोत्रका पाठ करें। ३० सच्चिदानन्दस्वरूप, १ वासुदेवः—सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनेमें बसानेवाले तथा समस्त भूतोंमें सर्वात्मारूपसे बसनेवाले, चतुर्व्यूहमें वासुदेवस्वरूप, २ परं ब्रह्म—सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म—निर्गुण

परमात्मा, ३ परमात्मा—परम श्रेष्ठ, नित्य-शुद्ध-बुद्ध—मुक्तस्वभाव, ४ परात्परः—पर अर्थात् प्रकृतिसे भी परे विराजमान परमात्मा ॥ १२३ ॥

परं धाम परं ज्योतिः परं तत्त्वं परं पदम् ।

परः शिवः परो ध्येयः परं ज्ञानं परा गतिः ॥ १२४ ॥

५ परं धाम—सर्वोत्तम वैकुण्ठधाम, निर्गुण परमात्मा, ६ परं ज्योतिः—सूर्य आदि ज्योतियोंको भी प्रकाशित करनेवाले सर्वोत्कृष्ट ज्योतिःस्वरूप, ७ परं तत्त्वम्—परम तत्त्व, उपनिषदोंसे जाननेयोग्य सर्वोत्तम रहस्य, ८ परं पदम्—प्राप्त करनेयोग्य सर्वोत्कृष्ट पद, मोक्षस्वरूप, ९ परः शिवः—परम कल्याणरूप, १० परो ध्येयः—ध्यान करनेयोग्य सर्वोत्तम देव, चिन्तनके सर्वश्रेष्ठ आश्रय, ११ परं ज्ञानम्—ब्रान्तिशून्य उत्कृष्ट बोधस्वरूप परमात्मा, १२ परा गतिः—सर्वोत्तम गति, मोक्षस्वरूप ॥ १२४ ॥

परमार्थः परश्रेष्ठः परानन्दः परोदयः ।

परोऽव्यक्तात्परं व्योम परमद्विः परेश्वरः ॥ १२५ ॥

१३ परमार्थः—मोक्षरूप परम पुरुषार्थ, परम सत्य १४ परश्रेष्ठः—श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ, १५ परानन्दः—परम आनन्दमय, असीम आनन्दकी निधि, १६ परोदयः—सर्वाधिक अभ्युदयशाली, १७ अव्यक्तात्परः—अव्यक्तपदवाच्य मूलप्रकृतिसे परे, १८ परं व्योम—नित्य एवं अनन्त आकाशस्वरूप निर्गुण परमात्मा, १९ परमद्विः—सर्वोत्तम ऐश्वर्यसे सम्पन्न, २० परेश्वरः—पर अर्थात् ब्रह्मादि देवताओंके भी ईश्वर ॥ १२५ ॥

निरामयो निर्विकारो निर्विकल्पो निराश्रयः ।

निरञ्जनो निरालम्बो निर्लेपो निरवग्रहः ॥ १२६ ॥

२१ निरामयः—रोग-शोकसे रहित, २२ निर्विकारः—उत्पत्तिः, सत्ता, वृद्धि, विपरिणाम, अपक्षय और विनाश—इन छः विकारोंसे शून्य, २३ निर्विकल्पः—सन्देहरहित, संकल्पशून्य, २४ निराश्रयः—स्वयं ही सबके आश्रय होनेके कारण अन्य किसी आश्रयसे रहित, २५ निरञ्जनः—वासना और आसक्तिरूपी मलसे शून्य, तमोगुणरहित,

२६ निरालम्बः—आधारशून्य, स्वयं ही सबके आधार, २७ निलेपः—जलसे कमलकी भाँति राग-द्रेषादि दोषोंसे अलिप्त, २८ निरवग्रहः—विघ्न-बाधाओंसे रहित ॥ १२६ ॥

निर्गुणो निष्कलोऽनन्तोऽभयोऽचिन्त्योऽचलोऽञ्जितः ।
अतीन्द्रियोऽमितोऽपारो नित्योऽनीहोऽव्ययोऽक्षयः ॥ १२७ ॥

२९ निर्गुणः—सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंसे रहित परमात्मा, ३० निष्कलः—अवयवशून्य ब्रह्म, ३१ अनन्तः—असीम एवं अविनाशी परमेश्वर, ३२ अभयः—काल आदिके भयसे रहित, ३३ अचिन्त्यः—मनकी गतिसे परे होनेके कारण चिन्तनमें न आनेवाले, ३४ अचलः—अपनी मर्यादासे विचलित न होनेवाले, ३५ अञ्जितः—सबके द्वारा पूजित, ३६ अतीन्द्रियः—इन्द्रियोंके अगोचर, ३७ अमितः—माप या सीमासे रहित, महान् अपरिच्छिन्न, ३८ अपारः—पाररहित, अनन्त, ३९ नित्यः—सदा रहनेवाले, सनातन, ४० अनीहः—चेष्टारहित ब्रह्म, ४१ अव्ययः—विनाशरहित, ४२ अक्षयः—कभी क्षीण न होनेवाले ॥ १२७ ॥

सर्वज्ञः सर्वगः सर्वः सर्वदः सर्वभावनः ।

सर्वशास्ता सर्वसाक्षी पूज्यः सर्वस्य सर्वदृक् ॥ १२८ ॥

४३ सर्वज्ञः—परोक्ष और अपरोक्ष सबके ज्ञाता, ४४ सर्वगः—कारणरूपसे सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले, ४५ सर्वः—सर्वस्वरूप, ४६ सर्वदः—भक्तोंको सर्वस्व देनेवाले, ४७ सर्वभावनः—सबको उत्पन्न करनेवाले, ४८ सर्वशास्ता—सबके शासक, ४९ सर्वसाक्षी—भूत, भविष्य और वर्तमान—सबपर दृष्टि रखनेवाले, ५० सर्वस्य पूज्यः—सबके पूजनीय, ५१ सर्वदृक्—सबके द्रष्टा ॥ १२८ ॥

सर्वशक्तिः सर्वसारः सर्वात्मा सर्वतोमुखः ।

सर्ववासः सर्वरूपः सर्वादिः सर्वदुःखहा ॥ १२९ ॥

५२ सर्वशक्तिः—सब प्रकारकी, शक्तियोंसे

सम्पन्न, ५३ सर्वसारः—सबके बल, ५४ सर्वात्मा—सबके आत्मा, ५५ सर्वतोमुखः—सब और मुखवाले, विराटस्वरूप, ५६ सर्ववासः—सम्पूर्ण विश्वके वासस्थान, ५७ सर्वरूपः—सब रूपोंमें स्वयं ही उपलब्ध होनेवाले, विश्वरूप, ५८ सर्वादिः—सबके आदि कारण, ५९ सर्वदुःखहा—सबके दुःखोंका नाश करनेवाले ॥ १२९ ॥

सर्वार्थः सर्वतोभद्रः सर्वकारणकारणम् ।

सर्वातिशयितः सर्वाध्यक्षः सर्वेश्वरेश्वरः ॥ १३० ॥

६० सर्वार्थः—समस्त पुरुषार्थरूप, ६१ सर्वतोभद्रः—सब औरसे कल्याणरूप, ६२ सर्वकारणकारणम्—विश्वके कारणभूत प्रकृति आदिके भी कारण, ६३ सर्वातिशयितः—सबसे सब बातोंमें बढ़े हुए, ब्रह्मा और शिव आदिसे भी अधिक महिमावाले, ६४ सर्वाध्यक्षः—सबके साक्षी, सबके नियन्ता, ६५ सर्वेश्वरेश्वरः—सम्पूर्ण ईश्वरोंके भी ईश्वर, ब्रह्मादि देवताओंके भी नियामक ॥ १३० ॥
षड्विंशको महाविष्णुर्महागुह्यो महाविभुः ।

नित्योदितो नित्ययुक्तो नित्यानन्दः सनातनः ॥ १३१ ॥

६६ षड्विंशकः—पच्चीस^१ तत्त्वोंसे विलक्षण छब्बीसवाँ तत्त्व, पुरुषोत्तम, ६७ महाविष्णुः—सब देवताओंमें महान् सर्वव्यापी भगवान् विष्णु, ६८ महागुह्यः—परम गोपनीय तत्त्व, ६९ महाविभुः—प्राकृत आकाश आदि व्यापक तत्त्वोंसे भी महान् एवं व्यापक, ७० नित्योदितः—सूर्य आदिकी भाँति अस्त न होकर नित्य-निरन्तर उदित रहनेवाले, ७१ नित्ययुक्तः—चराचर प्राणियोंसे नित्य संयुक्त अथवा सदा योगमें स्थित रहनेवाले, ७२ नित्यानन्दः—नित्य आनन्दस्वरूप, ७३ सनातनः—सदा एकरस रहनेवाले ॥ १३१ ॥

मायापतियोगपतिः कैवल्यपतिरात्मभूः ।

जन्ममृत्युजरातीतः कालातीतो भवातिगः ॥ १३२ ॥

१. पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच इन्द्रियोंके विषय, मन, पाँच भूत, अहंकार, महत्तत्त्व, प्रकृति और पुरुष (जीवात्मा) —ये पच्चीस तत्त्व हैं। इनसे भिन्न सर्वज्ञ परमात्मा छब्बीसवाँ तत्त्व है। इसीलिये इसे 'षड्विंशक' कहा गया है।

७४ मायापतिः—मायाके स्वामी, ७५ योगपतिः—योगपालक, योगेश्वर, ७६ कैवल्यपतिः—मोक्ष प्रदान करनेका अधिकार रखनेवाले, मुक्तिके स्वामी, ७७ आत्मभूः—स्वतः प्रकट होनेवाले, स्वयम्भू, ७८ जन्ममृत्युजरातीतः—जन्म, मरण और वृद्धावस्था आदि शरीरके धर्मोंसे रहित, ७९ कालातीतः—कालके वशमें न आनेवाले, ८० भवातिगः—भवबन्धनसे अतीत ॥ १३२ ॥

पूर्णः सत्यः शुद्धबुद्धस्वरूपो नित्यचिन्मयः ।
योगप्रियो योगगम्यो भवबन्धैकमोचकः ॥ १३३ ॥

८१ पूर्णः—समस्त ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य और गुणोंसे परिपूर्ण, ८२ सत्यः—भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंमें सदा समानरूपसे रहनेवाले, सत्यस्वरूप, ८३ शुद्धबुद्धस्वरूपः—स्वाभाविक शुद्ध और ज्ञानसे सम्पन्न, प्रकृतिके संसर्गसे रहित बोधस्वरूप परमात्मा, ८४ नित्यचिन्मयः—नित्य चैतन्यस्वरूप, ८५ योगप्रियः—चित्तवृत्तियोंके निरोधरूप योगके प्रेमी, ८६ योगगम्यः—ध्यान अथवा समाधिके द्वारा अनुभवमें आनेयोग्य, ८७ भवबन्धैकमोचकः—संसार-बन्धनसे एकमात्र छुड़ानेवाले ॥ १३३ ॥

पुराणपुरुषः प्रत्यक्षचैतन्यः पुरुषोत्तमः ।
वेदान्तवेद्यो दुर्जेयस्तापत्रयविवर्जितः ॥ १३४ ॥

८८ पुराणपुरुषः—ब्रह्मा आदि पुरुषोंकी अपेक्षा भी प्राचीन, आदि पुरुष, ८९ प्रत्यक्षैतन्यः—अन्तर्यामी चेतन, ९० पुरुषोत्तमः—क्षर और अक्षर पुरुषोंसे श्रेष्ठ, ९१ वेदान्तवेद्यः—उपनिषदोंके द्वारा जाननेयोग्य, ९२ दुर्जेयः—कठिनतासे अनुभवमें आनेवाले, ९३ तापत्रयविवर्जितः—आध्यात्मिक, अधिदैविक और आधिभौतिक तीनों तापोंसे रहित ॥ १३४ ॥

ब्रह्मविद्याश्रयोऽनघः स्वप्रकाशः स्वयम्भूः ।

सर्वोपाय उदासीनः प्रणवः सर्वतः समः ॥ १३५ ॥

९४ ब्रह्मविद्याश्रयः—ब्रह्मविद्याके आश्रय, उसके द्वारा जाननेमें आनेवाले ब्रह्म, ९५ अनघः—पापरहित, शुद्ध, ९६ स्वप्रकाशः—अपने ही प्रकाशसे

प्रकाशित होनेवाले, ९७ स्वयम्भूः—दूसरेकी सामर्थ्यकी अपेक्षासे रहित, स्वयं समर्थ, ९८ सर्वोपायः—सर्वसाधनरूप, ९९ उदासीनः—रागद्वेषसे ऊपर उठे हुए, पक्षपातरहित, १०० प्रणवः—ओंकाररूप शब्दब्रह्म, १०१ सर्वतःसमः—सब और समान दृष्टि रखनेवाले ॥ १३५ ॥
सर्वानवद्यो दुष्टाप्यस्तुरीयस्तमसः परः ।
कूटस्थः सर्वसंशिलष्टो वाङ्मनोगोचरातिगः ॥ १३६ ॥

१०२ सर्वानवद्यः—सबकी प्रशंसाके पात्र, सबके द्वारा स्तुत्य, १०३ दुष्टाप्यः—अनन्य चित्तसे भजन न करनेवालोंके लिये दुर्लभ, १०४ तुरीयः—जाग्रत्, स्वप्र और सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओंसे अतीत चतुर्थावस्थास्वरूप, १०५ तमसः परः—तमोगुण एवं अज्ञानसे परे, १०६ कूटस्थः—निहाईकी भाँति अविचलरूपसे स्थिर रहनेवाला निर्विकार आत्मा, १०७ सर्वसंशिलष्टः—सर्वत्र व्यापक होनेके कारण सबसे संयुक्त, १०८ वाङ्मनोगोचरातिगः—वाणी और मनकी पहुँचसे बाहर ॥ १३६ ॥

संकर्षणः सर्वहरः कालः सर्वभयंकरः ।

अनुल्लङ्घ्यश्चित्रगतिर्महारुद्रो दुरासंदः ॥ १३७ ॥

१०९ संकर्षणः—कालरूपसे सबको अपनी ओर खींचनेवाले, चतुर्व्यूहमें सङ्कर्षणरूप, शोषावतार बलराम, ११० सर्वहरः—प्रलयकालमें सबका संहार करनेवाले, १११ कालः—युग, वर्ष, मास, पक्ष आदि रूपसे सम्पूर्ण विश्वको अपना ग्रास बनानेवाले, काल-पदवाच्य यमराज, ११२ सर्वभयंकरः—मृत्युरूपसे सबको भय पहुँचानेवाले, ११३ अनुल्लङ्घ्यः—काल आदि भी जिनकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकते, ऐसे सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर, ११४ चित्रगतिः—विचित्र लीलाएँ करनेवाले लीलापुरुषोत्तम अथवा विचित्र गतिसे चलनेवाले, ११५ महारुद्रः—महान् दुःखोंको दूर भगानेवाले, ग्यारह रुद्रोंकी अपेक्षा भी महान् महेश्वररूप, ११६ दुरासदः—बड़े-बड़े दानवोंके लिये भी जिनका सामना करना कठिन है, ऐसे दुर्धर्ष वीर ॥ १३७ ॥

मूलप्रकृतिरानन्दः प्रद्युम्ने विश्वमोहनः ।
महामायो विश्वबीजं परशक्तिः सुखैकभूः ॥ १३८ ॥
११७ मूलप्रकृतिः—सम्पूर्ण विश्वके महाकारण-स्वरूप, ११८ आनन्दः—सब ओरसे सुख प्रदान करनेवाले, आनन्दस्वरूप, ११९ प्रद्युम्नः—महान् बलवाले कामदेव, चतुर्व्यूहमें प्रद्युम्नस्वरूप, १२० विश्वमोहनः—अपने अलौकिक रूपलावण्यसे सम्पूर्ण विश्वको मोहित करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण, १२१ महामायः—मायावियोपर भी माया डालनेवाले महान् मायावी, १२२ विश्वबीजम्—जगत्की उत्पत्तिके आदि कारण, १२३ परशक्तिः—महान् सामर्थ्यशाली, १२४ सुखैकभूः—सुखके एकमात्र उत्पत्तिस्थान ॥ १३८ ॥

सर्वकाम्योऽनन्तलीलः सर्वभूतवशंकरः ।
अनिरुद्धः सर्वजीवो हृषीकेशो मनःपतिः ॥ १३९ ॥
१२५ सर्वकाम्यः—सबकी कामनाके विषय, १२६ अनन्तलीलः—जिनकी लीलाओंका अन्त नहीं है—ऐसे भगवान्, १२७ सर्वभूतवशंकरः—सम्पूर्ण प्राणियोंको अपने वशमें करनेवाले, १२८ अनिरुद्धः—संग्राममें जिनकी गतिको कोई रोक नहीं सकता—ऐसे पराक्रमी, शूरवीर, चतुर्व्यूहमें अनिरुद्धस्वरूप, १२९ सर्वजीवः—सबको जीवन प्रदान करनेवाले, सबके आत्मा, १३० हृषीकेशः—इन्द्रियोंके स्वामी, १३१ मनःपतिः—मनके स्वामी, हृदयेश्वर ॥ १३९ ॥

निरूपाधिप्रियो हंसोऽक्षरः सर्वनियोजकः ।

ब्रह्मप्राणेश्वरः सर्वभूतभृद् देहनायकः ॥ १४० ॥

१३२ निरूपाधिप्रियः—जिनकी बुद्धिसे उपाधिकृत भेदभ्रम दूर हो गये हैं, उन ज्ञानी परमहंसोंके भी प्रियतम, १३३ हंसः—हंसरूप धारण करके सनकादिकोंको उपदेश करनेवाले, १३४ अक्षरः—कभी नष्ट न होनेवाले, आत्मा, १३५ सर्वनियोजकः—सबको विभिन्न कर्मोंमें लगानेवाले, सबके प्रेरक, सबके स्वामी, १३६ ब्रह्मप्राणेश्वरः—ब्रह्माजीके प्राणोंके स्वामी, १३७ सर्वभूतभृत्—सम्पूर्ण भूतोंका भरण-पोषण करनेवाले, १३८ देहनायकः—शरीरका

सञ्चालन करनेवाले ॥ १४० ॥
क्षेत्रज्ञः प्रकृतिस्वामी पुरुषो विश्वसूत्रधृक् ।
अन्तर्यामी त्रिधामान्तःसाक्षी निर्गुण ईश्वरः ॥ १४१ ॥
१३९ क्षेत्रज्ञः—सम्पूर्ण क्षेत्रों (शरीरों) में स्थित होकर उनका ज्ञान रखनेवाले, १४० प्रकृतिस्वामी—जगत्की कारणभूता प्रकृतिके स्वामी, १४१ पुरुषः—समस्त शरीरोंमें शयन करनेवाले अन्तर्यामी, १४२ विश्वसूत्रधृक्—संसाररूपी नाटकके सूत्रधार, १४३ अन्तर्यामी—अन्तःकरणमें विराजमान परमेश्वर, १४४ त्रिधामा—भूः-भुवः-स्वःरूप तीन धामवाले, त्रिलोकीमें व्याप्त, १४५ अन्तःसाक्षी—अन्तःकरणके द्रष्टा, १४६ निर्गुणः—गुणातीत, १४७ ईश्वरः—सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न ॥ १४१ ॥

योगिगम्यः पद्मनाभः शेषशायी श्रियः पतिः ।
श्रीशिवोपास्यपादाब्जो नित्यश्रीः श्रीनिकेतनः ॥ १४२ ॥

१४८ योगिगम्यः—योगियोंके अनुभवमें आनेवाले, १४९ पद्मनाभः—अपनी नाभिसे कमल प्रकट करनेवाले, १५० शेषशायी—शेषनागकी शश्यापर शयन करनेवाले, १५१ श्रियःपतिः—लक्ष्मीके स्वामी, १५२ श्रीशिवोपास्यपादाब्जः—पार्वतीसहित भगवान् शिव जिनके चरणकमलोंकी उपासना करते हैं, वे भगवान् विष्णु, १५३ नित्यश्रीः—कभी विलग न होनेवाली लक्ष्मीकी शोभासे युक्त, १५४ श्रीनिकेतनः—भगवती लक्ष्मीके हृदय-मन्दिरमें निवास करनेवाले ॥ १४२ ॥

नित्यवक्षःस्थलस्थश्रीः श्रीनिधिः श्रीघरो हरिः ।
वश्यश्रीर्निंश्वलश्रीदो विष्णुः क्षीराब्धिमन्दिरः ॥ १४३ ॥

१५५ नित्यवक्षःस्थलस्थश्रीः—जिनके वक्षःस्थलमें लक्ष्मी सदा निवास करती हैं—ऐसे भगवान् विष्णु, १५६ श्रीनिधिः—शोभाके भण्डार, सब प्रकारकी सम्पत्तियोंके आधार, १५७ श्रीधरः—जगज्जननी श्रीको हृदयमें धारण करनेवाले, १५८ हरिः—पापहारी, भक्तोंका मन हर लेनेवाले—१५९ वश्यश्रीः—लक्ष्मीको सदा अपने वशमें रखनेवाले,

१६० निश्चलश्रीदः—स्थिर सम्पत्ति प्रदान करनेवाले,
१६१ विष्णुः—सर्वत्र व्यापक, १६२ क्षीराब्धि-
मन्दिरः—क्षीरसागरको अपना निवासस्थान बनाने-
वाले ॥ १४३ ॥

कौस्तुभोद्भासितोरस्को माधवो जगदार्तिहा ।
श्रीवत्सवक्षा निःसीमकल्याणगुणभाजनम् ॥ १४४ ॥

१६३ कौस्तुभोद्भासितोरस्कः—कौस्तुभ-
मणिकी प्रभासे उद्भासित हृदयवाले, १६४ माधवः—
जगन्माता लक्ष्मीके स्वामी अथवा मधुवंशमें प्रादुर्भूत
भगवान् श्रीकृष्ण, १६५ जगदार्तिहा—समस्त
संसारकी पीडा दूर करनेवाले, १६६ श्रीवत्सवक्षः—
वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न धारण करनेवाले, १६७
निःसीमकल्याणगुणभाजनम्—सीमारहित कल्याण-
मय गुणोंके आधार ॥ १४४ ॥

पीताम्बरो जगन्माथो जगत्वाता जगत्पिता ।
जगद्वन्धुर्जगत्स्वष्टा जगद्वाता जगन्निधिः ॥ १४५ ॥

१६८ पीताम्बरः—पीत वस्त्रधारी, १६९
जगन्माथः—जगत्के स्वामी, १७० जगत्वाता—
सम्पूर्ण विश्वके रक्षक, १७१ जगत्पिता—समस्त
संसारके जन्मदाता, १७२ जगद्बन्धुः—बन्धुकी भाँति
जगत्के जीवोंकी सहायता करनेवाले, १७३
जगत्स्वष्टा—जगत्की सृष्टि करनेवाले ब्रह्मरूप, १७४
जगद्वाता—अखिल विश्वका धारण-पोषण करनेवाले
विष्णुरूप, १७५ जगन्निधिः—प्रलयके समय सम्पूर्ण
जगत्को बीजरूपमें धारण करनेवाले ॥ १४५ ॥

जगदेकस्फुरद्वीयो नाहंवादी जगन्मयः ।

सर्वाश्र्वयमयः सर्वसिद्धार्थः सर्वरञ्जितः ॥ १४६ ॥

१७६ जगदेकस्फुरद्वीर्यः—संसारमें एकमात्र
विख्यात पराक्रमी, १७७ नाहंवादी—अहङ्कारहित,
१७८ जगन्मयः—विश्वरूप, १७९ सर्वाश्र्वयमयः—
जिनका सब कुछ आश्र्वयमय है—ऐसे अथवा सम्पूर्ण
आश्र्योंसे युक्त, १८० सर्वसिद्धार्थः—पूर्णकाम होनेके
कारण जिनके सभी प्रयोजन सदा सिद्ध हैं—ऐसे परमेश्वर,
१८१ सर्वरञ्जितः—देवता, दानव और मानव आदि
सभी प्राणी जिन्हें रिजानेकी चेष्टामें लगे रहते हैं—ऐसे

भगवान् ॥ १४६ ॥

सर्वामोघोद्यमो ब्रह्मरुद्राद्युत्कृष्टचेतनः ।

शास्त्रोः पितामहो ब्रह्मपिता शक्राद्यधीश्वरः ॥ १४७ ॥

१८२ सर्वामोघोद्यमः—जिनके सम्पूर्ण उद्योग
सफल होते हैं, कभी व्यर्थ नहीं जाते—ऐसे भगवान्
विष्णु, १८३ ब्रह्मरुद्राद्युत्कृष्टचेतनः—ब्रह्मा और रुद्र
आदिसे उत्कृष्ट चेतनावाले, १८४ शास्त्रोः पितामहः—
शङ्करजीके पिता भगवान् ब्रह्माको भी जन्म देनेवाले
श्रीविष्णु, १८५ ब्रह्मपिता—ब्रह्माजीको उत्पन्न
करनेवाले, १८६ शक्राद्यधीश्वरः—इन्द्र आदि
देवताओंके स्वामी ॥ १४७ ॥

सर्वदेवप्रियः सर्वदेवमूर्तिरनुत्तमः ।

सर्वदेवैकशरणं सर्वदेवैकदेवता ॥ १४८ ॥

१८७ सर्वदेवप्रियः—सम्पूर्ण देवताओंके प्रिय,

१८८ सर्वदेवमूर्तिः—समस्त देवस्वरूप, १८९
अनुत्तमः—जिनसे उत्तम दूसरा कोई नहीं है, सर्वश्रेष्ठ,

१९० सर्वदेवैकशरणम्—समस्त देवताओंके
एकमात्र आश्रय, १९१ सर्वदेवैकदेवता—सम्पूर्ण
देवताओंके एकमात्र आराध्य देव ॥ १४८ ॥

यज्ञभुग्यज्ञफलदो यज्ञेशो यज्ञभावनः ।

यज्ञत्राता यज्ञपुमान्वनमाली द्विजप्रियः ॥ १४९ ॥

१९२ यज्ञभुक्—समस्त यज्ञोंके भोक्ता, १९३

यज्ञफलदः—सम्पूर्ण यज्ञोंका फल देनेवाले, १९४

यज्ञेशः—यज्ञोंके स्वामी, १९५ यज्ञभावनः—अपनी
वेदमयी वाणीके द्वारा यज्ञोंको प्रकट करनेवाले, १९६

यज्ञत्राता—यज्ञविरोधी असुरोंका वध करके यज्ञोंकी
रक्षा करनेवाले, १९७ यज्ञपुमान्—यज्ञपुरुष,
यज्ञाधिष्ठाता देवता, १९८ वनमाली—परम मनोहर

वनमाला धारण करनेवाले, १९९ द्विजप्रियः—
ब्राह्मणोंके प्रेमी और प्रियतम ॥ १४९ ॥

द्विजैकमानदो विप्रकुलदेवोऽसुरान्तकः ।

सर्वदुष्टान्तकृत्सर्वसज्जनानन्यपालकः ॥ १५० ॥

२०० द्विजैकमानदः—ब्राह्मणोंको एकमात्र
सम्मान देनेवाले, २०१ विप्रकुलदेवः—ब्राह्मण-
वंशको अपना आराध्यदेव माननेवाले, २०२

असुरान्तकः—संसारमें अशान्ति फैलानेवाले असुरोंके प्राणहन्ता, २०३ सर्वदुष्टान्तकृत्—समस्त दुष्टोंका अन्त करनेवाले, २०४ सर्वसज्जनानन्यपालकः—सम्पूर्ण साधु पुरुषोंके एकमात्र पालक ॥ १५० ॥

सप्तलोकैकजठरः सप्तलोकैकमण्डनः ।

सृष्टिस्थित्यन्तकृचक्री शार्ङ्गधन्वा गदाधरः ॥ १५१ ॥

२०५ सप्तलोकैकजठरः—भूलोक, भुवलोक, स्वलोक, महलोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक—इन सातों लोकोंको अपने एकमात्र उदरमें स्थापित करनेवाले, २०६ सप्तलोकैकमण्डनः—सातों लोकोंके एकमात्र शृङ्गार—अपनी ही शोभासे समस्त लोकोंको विभूषित करनेवाले, २०७ सृष्टिस्थित्यन्तकृत्—संसारकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले, २०८ चक्री—सुदर्शन चक्र धारण करनेवाले, २०९ शार्ङ्गधन्वा—शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करनेवाले, २१० गदाधरः—कौमोदकी नामकी गदा धारण करनेवाले ॥ १५१ ॥

शङ्खभूत्रन्दकी पद्मपाणिर्गरुडवाहनः ।

अनिर्देश्यवपुः सर्वपूज्यखैलोक्यपावनः ॥ १५२ ॥

२११ शङ्खभूत्—एक हाथमें पाञ्चजन्य नामक शङ्ख लिये रहनेवाले, २१२ नन्दकी—नन्दक नामक खड़ (तलवार) बाँधनेवाले, २१३ पद्मपाणिः—हाथमें कमल धारण करनेवाले, २१४ गरुडवाहनः—पक्षियोंके राजा विनतानन्दन गरुडपर सवारी करनेवाले, २१५ अनिर्देश्यवपुः—जिसके दिव्यस्वरूपका किसी प्रकार भी वर्णन या संकेत न किया जा सके—ऐसे अनिर्वचनीय शरीरवाले, २१६ सर्वपूज्यः—देवता, दानव और मनुष्य आदि—सबके पूजनीय, २१७ त्रैलोक्यपावनः—अपने दर्शन और सर्व आदिसे त्रिभुवनको पावन बनानेवाले ॥ १५२ ॥

अनन्तकीर्तिनिःसीमपौरुषः सर्वमङ्गलः ।

सूर्यकोटिप्रतीकाशो यमकोटिदुरासदः ॥ १५३ ॥

२१८ अनन्तकीर्तिः—शेष और शारदा भी जिनकी कीर्तिका पार न पा सके—ऐसे अपार सुयशवाले, २१९ निःसीमपौरुषः—असीम पुरुषार्थवाले,

अमितपराक्रमी, २२० सर्वमङ्गलः—सबका मङ्गल करनेवाले अथवा सबके लिये मङ्गलरूप, २२१ सूर्यकोटिप्रतीकाशः—करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी, २२२ यमकोटिदुरासदः—करोड़ों यमराजोंके लिये भी दुर्धर्ष ॥ १५३ ॥

कन्दर्पकोटिलावण्यो दुर्गाकोट्यरिमर्दनः ।

समुद्रकोटिगम्भीरस्तीर्थकोटिसमाह्रयः ॥ १५४ ॥

२२३ कन्दर्पकोटिलावण्यः—करोड़ों कामदेवोंके समान मनोहर कान्तिवाले, २२४ दुर्गाकोट्यरिमर्दनः—करोड़ों दुर्गाओंके समान शत्रुओंको रौंद डालनेवाले, २२५ समुद्रकोटिगम्भीरः—करोड़ों समुद्रोंके समान गम्भीर, २२६ तीर्थकोटिसमाह्रयः—करोड़ों तीर्थोंके समान पावन नामवाले ॥ १५४ ॥

ब्रह्मकोटिजगत्वष्टा वायुकोटिमहाबलः ।

कोटीन्दुजगदानन्दी शम्भुकोटिमहेश्वरः ॥ १५५ ॥

२२७ ब्रह्मकोटिजगत्वष्टा—करोड़ों ब्रह्माओंके समान संसारकी सृष्टि करनेवाले, २२८ वायुकोटिमहाबलः—करोड़ों वायुओंके तुल्य महाबली, २२९ कोटीन्दुजगदानन्दी—करोड़ों चन्द्रमाओंकी भाँति जगत्को आनन्द प्रदान करनेवाले, २३० शम्भुकोटिमहेश्वरः—करोड़ों शङ्खोंके समान महेश्वर (महान् ऐश्वर्यशाली) ॥ १५५ ॥

कुबेरकोटिलक्ष्मीवाज्ञाक्रकोटिविलासवान् ।

हिमवत्कोटिनिष्कम्पः कोटिब्रह्माण्डविग्रहः ॥ १५६ ॥

२३१ कुबेरकोटिलक्ष्मीवान्—करोड़ों कुबेरोंके समान सम्पत्तिशाली, २३२ शक्रकोटिविलासवान्—करोड़ों इन्द्रोंके सदृश भोग-विलासके साधनोंसे परिपूर्ण, २३३ हिमवत्कोटिनिष्कम्पः—करोड़ों हिमालयोंकी भाँति अचल, २३४ कोटिब्रह्माण्डविग्रहः—अपने श्रीविग्रहमें कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंको धारण करनेवाले, महाविराटरूप ॥ १५६ ॥

कोट्यश्वमेधपापग्रो यज्ञकोटिसमार्चनः ।

सुधाकोटिस्वास्थ्यहेतुः कामधुक्कोटिकामदः ॥ १५७ ॥

२३५ कोट्यश्वमेधपापग्रः—करोड़ों अश्वमेध

यज्ञोंके समान पापनाशक, २३६ यज्ञकोटि-
समार्चनः—करोड़ों यज्ञोंके तुल्य पूजन-सामग्रीसे
पूजित होनेवाले, २३७ सुधाकोटिस्वास्थ्यहेतुः—
कोटि-कोटि अमृतके तुल्य स्वास्थ्य-रक्षाके साधन,
२३८ कामधुक्कोटिकामदः—करोड़ों कामधेनुओंके
समान मनोरथ पूर्ण करनेवाले ॥ १५७ ॥

ब्रह्मविद्याकोटिरूपः शिपिविष्टः शुचिश्रवाः ।

विश्वभरस्तीर्थपादः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ १५८ ॥

२३९ ब्रह्मविद्याकोटिरूपः—करोड़ों ब्रह्म-
विद्याओंके तुल्य ज्ञानस्वरूप, २४० शिपिविष्टः—
सूर्य-किरणोंमें स्थित रहनेवाले, २४१ शुचिश्रवाः—
पवित्र यशवाले, २४२ विश्वभरः—सम्पूर्ण विश्वका
भरण-पोषण करनेवाले, २४३ तीर्थपादः—तीर्थोंकी
भाँति पवित्र चरणोंवाले, अथवा अपने चरणोंमें ही
समस्त तीर्थोंको धारण करनेवाले, २४४ पुण्यश्रवण-
कीर्तनः—जिनके नाम, गुण, महिमा तथा स्वरूप
आदिका श्रवण और कीर्तन परम पवित्र एवं पावन
है—ऐसे भगवान् ॥ १५८ ॥

आदिदेवो जगज्जैत्रो मुकुन्दः कालनेमिहा ।

वैकुण्ठोऽनन्तमाहात्म्यो महायोगेश्वरोत्सवः ॥ १५९ ॥

२४५ आदिदेवः—आदि देवता, सबके आदि
कारण एवं प्रकाशमान, २४६ जगज्जैत्रः—
विश्वविजयी, २४७ मुकुन्दः—मोक्षदाता, २४८
कालनेमिहा—कालनेमि नामक दैत्यका वंध करनेवाले,
२४९ वैकुण्ठः—परमधामस्वरूप, २५०
अनन्तमाहात्म्यः—जिनकी महिमाका अन्त नहीं है—
ऐसे महामहिम परमेश्वर, २५१ महायोगेश्वरोत्सवः—
बड़े-बड़े योगेश्वरोंके लिये जिनका दर्शन उत्सवरूप
है—ऐसे भगवान् ॥ १५९ ॥

नित्यतृप्तो लसद्वावो निःशङ्को नरकान्तकः ।

दीनानाथैकशरणं विश्वैकव्यसनापहः ॥ १६० ॥

२५२ नित्यतृप्तः—अपने-आपमें ही सदा तृप्त
रहनेवाले, २५३ लसद्वावः—सुन्दर स्वभाववाले,
२५४ निःशङ्कः—अद्वितीय होनेके कारण भय-
शङ्कासे रहित, २५५ नरकान्तकः—नरकके भयका

नाश अथवा नरकासुरका वंध करनेवाले, २५६
दीनानाथैकशरणम्—दीनों और अनाथोंको एकमात्र
शरण देनेवाले, २५७ विश्वैकव्यसनापहः—संसारके
एकमात्र संकट हरनेवाले ॥ १६० ॥

जगत्कृपाक्षमो नित्यं कृपालुः सज्जनाश्रयः ।

योगेश्वरः सदोदीर्णो वृद्धिक्षयविवर्जितः ॥ १६१ ॥

२५८ जगत्कृपाक्षमः—सम्पूर्ण विश्वपर कृपा
करनेमें समर्थ, २५९ नित्यं कृपालुः—सदा स्वभावसे
ही कृपा करनेवाले, २६० सज्जनाश्रयः—सत्पुरुषोंके
शरणदाता, २६१ योगेश्वरः—सम्पूर्ण योगों तथा उनसे
प्राप्त होनेवाली सिद्धियोंके स्वामी, २६२
सदोदीर्णः—सदा अभ्युदयशील, नित्य उदार, सदा
सबसे श्रेष्ठ, २६३ वृद्धिक्षयविवर्जितः—वृद्धि और
हासरूप विकारसे रहित ॥ १६१ ॥

अधोक्षजो विश्वरेताः प्रजापतिशताधिपः ।

शक्रब्रह्मार्चितपदः शम्भुब्रह्मोर्ध्वधामगः ॥ १६२ ॥

२६४ अधोक्षजः—इन्द्रियोंके विषयोंसे ऊपर
उठे हुए, अपने स्वरूपसे क्षीण न होनेवाले, २६५
विश्वरेताः—सम्पूर्ण विश्व जिनके वीर्यसे उत्पन्न हुआ है,
वे परमेश्वर, २६६ प्रजापतिशताधिपः—सैकड़ों
प्रजापतियोंके स्वामी, २६७ शक्रब्रह्मार्चितपदः—
इन्द्र और ब्रह्माजीके द्वारा पूजित चरणोंवाले, २६८
शम्भुब्रह्मोर्ध्वधामगः—भगवान् शङ्कर और ब्रह्माजीके
धामसे भी ऊपर विराजमान वैकुण्ठधाममें निवास
करनेवाले ॥ १६२ ॥

सूर्यसोमेक्षणो विश्वभोक्ता सर्वस्य पारगः ।

जगत्सेतुर्धर्मसेतुधरो विश्वधुरन्धरः ॥ १६३ ॥

२६९ सूर्यसोमेक्षणः—सूर्य और चन्द्रमासूपी
नेत्रवाले, २७० विश्वभोक्ता—विश्वका पालन
करनेवाले, २७१ सर्वस्य पारगः—सबसे पेरे
विराजमान, २७२ जगत्सेतुः—संसार-सागरसे पार
होनेके लिये सेतुरूप, २७३ धर्मसेतुधरः—धर्म-
मर्यादाका पालन करनेवाले, २७४ विश्वधुरन्धरः—
शेषनागके रूपसे समस्त विश्वका भार वहन
करनेवाले ॥ १६३ ॥

निर्मोऽरिखल्लोकेशो निःसङ्गोऽब्दुतभोगवान् ।

वश्यमायो वश्यविश्वो विष्वक्सेनः सुरोत्तमः ॥ १६४ ॥

२७५ निर्ममः—आसक्तिमूलक ममतासे रहित, २७६ अखिलल्लोकेशः—सम्पूर्ण लोकोंका शासन करनेवाले, २७७ निःसङ्गः—आसक्तिरहित, २७८ अब्दुतभोगवान्—आश्चर्यजनक भोगसामग्रीसे सम्पन्न, २७९ वश्यमायः—मायाको अपने वशमें रखनेवाले, २८० वश्यविश्वः—समस्त जगत्को अपने अधीन रखनेवाले, २८१ विष्वक्सेनः—युद्धके लिये की हुई तैयारीमात्रसे ही दैत्यसेनाको तितर-बितर कर डालनेवाले, २८२ सुरोत्तमः—समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ ॥ १६४ ॥

सर्वश्रेयःपतिर्दिव्योऽनर्थ्यभूषणभूषितः ।

सर्वलक्षणलक्षण्यः सर्वदैत्येन्द्रदर्पहा ॥ १६५ ॥

२८३ सर्वश्रेयःपतिः—समस्त कल्याणोंके स्वामी, २८४ दिव्यः—लोकोत्तर सौन्दर्य-माधुर्य आदि गुणोंसे सम्पन्न, २८५ अनर्थ्यभूषणभूषितः—अमूल्य आभूषणोंसे विभूषित, २८६ सर्वलक्षणलक्षण्यः—समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त, २८७ सर्वदैत्येन्द्रदर्पहा—समस्त दैत्यपतियोंका दर्प दलन करनेवाले ॥ १६५ ॥

समस्तदेवसर्वस्वं सर्वदैवतनायकः ।

समस्तदेवकवचं सर्वदैवशिरोमणिः ॥ १६६ ॥

२८८ समस्तदेवसर्वस्वम्—सम्पूर्ण देवताओंके सर्वस्व, २८९ सर्वदैवतनायकः—समस्त देवताओंके नेता, २९० समस्तदेवकवचम्—सब देवताओंकी कवचके समान रक्षा करनेवाले, २९१ सर्वदैवशिरोमणिः—सम्पूर्ण देवताओंके शिरोमणि ॥ १६६ ॥

समस्तदेवतादुर्गः प्रपन्नाशनिपञ्चरः ।

समस्तभयहन्नामा भगवान् विष्ट्रश्रवाः ॥ १६७ ॥

२९२ समस्तदेवतादुर्गः—मजबूत किलेके समान समस्त देवताओंकी रक्षा करनेवाले, २९३ प्रपन्नाशनिपञ्चरः—शरणागतोंकी रक्षाके लिये वज्रमय पिंजडेके समान, २९४ समस्तभयहन्नामा—जिनका नाम सब प्रकारके भयोंको दूर करनेवाला है—ऐसे विष्णु, २९५ भगवान्—पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री,

ज्ञान और वैराग्यसे सम्पन्न, २९६ विष्ट्रश्रवाः—

कुशाकी मुष्टिके समान कानोंवाले ॥ १६७ ॥

विभुः सर्वहितोदर्कों हतारिः स्वर्गतिप्रदः ।

सर्वदैवतजीवेशो ब्राह्मणादिनियोजकः ॥ १६८ ॥

२९७ विभुः—सर्वत्र व्यापक, २९८

सर्वहितोदर्कः—सबके लिये हितकर भविष्यका निर्माण करनेवाले, २९९ हतारिः—जिनके शत्रु नष्ट हो चुके हैं, शत्रुहीन, ३०० स्वर्गतिप्रदः—स्वर्गीय—उच्चगति प्रदान करनेवाले, ३०१ सर्वदैवतजीवेशः—समस्त देवताओंके जीवनके स्वामी, ३०२ ब्राह्मणादिनियोजकः—ब्राह्मण आदि वर्णोंको अपने-अपने धर्ममें नियुक्त करनेवाले ॥ १६८ ॥

ब्रह्मशम्भुपराधीर्युर्ब्रह्मज्येष्ठः शिशुस्वराद् ।

विराङ् भक्तपराधीनः स्तुत्यः स्तोत्रार्थसाधकः ॥ १६९ ॥

३०३ ब्रह्मशम्भुपराधीयुः—ब्रह्मा और शिवकी अपेक्षा भी अनन्तगुनी आयुवाले, ३०४ ब्रह्मज्येष्ठः—ब्रह्माजीसे भी ज्येष्ठ, ३०५ शिशुस्वराद्—बालमुकुन्दरूपसे शोभा पानेवाले, ३०६ विराद्—विशेष शोभा-सम्पन्न, अखिल ब्रह्माण्डमय विराद् रूपधारी भगवान्, ३०७ भक्तपराधीनः—प्रेमविवश होकर भक्तोंके अधीन रहनेवाले, ३०८ स्तुत्यः—स्तुति करने योग्य, ३०९ स्तोत्रार्थसाधकः—स्तोत्रमें कहे हुए अर्थको सिद्ध करनेवाले ॥ १६९ ॥

परार्थकर्ता कृत्यजः स्वार्थकृत्यसदोऽन्धितः ।

सदानन्दः सदाभद्रः सदाशान्तः सदाशिवः ॥ १७० ॥

३१० परार्थकर्ता—परोपकार करनेवाले, ३११ कृत्यजः—कर्तव्यका ज्ञान रखनेवाले, ३१२ स्वार्थकृत्यसदोऽन्धितः—स्वार्थसाधनके कार्योंसे सदा दूर रहनेवाले, ३१३ सदानन्दः—सदा आनन्दमग्न, सत्पुरुषोंको आनन्द प्रदान करनेवाले अथवा सत् एवं आनन्दस्वरूप, ३१४ सदाभद्रः—सर्वदा कल्याणरूप, ३१५ सदाशान्तः—नित्य शान्त, ३१६ सदाशिवः—निरन्तर कल्याण करनेवाले ॥ १७० ॥

सदाप्रियः सदातुष्टः सदापुष्टः सदार्चितः ।

सदापूतः पावनाग्र्यो वेदगुह्यो वृषाकपिः ॥ १७१ ॥

३१७ सदाप्रियः—सर्वदा सबके प्रियतम,

३१८ सदातुष्टः—निरन्तर संतुष्ट रहनेवाले, ३१९

सदापुष्टः—क्षुधा-पिपासा तथा आधि-व्याधिसे रहित

होनेके कारण सदा पुष्ट शरीरवाले, ३२० सदार्चितः—

भक्तोद्वारा निरन्तर पूजित, ३२१ सदापूतः—नित्य

पवित्र, ३२२ पावनाग्रह्यः— पवित्र करनेवालोंमें

अग्रगण्य, ३२३ वेदगुह्यः— वेदोंके गूढ़ रहस्य,

३२४ वृषाकपिः— वृष—धर्मको अकम्पित

(अविचल) रखनेवाले श्रीविष्णु ॥ १७१ ॥

सहस्रनामा त्रियुगश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्भुजः ।

भूतभव्यभवन्नाथो महापुरुषपूर्वजः ॥ १७२ ॥

३२५ सहस्रनामा—हजारों नामवाले, ३२६

त्रियुगः—सत्ययुग, त्रेता और द्वापर नामक त्रियुग-

स्वरूप, ३२७ चतुर्मूर्तिः—राम, लक्ष्मण, भरत और

शत्रुघ्नस्वरूप चार मूर्तियोवाले, ३२८ चतुर्भुजः—चार

भुजाओवाले, ३२९ भूतभव्यभवन्नाथः—भूत,

भविष्य और वर्तमान—सभी प्राणियोंके स्वामी, ३३०

महापुरुषपूर्वजः—महापुरुष ब्रह्मा आदिके भी

पूर्वज ॥ १७२ ॥

नारायणो मञ्जुकेशः सर्वयोगविनिःसृतः ।

वेदसारो यज्ञसारः सामसारस्तपेनिधिः ॥ १७३ ॥

३३१ नारायणः—जलमें शयन करनेवाले,

३३२ मञ्जुकेशः—मनोहर घुঁঘराले केशोंवाले, ३३३

सर्वयोगविनिःसृतः—नाना प्रकारके शास्त्रोक्त

साधनोंसे जाननेमें आनेवाले, समस्त योग-साधनोंसे

प्रकट होनेवाले, ३३४ वेदसारः—वेदोंके सारभूत

तत्त्व, ब्रह्म, ३३५ यज्ञसारः—यज्ञोंके सारतत्त्व—

यज्ञपुरुष विष्णु, ३३६ सामसारः— सामवेदकी

श्रुतियोद्वाग गाये जानेवाले सारभूत परमात्मा, ३३७

तपोनिधिः—तपस्याके भंडार नर-नारायण-

स्वरूप ॥ १७३ ॥

साध्यश्रेष्ठः पुराणर्थिनिष्ठा शान्तिः परायणम् ।

शिवलिङ्गलविष्वंसी श्रीकण्ठैकवरप्रदः ॥ १७४ ॥

३३८ साध्यश्रेष्ठः—साध्य देवताओंमें श्रेष्ठ,

साधनसे प्राप्त होनेवालोंमें सबसे श्रेष्ठ, ३३९

पुराणर्थिः—पुरातन ऋषि नारायण, ३४० निष्ठा—

सबकी स्थितिके आधार—अधिष्ठानस्वरूप, ३४१

शान्तिः—परम शान्तिस्वरूप, ३४२ परायणम्—

परम प्राप्यस्थान, ३४३ शिवः—कल्याणस्वरूप,

३४४ त्रिशूलविष्वंसी—आध्यात्मिक आदि त्रिविध

शूलोंका नाश करनेवाले अथवा प्रलयकालमें महासूद-

रूप होकर त्रिशूलसे समस्त विश्वका विष्वंस करनेवाले,

३४५ श्रीकण्ठैकवरप्रदः—भगवान् शङ्करके एकमात्र

वरदाता ॥ १७४ ॥

नरः कृष्णो हरिर्धर्मनन्दनो धर्मजीवनः ।

आदिकर्ता सर्वसत्यः सर्वस्त्रीरत्नदर्पहा ॥ १७५ ॥

३४६ नरः—बदरिकाश्रममें तपस्या करनेवाले

ऋषिश्रेष्ठ नर, नरके अवतार अर्जुन, ३४७ कृष्णः—

भक्तोंके मनको आकृष्ट करनेवाले देवकीनन्दन श्रीकृष्ण,

सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा, ३४८ हरिः—गजेन्द्रकी

पुकार सुनकर तत्काल प्रकट हो ग्राहके प्राणोंका

अपहरण करनेवाले भगवान् श्रीहरि, ३४९ धर्म-

नन्दनः—धर्मके यहाँ पुत्ररूपसे अवतीर्ण होनेवाले

भगवान् नारायण अथवा धर्मराज युधिष्ठिरको आनन्दित

करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण, ३५० धर्मजीवनः—

पापाचारी असुरोंका मूलोच्छेद करके धर्मको जीवित

रखनेवाले, ३५१ आदिकर्ता—जगत्के आदि कारण

ब्रह्माजीको उत्पन्न करनेवाले, ३५२ सर्वसत्यः—

पूर्णतः सत्यस्वरूप, ३५३ सर्वस्त्रीरत्नदर्पहा—

जितेन्द्रिय होनेके कारण सम्पूर्ण सुन्दरी स्त्रियोंका

अभिमान चूर्ण करनेवाले ॥ १७५ ॥

त्रिकालजितकन्दर्प उर्वशीसुद्धमुनीश्वरः ।

आद्यः कविर्हयग्रीवः सर्ववागीश्वरेश्वरः ॥ १७६ ॥

३५४ त्रिकालजितकन्दर्पः—भूत, भविष्य और

वर्तमान—तीनों कालोंमें कामदेवको परास्त करनेवाले

३५५ उर्वशीसृक्—उर्वशी अप्सराकी सृष्टि करनेवाले

भगवान् नारायण, ३५६ मुनीश्वरः—तपस्वी मुनियोंमें

श्रेष्ठ नर-नारायणस्वरूप, ३५७ आद्यः—आदिपुरुष

विष्णु, ३५८ कविः—त्रिकालदर्शी विद्वान् ३५९

हयग्रीवः—हयग्रीव नामक अवतार धारण करनेवाले

भगवान् ३६० सर्ववागीश्वरेश्वरः— ब्रह्मा आदि समस्त वागीश्वरोंके भी ईश्वर ॥ १७६ ॥

सर्वदेवमयो ब्रह्मगुरुवर्गीश्वरीपतिः ।

अनन्तविद्याप्रभवो मूलाविद्याविनाशकः ॥ १७७ ॥

३६१ सर्वदेवमयः—सम्पूर्ण देवस्वरूप, ३६२ ब्रह्मगुरुः—ब्रह्माजीको वेदका उपदेश करनेवाले गुरु, ३६३ वागीश्वरीपतिः—वाणीकी अधीश्वरी सरस्वती देवीके स्वामी, ३६४ अनन्तविद्याप्रभवः—असंख्य विद्याओंकी उत्पत्तिके हेतु, ३६५ मूलाविद्या-विनाशकः— भव-बन्धनकी हेतुभूत मूल अविद्याका विनाश करनेवाले ॥ १७७ ॥

सार्वज्ञदो नमज्जाङ्घनाशको मधुसूदनः ।

अनेकमन्त्रकोटीशः शब्दब्रह्मैकपारगः ॥ १७८ ॥

३६६ सार्वज्ञदः—सर्वज्ञता प्रदान करनेवाले, ३६७ नमज्जाङ्घनाशकः—प्रणाम करनेवाले भक्तोंकी जड़ताका नाश करनेवाले, ३६८ मधुसूदनः— मधु नामक दैत्यका वध करनेवाले, ३६९ अनेकमन्त्र-कोटीशः—अनेक करोड़ मन्त्रोंके स्वामी, ३७० शब्दब्रह्मैकपारगः— शब्दब्रह्म (वेद-वेदाङ्गों) के एकमात्र पारङ्गत विद्वान् ॥ १७८ ॥

आदिविद्वान् वेदकर्ता वेदात्मा श्रुतिसागरः ।

ब्रह्मार्थवेदाहरणः सर्वविज्ञानजन्मभूः ॥ १७९ ॥

३७१ आदिविद्वान्—सर्वप्रथम वेदका ज्ञान प्रकाशित करनेवाले, ३७२ वेदकर्ता—अपने निःशासके साथ वेदोंको प्रकट करनेवाले, ३७३ वेदात्मा—वेदोंके सार तत्त्व—उनके द्वारा प्रतिपादित होनेवाले सिद्धान्तभूत परमात्मा, ३७४ श्रुतिसागरः— वैदिक ज्ञानके समुद्र, ३७५ ब्रह्मार्थवेदाहरणः— मत्स्यरूप धारण करके ब्रह्माजीके लिये वेदोंको ले आनेवाले, ३७६ सर्वविज्ञानजन्मभूः—सब प्रकारके विज्ञानोंकी जन्मभूमि ॥ १७९ ॥

विद्याराजो ज्ञानमूर्तिज्ञनसिन्धुरखण्डधीः ।

मत्स्यदेवो महाशूङ्गो जगद्वीजवहित्रधृक् ॥ १८० ॥

३७७ विद्याराजः—समस्त विद्याओंके राजा,

३७८ ज्ञानमूर्तिः—ज्ञानस्वरूप, ३७९ ज्ञानसिन्धुः—

ज्ञानके सागर, ३८० अखण्डधीः—संशय-विपर्यय आदिके द्वारा कभी खण्डित न होनेवाली बुद्धिसे युक्त, ३८१ मत्स्यदेवः—मत्स्यवतारधारी भगवान्, ३८२ महाशूङ्गः—मत्स्य-शरीरमें ही महान् शूङ्ग धारण करनेवाले, ३८३ जगद्वीजवहित्रधृक्—संसारकी बीजभूत ओषधियोंके सहित नौकाको अपने सींगमें बाँधकर धारण करनेवाले मत्स्य-भगवान् ॥ १८० ॥

लीलाव्याप्तास्विलाष्पोधिर्दृग्वेदादिप्रवर्तकः ।

आदिकूर्मोऽस्विलाधारसृणीकृतजगद्वरः ॥ १८१ ॥

३८४ लीलाव्याप्तास्विलाष्पोधिः—अपने मत्स्य-शरीरसे लीलापूर्वक सम्पूर्ण समुद्रको आच्छादित कर लेनेवाले, ३८५ ऋग्वेदादिप्रवर्तकः—ऋग्वेद, यजुर्वेद आदिके प्रवर्तक, ३८६ आदिकूर्मः— सर्वप्रथम कच्छपरूपमें प्रकट होनेवाले भगवान्, ३८७ अस्विलाधारः—अस्विल ब्रह्माण्डके आधारभूत, ३८८ तृणीकृतजगद्वरः—समस्त जगत्के भारको तिनकेके समान समझनेवाले ॥ १८१ ॥

अमरीकृतदेवौघः पीयूषोत्पत्तिकारणम् ।

आत्माधारो धराधारो यज्ञाङ्गो धरणीधरः ॥ १८२ ॥

३८९ अमरीकृतदेवौघः—अमृत पिलाकर देवसमुदायको अमर बनानेवाले, ३९० पीयूषोत्पत्तिकारणम्—क्षीरसागरसे अमृतके निकालनेमें प्रधान कारण, ३९१ आत्माधारः—अन्य किसी आधारकी अपेक्षा न रखकर अपने ही आधारपर स्थित रहनेवाले, ३९२ धराधारः—पृथ्वीके आधार, ३९३ यज्ञाङ्गः—यज्ञमय शरीरवाले भगवान् वराह, ३९४ धरणीधरः—अपनी दाढ़ोंपर पृथ्वीको धारण करनेवाले ॥ १८२ ॥

हिरण्याक्षहरः पृथ्वीपतिः श्राद्धादिकल्पकः ।

समस्तपितृभीतिनः समस्तपितृजीवनम् ॥ १८३ ॥

३९५ हिरण्याक्षहरः—वराहरूपसे ही हिरण्याक्ष नामक दैत्यका वध करनेवाले, ३९६ पृथ्वीपतिः— उक्त अवतारमें ही पृथ्वीको पत्नीरूपमें ग्रहण करनेवाले, अथवा पृथ्वीके पालक, ३९७ श्राद्धादिकल्पकः— पितृरोंके लिये श्राद्ध आदिकी व्यवस्था करनेवाले, ३९८

समस्तपितृभीतिज्ञः—सम्पूर्ण पितरोंके भयका निवारण करनेवाले, ३९९ समस्तपितृजीवनम्—समस्त पितरोंके जीवनाधार ॥ १८३ ॥

हव्यकव्यैकभुग्घव्यकव्यैकफलदायकः ।

रोमान्तर्लीनजलधिः क्षोभिताशेषसागरः ॥ १८४ ॥

४०० हव्यकव्यैकभुक्—हव्य और कव्य (यज्ञ और श्राद्ध) के एकमात्र भोक्ता, ४०१ हव्य-कव्यैकफलदायकः—यज्ञ और श्राद्धके एकमात्र फलदाता, ४०२ रोमान्तर्लीनजलधिः—अपने रोम-

कूपोंमें समुद्रको लीन कर लेनेवाले महावराह, ४०३ क्षोभिताशेषसागरः—वराहरूपसे पृथ्वीकी खोज करते समय समस्त समुद्रको क्षुब्ध कर डालनेवाले ॥ १८४ ॥

महावराहो यज्ञग्रध्वंसको याज्ञिकाश्रयः ।

श्रीनृसिंहो दिव्यसिंहः सर्वानिष्टार्थदुःखहा ॥ १८५ ॥

४०४ महावराहः—महान् वराहरूपधारी भगवान्, ४०५ यज्ञग्रध्वंसकः—यज्ञमें विन्न डालनेवाले असुरोंके विनाशक, ४०६ याज्ञिकाश्रयः—यज्ञ करनेवाले ऋत्विजोंके परम आश्रय, ४०७ श्रीनृसिंहः—

अपने भक्त प्रह्लादकी बात सत्य करनेके लिये नृसिंहरूप धारण करनेवाले भगवान्, ४०८ दिव्यसिंहः—अलौकिक सिंहकी आकृति धारण करनेवाले, ४०९ सर्वानिष्टार्थदुःखहा—सब प्रकारकी अनिष्ट वस्तुओं और दुःखोंका नाश करनेवाले ॥ १८५ ॥

एकवीरोऽनुतब्लो यन्त्रमन्त्रैकभञ्जनः ।

ब्रह्मादिदुःसहज्योतिर्युगान्ताग्न्यतिभीषणः ॥ १८६ ॥

४१० एकवीरः—अद्वितीय वीर, ४११

अनुतब्लः—अनुत शक्तिशाली, ४१२ यन्त्र-

मन्त्रैकभञ्जनः—शत्रुके यन्त्र-मन्त्रोंको एकमात्र भंग करनेवाले, ४१३ ब्रह्मादिदुःसहज्योतिः—जिनके

श्रीविग्रहकी ज्योति ब्रह्मा आदि देवताओंके लिये भी दुःसह है, ऐसे नृसिंह भगवान्, ४१४ युगान्ताग्न्यति-भीषणः—प्रलयकालीन अग्निके समान अत्यन्त भयझर ॥ १८६ ॥

कोटिवत्राधिकनखो जगदुत्त्रेक्ष्यमूर्तिधृक् ।

मातृचक्रप्रमथनो महामातृगणेश्वरः ॥ १८७ ॥

४१५ कोटिवत्राधिकनखः—करोड़ों वज्रोंसे भी अधिक तीक्ष्ण नखेंवाले, ४१६ जगदुत्त्रेक्ष्य-मूर्तिधृक्—सम्पूर्ण जगत् जिसकी ओर कठिनतासे देख सके, ऐसी भयानक मूर्ति धारण करनेवाले, ४१७ मातृचक्रप्रमथनः—डाकिनी, शाकिनी, पूतना आदि मातृ-मण्डलको मथ डालनेवाले, ४१८ महामातृ-गणेश्वरः—अपनी शक्तिभूत दिव्य महामातृगणोंके अधीश्वर ॥ १८७ ॥

अचिन्त्यामोघवीर्याद्यः समस्तासुरघस्मरः ।

हिरण्यकशिपुच्छेदी कालः संकर्षणीपतिः ॥ १८८ ॥

४१९ अचिन्त्यामोघवीर्याद्यः—कभी व्यर्थ न जानेवाले अचिन्त्य पराक्रमसे सम्पत्र, ४२० समस्तासुर-घस्मरः—समस्त असुरोंको ग्रास बनानेवाले, ४२१ हिरण्यकशिपुच्छेदी—हिरण्यकशिपु नामक दैत्यको विदीर्ण करनेवाले, ४२२ कालः—असुरोंके लिये कालरूप, ४२३ संकर्षणीपतिः—संहारकारिणी शक्तिके स्वामी ॥ १८८ ॥

कृतान्तवाहनः सद्यःसमस्तभयनाशनः ।

सर्वविद्वान्तकः सर्वसिद्धिदः सर्वपूरकः ॥ १८९ ॥

४२४ कृतान्तवाहनः—कालको अपना वाहन बनानेवाले, ४२५ सद्यःसमस्तभयनाशनः—शरणमें आये हुए भक्तोंके समस्त भयोंका तत्काल नाश करनेवाले, ४२६ सर्वविद्वान्तकः—सम्पूर्ण विद्वोंका अन्त करनेवाले, ४२७ सर्वसिद्धिदः—सब प्रकारकी सिद्धि प्रदान करनेवाले, ४२८ सर्वपूरकः—सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले ॥ १८९ ॥

समस्तपातकध्वंसी सिद्धिमन्त्राधिकाह्वयः ।

भैरवेशो हरातिंग्नः कालकोटिदुरासदः ॥ १९० ॥

४२९ समस्तपातकध्वंसी—सब पातकोंका नाश करनेवाले, ४३० सिद्धिमन्त्राधिकाह्वयः—नाममें ही सिद्धि और मन्त्रोंसे अधिक शक्ति रखनेवाले, ४३१ भैरवेशः—भैरवगणोंके स्वामी, ४३२ हरातिंग्नः—भगवान् शङ्करकी पीड़ाका नाश करनेवाले, ४३३ कालकोटिदुरासदः—करोड़ों कालोंके लिये भी दुर्धर्ष ॥ १९० ॥

दैत्यगर्भस्त्राविनामा स्फुटद्वज्ञाप्णगर्जितः ।
सृतमात्राखिलत्राताङ्गुतस्त्वपो महाहरिः ॥ १९१ ॥

४३४ दैत्यगर्भस्त्राविनामा—जिनका नाम सुनकर ही दैत्यपत्नियोंके गर्भ गिर जाते हैं—ऐसे भगवान् नृसिंह, ४३५ स्फुटद्वज्ञाप्णगर्जितः—जिनके गर्जनेपर सारा ब्रह्माण्ड फटने लगता है, ४३६ सृतमात्राखिलत्राता—स्मरण करनेमात्रसे सम्पूर्ण जगत्की रक्षा करनेवाले, ४३७ अङ्गुतस्त्वपः—आश्चर्यजनक रूप धारण करनेवाले, ४३८ महाहरिः—महान् सिंहकी आकृति धारण करनेवाले ॥ १९१ ॥

ब्रह्मचर्यशिरःपिण्डी दिव्यपालोऽर्थाङ्गभूषणः ।

द्वादशार्कशिरोदामा रुद्रशीर्षैकनूपुरः ॥ १९२ ॥

४३९ ब्रह्मचर्यशिरःपिण्डी—अपने शिरोभागमें ब्रह्मचर्यको धारण करनेवाले, ४४० दिव्यपालः—समस्त दिशाओंका पालन करनेवाले, ४४१ अर्धाङ्गभूषणः—आधे अङ्गमें आभूषण धारण करनेवाले नृसिंह, ४४२ द्वादशार्कशिरोदामा—मस्तकमें बारह सूर्योंके समान तेज धारण करनेवाले, ४४३ रुद्रशीर्षैकनूपुरः—जिनके चरणोंमें प्रणाम करते समय रुद्रका मस्तक एक नुपूरकी भाँति शोभा धारण करता है, वे भगवान् ॥ १९२ ॥

योगिनीग्रस्तगिरिजात्राता भैरवतर्जकः ।

वीरचक्रेश्वरोऽत्युग्रो यमारिः कालसंवरः ॥ १९३ ॥

४४४ योगिनीग्रस्तगिरिजात्राता—योगिनियोंके चंगुलमें फँसी हुई पार्वतीकी रक्षा करनेवाले, ४४५ भैरवतर्जकः—भैरवगणोंको डाँट बतानेवाले, ४४६ वीरचक्रेश्वरः—वीरमण्डलके ईश्वर, ४४७ अत्युग्रः—अत्यन्त भयङ्कर, ४४८ यमारिः—यमराजके शत्रु, ४४९ कालसंवरः—कालको आच्छादित करनेवाले ॥ १९३ ॥

क्रोधेश्वरो रुद्रचण्डीपरिवारादिदुष्टभुक् ।

सर्वाक्षोभ्यो मृत्युमृत्युः कालमृत्युनिवर्तकः ॥ १९४ ॥

४५० क्रोधेश्वरः—क्रोधपर शासन करनेवाले, ४५१ रुद्रचण्डीपरिवारादिदुष्टभुक्—रुद्र और चण्डीके पार्षदोंमें रहनेवाले दुष्टोंके भक्षक, ४५२ सर्वाक्षोभ्यः—किसीके द्वारा भी विचलित नहीं किये

जा सकनेवाले, ४५३ मृत्युमृत्युः—मौतको भी मारनेवाले, ४५४ कालमृत्युनिवर्तकः—काल और मृत्युका निवारण करनेवाले ॥ १९४ ॥

असाध्यसर्वरोगघ्नः सर्वदुर्ग्रहसौम्यकृत् ।

गणेशकोटिदर्पणो दुःसहाशेषगोत्रहा ॥ १९५ ॥

४५५ असाध्यसर्वरोगघ्नः—सम्पूर्ण असाध्य रोगोंका नाश करनेवाले, ४५६ सर्वदुर्ग्रहसौम्यकृत्—समस्त दुष्ट ग्रहोंको शान्त करनेवाले, ४५७ गणेशकोटिदर्पणः—करोड़ों गणपतियोंका अभिमान चूर्ण करनेवाले, ४५८ दुःसहाशेषगोत्रहा—समस्त दुस्मह शत्रुओंके कुलका नाश करनेवाले ॥ १९५ ॥

देवदानवदुर्दर्शो जगद्वयदभीषकः ।

समस्तदुर्गतित्राता जगद्वक्षकभक्षकः ॥ १९६ ॥

४५९ देवदानवदुर्दर्शः—देवता और दानवोंको भी जिनकी ओर देखनेमें कठिनाई होती है—ऐसे भगवान् नृसिंह, ४६० जगद्वयदभीषकः—संसारके भयदाता असुरोंको भी भयभीत करनेवाले, ४६१ समस्तदुर्गतित्राता—सम्पूर्ण दुर्गतियोंसे उद्धार करनेवाले, ४६२ जगद्वक्षकभक्षकः—जगत्का भक्षण करनेवाले कालके भी भक्षक ॥ १९६ ॥

उग्रेशोऽम्बरमार्जारः कालमूषकभक्षकः ।

अनन्तायुधदोर्दण्डी नृसिंहो वीरभद्रजित् ॥ १९७ ॥

४६३ उग्रेशः—उग्र शक्तियोंपर शासन करनेवाले, ४६४ अम्बरमार्जारः—आकाशरूपी बिलाव, ४६५ कालमूषकभक्षकः—कालरूपी चूहेको खा जानेवाले, ४६६ अनन्तायुधदोर्दण्डी—अपने बाहुदण्डोंको ही अक्षय आयुधोंके रूपमें धारण करनेवाले, ४६७ नृसिंहः—नर तथा सिंह दोनोंकी आकृति धारण करनेवाले, ४६८ वीरभद्रजित्—वीरभद्रपर विजय पानेवाले ॥ १९७ ॥

योगिनीचक्रगुह्येशः शक्रारिपशुमांसभुक् ।

रुद्रो नारायणो मेषरूपशङ्करवाहनः ॥ १९८ ॥

४६९ योगिनीचक्रगुह्येशः—योगिनी-मण्डलके रहस्योंके स्वामी, ४७० शक्रारिपशु-मांसभुक्—इन्द्रके शत्रुभूत दैत्यरूपी पशुओंका भक्षण

करनेवाले, ४७१ रुद्रः—प्रलयकालमें सबको रुलानेवाले रुद्र अथवा भयङ्कर आकारवाले नृसिंह, ४७२ नारायणः—नार अर्थात् जीवसमुदायके आश्रय; अथवा नार—जलको निवासस्थान बनाकर रहनेवाले शेषशायी, ४७३ मेषरूपशङ्करवाहनः—मेषरूपधारी शिवको वाहन बनानेवाले ॥ १९८ ॥

मेषरूपशिवत्राता दुष्टशक्तिसहस्रभुक् ।

तुलसीवल्लभो बीरो वामाचाराखिलेष्टदः ॥ १९९ ॥

४७४ मेषरूपशिवत्राता—मेषरूपधारी शिवके रक्षक, ४७५ दुष्टशक्तिसहस्रभुक्—सहस्रों दुष्टशक्तियोंका विनाश करनेवाले, ४७६ तुलसीवल्लभः—तुलसीके प्रेमी, ४७७ वीरः—शूरवीर, ४७८ वामाचाराखिलेष्टदः—सुन्दर आचरणवालोंका सम्पूर्ण अभीष्ट सिद्ध करनेवाले ॥ १९९ ॥

महाशिवः शिवारुद्धो भैरवैककपालधृक् ।

झिल्लिचक्रेश्वरः शक्रदिव्यमोहनरूपदः ॥ २०० ॥

४७९ महाशिवः—परम मङ्गलमय, ४८० शिवारुद्धः—कल्याणमय वाहनपर आरुद्ध होनेवाले, अथवा ध्यानस्थ भगवान् शिवके हृदयकमलपर आसीन होनेवाले, ४८१ भैरवैककपालधृक्—रुद्ररूपसे हाथमें एक भयानक कपाल धारण करनेवाले, ४८२ झिल्लिचक्रेश्वरः—झींगुरोंके समुदायके स्वामी, ४८३ शक्रदिव्यमोहनरूपदः—इन्द्रको दिव्य एवं मोहक रूप देनेवाले ॥ २०० ॥

गौरीसौभाग्यदो मायानिधिर्मायाभयापहः ।

ब्रह्मतेजोमयो ब्रह्मश्रीमयश्च त्रयीमयः ॥ २०१ ॥

४८४ गौरीसौभाग्यदः—भगवती पार्वतीको सौभाग्य प्रदान करनेवाले, ४८५ मायानिधिः—मायाके भंडार, ४८६ मायाभयापहः—मायाजनित भयका नाश करनेवाले, ४८७ ब्रह्मतेजोमयः—ब्रह्मतेजसे सम्पन्न भगवान् वामन, ४८८ ब्रह्मश्रीमयः—ब्रह्मणोचित श्रीसे परिपूर्ण विग्रहवाले, ४८९ त्रयीमयः—ऋक्, यजुः और साम—इन तीन वेदोंद्वारा प्रतिपादित स्वरूपवाले ॥ २०१ ॥

सुब्रह्मण्यो बलिधंसी वामनोऽदितिदुःखहा ।

उपेन्द्रो नृपतिर्विष्णुः कश्यपान्वयमण्डनः ॥ २०२ ॥

४९० सुब्रह्मण्यः—ब्राह्मण, वेद, तप और ज्ञानकी भलीभाँति रक्षा करनेवाले, ४९१ बलिधंसी—राजा बलिको स्वर्गसे हटानेवाले, ४९२ वामनः—वामनरूपधारी भगवान्, ४९३ अदितिदुःखहा—देवमाता अदितिके दुःख दूर करनेवाले, ४९४ उपेन्द्रः—इन्द्रके छोटे भाई, द्वितीय इन्द्र, ४९५ नृपतिः—राजा, जो 'नराणां च नराधिपः' के अनुसार भगवान्की दिव्य विभूति है, ४९६ विष्णुः—बारह आदित्योंमेंसे एक, ४९७ कश्यपान्वयमण्डनः—कश्यपजीके कुलकी शोभा बढ़ानेवाले ॥ २०२ ॥

बलिस्वाराज्यदः सर्वदेवविप्रान्नदोऽच्युतः ।

उरुक्रमस्तीर्थपादस्त्रिपदस्थस्त्रिविक्रमः ॥ २०३ ॥

४९८ बलिस्वाराज्यदः—राजा बलिको [अगले मन्त्रन्तरमें इन्द्र बनाकर] स्वर्गका राज्य प्रदान करनेवाले, करनेवाले, ४९९ सर्वदेवविप्रान्नदः—सम्पूर्ण देवताओं तथा ब्राह्मणोंको अन्न देनेवाले, ५०० अच्युतः—अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले, ५०१ उरुक्रमः—बलिके यज्ञमें विराटरूप होकर लम्बे डगसे त्रिलोकीको नापनेवाले, ५०२ तीर्थपादः—गङ्गाजीको प्रकट करनेके कारण तीर्थरूप चरणोंवाले, ५०३ त्रिपदस्थः—तीन स्थानोंपर पैर रखनेवाले, ५०४ त्रिविक्रमः—तीन बड़े-बड़े डगवाले ॥ २०३ ॥

व्योमपादः स्वपादाम्भःपवित्रितजगत्रयः ।

ब्रह्मेशाद्यभिवन्द्याद्ग्रिर्दुतधर्माहिधावनः ॥ २०४ ॥

५०५ व्योमपादः—सम्पूर्ण आकाशको चरणोंसे नापनेवाले, ५०६ स्वपादाम्भःपवित्रितजगत्रयः—अपने चरणोंके जल (गङ्गाजी) से तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाले, ५०७ ब्रह्मेशाद्यभिवन्द्याद्ग्रिः—ब्रह्मा और शङ्कर आदि देवताओंके द्वारा वन्दनीय चरणोंवाले, ५०८ द्रुतधर्मा—शीघ्रतापूर्वक धर्मका पालन करनेवाले, ५०९ अहिधावनः—सर्पकी भाँति तेज दौड़नेवाले ॥ २०४ ॥

अचिन्त्याद्गुतविस्तारो विश्ववृक्षो महाबलः ।

राहुमूर्धपराङ्गच्छिद् भृगुपतीशिरोहरः ॥ २०५ ॥

५१० अचिन्त्याद्गुतविस्तारः—किसी तरह चिन्तनमें न आनेवाले अद्भुत विस्तारसे युक्त, ५११

विश्ववृक्षः—संसार-वृक्षरूप, ५१२ महाबलः—
महान् बलसे युक्त, ५१३ राहुमूर्धापिराङ्गच्छित्—
राहुके मस्तक और धड़को काटकर अलग करनेवाले,
५१४ भृगुपत्नीशिरोहरः—भृगुपत्नीके मस्तकका
अपहरण करनेवाले ॥ २०५ ॥

पापात्मस्तः सदापुण्यो दैत्याशानित्यखण्डकः ।
पूरिताखिलदेवाशो विश्वार्थैकावतारकृत् ॥ २०६ ॥

५१५ पापात्मस्तः—पापसे डरनेवाले, ५१६
सदापुण्यः—निरन्तर पुण्यमें प्रवृत्त, ५१७ दैत्या-
शानित्यखण्डकः—धर्मविरोधी दैत्योंकी आशाका
सदा खण्डन करनेवाले, ५१८ पूरिताखिलदेवाशः—
सम्पूर्ण देवताओंकी आशा पूर्ण करनेवाले, ५१९
विश्वार्थैकावतारकृत्—एकमात्र विश्वका कल्याण
करनेके लिये अवतार लेनेवाले ॥ २०६ ॥

स्वमायानित्यगुप्रात्मा भक्तचिन्तामणिः सदा ।

वरदः कार्तवीर्यादिराजराज्यप्रदोऽनघः ॥ २०७ ॥

५२० स्वमायानित्यगुप्रात्मा—अपनी मायासे
निरन्तर अपने स्वरूपको छिपाये रखनेवाले, ५२१ सदा
भक्तचिन्तामणिः—सदा भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेके
लिये चिन्तामणिके समान, ५२२ वरदः—भक्तोंको वर
प्रदान करनेवाले, ५२३ कार्तवीर्यादिराजराज्यप्रदः—
कृतवीर्य-पुत्र अर्जुन आदि राजाओंको राज्य देनेवाले,
५२४ अनघः—स्वभावतः पापसे रहित ॥ २०७ ॥

विश्वश्लाघ्योऽमिताचारो दत्तात्रेयो मुनीश्वरः ।

पराशंक्तिसदाशिलष्टो योगानन्दसदोन्मदः ॥ २०८ ॥

५२५ विश्वश्लाघ्यः—समस्त संसारके लिये
प्रशंसनीय, ५२६ अमिताचारः—अपरिमित
आचारवाले, ५२७ दत्तात्रेयः—अत्रिकुमार दत्त, जो
भगवान् के अवतार हैं, ५२८ मुनीश्वरः—मुनियोंके
खामी, ५२९ पराशंक्तिसदाशिलष्टः—सदा
पराशंक्तिसे युक्त, ५३० योगानन्दसदोन्मदः—निरन्तर
योगजनित आनन्दमें विभोर रहनेवाले ॥ २०८ ॥

समस्तेन्द्रारितेजोहृत्परमामृतपद्मपः ।

अनसूयागर्भरतं भोगमोक्षसुखप्रदः ॥ २०९ ॥

५३१ समस्तेन्द्रारितेजोहृत—इन्द्रसे शत्रुता

रखनेवाले सम्पूर्ण दैत्योंका तेज हर लेनेवाले, ५३२
परमामृतपद्मपः—परम अमृतमय कमलका रस पान
करनेवाले, ५३३ अनसूयागर्भरतम्—अत्रिपत्नी
अनसूयाजीके गर्भके रत्न, ५३४ भोगमोक्षसुखप्रदः—
भोग और मोक्षका सुख प्रदान करनेवाले ॥ २०९ ॥

जमदग्निकुलादित्यो रेणुकाद्वुतशक्तिधृक् ।

मातृहृत्यादिनिर्लेपः स्कन्दजिद्विप्रराज्यदः ॥ २१० ॥

५३५ जमदग्निकुलादित्यः—मुनिवर जमदग्निके
बंशको सूर्यके समान प्रकाशित करनेवाले परशुरामजी,
५३६ रेणुकाद्वुतशक्तिधृक्—माता रेणुकाकी अद्वृत
शक्ति धारण करनेवाले, ५३७ मातृहृत्यादिनिर्लेपः—
मातृहृत्या आदि दोषोंसे निर्लिप्त रहनेवाले परशुरामजी,
५३८ स्कन्दजित्—कार्तिकेयजीको जीतनेवाले, ५३९
विप्रराज्यदः—ब्राह्मणोंको राज्य देनेवाले ॥ २१० ॥

सर्वक्षत्रान्तकृद्वीरदर्पहा कार्तवीर्यजित् ।

समस्तीपवतीदाता शिवार्चकयशःप्रदः ॥ २११ ॥

५४० सर्वक्षत्रान्तकृत्—समस्त क्षत्रियोंका
अन्त करनेवाले, ५४१ वीरदर्पहा—बड़े-बड़े वीरोंका
दर्प दलन करनेवाले, ५४२ कार्तवीर्यजित्—कृतवीर्य-
पुत्र अर्जुनको परास्त करनेवाले, ५४३ समस्तीपवती-
दाता—ब्राह्मणोंको सातों द्विषोंसे युक्त पृथ्वीका दान
करनेवाले, ५४४ शिवार्चकयशःप्रदः—शिवकी पूजा
करनेवालेको यश देनेवाले ॥ २११ ॥

भीमः परशुरामश्च शिवाचार्यैकविश्वभूः ।

शिवाखिलज्ञानकोशो भीष्माचार्योऽग्निदैवतः ॥ २१२ ॥

५४५ भीमः—भयङ्कर पराक्रम करनेवाले,
५४६ परशुरामः—परशुरामरूपधारी भगवान्, ५४७
शिवाचार्यैकविश्वभूः—भगवान् शङ्करको गुरु बनाकर
विद्या सीखनेवाले संसारमें एकमात्र पुरुष, ५४८
शिवाखिलज्ञानकोशः—भगवान् शङ्करसे सम्पूर्ण
ज्ञानका कोष प्राप्त करनेवाले, ५४९ भीष्माचार्यः—
पाण्डवोंके पितामह भीष्मजीके आचार्य, ५५०
अग्निदैवतः—अग्निदेवताके उपासक ॥ २१२ ॥

द्रोणाचार्यगुरुविश्वजैत्रधन्वा कृतान्तजित् ।

अद्वितीयतपोमूर्तिर्ब्रह्मचर्यैकदक्षिणः ॥ २१३ ॥

५५१ द्रोणाचार्यगुरुः—आचार्य द्रोणके गुरु, ५५३ प्रवर्तकः—उक्त

५५२ विश्वजैत्रधन्वा—विश्वविजयी धनुष धारण

धर्मोंका उपदेश करनेवाले, ५५३ प्रवर्तकः—उक्त

करनेवाले, ५५३ कृतान्तजित्—कालको भी परास्त

धर्मोंका प्रचार करनेवाले ॥ २१६ ॥

करनेवाले, ५५४ अद्वितीयतपोमूर्तिः—अद्वितीय

सूर्यवंशाध्वजो रामो राघवः सद्गुणार्णवः ।

तपस्याके मूर्तिमान् स्वरूप, ५५५ ब्रह्मचर्यैकदक्षिणः—

काकुत्स्थो वीरराजायों राजधर्मधुरन्धरः ॥ २१७ ॥

ब्रह्मचर्यपालनमें एकमात्र दक्ष ॥ २१३ ॥

५७४ सूर्यवंशाध्वजः—सूर्यवंशकी कीर्ति-

मनुश्रेष्ठः सतां सेतुर्महीयान् वृषभो विराट् ।

पताका फहरानेवाले श्रीरघुनाथजी, ५७५ रामः—

आदिराजः क्षितिपिता सर्वरत्नैकदोहकृत् ॥ २१४ ॥

योगीजनोंके रमण करनेके लिये नित्यानन्दस्वरूप

५५६ मनुश्रेष्ठः—मनुष्योंमें श्रेष्ठ राजा पृथु, ५५७

परमात्मा, मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी, ५७६

सतां सेतुः—सेतुके समान सत्पुरुषोंकी मर्यादाके रक्षक,

राघवः—रघुकुलमें जन्म ग्रहण करनेवाले, ५७७

अथवा सत्पुरुषोंके लिये सेतुरूप, ५५८ महीयान्—

सद्गुणार्णवः—उत्तम गुणोंके सागर, ५७८

बड़ोंसे भी बड़े महापुरुष, ५५९ वृषभः—

काकुत्स्थः—काकुत्स्थ-पदवी धारण करनेवाले राजा

कामनाओंकी वर्षा करनेवाले श्रेष्ठ राजा, ५६० विराट्—

पुरञ्जयकी कुल-परम्परामें अवतीर्ण, ५७९ वीर-

तेजस्वी राजा, ५६१ आदिराजः—मनुष्योंमें सबसे

राजाओंमें श्रेष्ठ, ५८० राजधर्म-

प्रथम राजाके पदसे विभूषित, ५६२ क्षितिपिता—

धुरन्धरः—राजधर्मका भार वहन करनेवाले ॥ २१७ ॥

पृथ्वीको अपनी कन्याके रूपमें स्वीकार करनेवाले,

नित्यस्वस्थाश्रयः सर्वभद्रग्राही शुभैकदृक् ।

५६३ सर्वरत्नैकदोहकृत्—गोरूपधारिणी पृथ्वीसे

नररत्न रत्नगर्भो धर्माध्यक्षो महानिधिः ॥ २१८ ॥

समस्त रत्नोंके एकमात्र दुहनेवाले ॥ २१४ ॥

५८१ नित्यस्वस्थाश्रयः—सदा अपने स्वरूपमें

पृथुर्जन्माद्योकदक्षो गीःश्रीकीर्तिस्वयंवृतः ।

स्थित रहनेवाले महात्माओंके आश्रय, ५८२ सर्वभद्र-

ग्राही—समस्त कल्याणोंकी प्राप्ति करनेवाले, ५८३

शुभैकदृक्—एकमात्र शुभकी ओर ही दृष्टि रखनेवाले,

५८४ नररत्नम्—मनुष्योंमें श्रेष्ठ, ५८५

रत्नगर्भः—अपनी माताके गर्भके रत्न अथवा अपने

भीतर रत्नमय गुणोंको धारण करनेवाले, ५८६

धर्माध्यक्षः—धर्मके साक्षी, ५८७ महानिधिः—

अखिल भूमण्डलके सम्राट् होनेके कारण बहुत बड़े

कोषवाले ॥ २१८ ॥

सर्वश्रेष्ठाश्रयः सर्वशस्त्रास्त्रग्रामवीर्यवान् ।

जगदीशो दाशरथिः सर्वरत्नाश्रयो नृपः ॥ २१९ ॥

५८८ सर्वश्रेष्ठाश्रयः—सबसे श्रेष्ठ आश्रय,

५८९ सर्वशस्त्रास्त्रग्रामवीर्यवान्—समस्त अस्त्र-

शस्त्रोंके समुदायकी शक्ति रखनेवाले, ५९०

जगदीशः—सम्पूर्ण जगत्के स्वामी, ५९१

दाशरथिः—अयोध्याके चक्रवर्ती नरेश महाराज

दशरथके प्राणाधिक प्रियतम पुत्र, ५९२ सर्वरत्नांश्रयो

नृपः—सम्पूर्ण रत्नोंके आश्रयभूत राजा ॥ २१९ ॥

सनकादिमुनिप्राप्यभगवद्भक्तिवर्धनः:

वर्धनः—सनकादि मुनियोंसे प्राप्त होने योग्य

भगवद्भक्तिका विस्तार करनेवाले, ५९३ वर्णाश्रिमादि-

धर्माणां कर्ता—वर्ण और आश्रम आदिके धर्मोंकी

बनानेवाले, ५९४ वर्त्ता—वर्ण और आश्रम आदिके

नृपः—सम्पूर्ण रत्नोंके आश्रयभूत राजा ॥ २१९ ॥

सनकादिमुनिप्राप्यभगवद्भक्तिवर्धनः:

वर्धनः—सनकादि मुनियोंसे प्राप्त होने योग्य

भगवद्भक्तिका विस्तार करनेवाले, ५९३ वर्णाश्रिमादि-

धर्माणां कर्ता—वर्ण और आश्रम आदिके धर्मोंकी

बनानेवाले, ५९४ वर्त्ता—वर्ण और आश्रम आदिके

नृपः—सम्पूर्ण रत्नोंके आश्रयभूत राजा ॥ २१९ ॥

समस्तधर्मसूः सर्वधर्मद्रष्टाखिलगतिंहा ।

अतीन्द्रो ज्ञानविज्ञानपारद्रष्टा क्षमाम्बुधिः ॥ २२० ॥

५९३ समस्तधर्मसूः—समस्त धर्मोंको उत्पन्न करनेवाले, ५९४ सर्वधर्मद्रष्टा—सम्पूर्ण धर्मोंपर दृष्टि रखनेवाले, ५९५ अखिलगतिंहा—सबकी पीड़ा दूर करनेवाले अथवा समस्त पीड़ाओंके नाशक, ५९६ अतीन्द्रः—इन्द्रसे भी बढ़कर ऐश्वर्यशाली, ५९७ ज्ञानविज्ञानपारद्रष्टा—ज्ञान और विज्ञानके पारंगत, ५९८ क्षमाम्बुधिः—क्षमाके सागर ॥ २२० ॥

सर्वप्रकृष्टः शिष्टेष्टो हर्षशोकाद्यनाकुलः ।

पित्राज्ञात्यक्तसाम्राज्यः सप्तलोदयनिर्भयः ॥ २२१ ॥

५९९ सर्वप्रकृष्टः—सबसे श्रेष्ठ, ६०० शिष्टेष्टः—शिष्ट पुरुषोंके इष्टदेव, ६०१ हर्ष-शोकाद्यनाकुलः—हर्ष और शोक आदिसे विचलित न होनेवाले, ६०२ पित्राज्ञात्यक्तसाम्राज्यः—पिताकी आज्ञासे समस्त भूमप्दलका साम्राज्य त्याग देनेवाले, ६०३ सप्तलोदयनिर्भयः—शत्रुओंके उदयसे भयभीत न होनेवाले ॥ २२१ ॥

गुहादेशापितैश्वर्यः शिवस्पर्धाजिटाधरः ।

चित्रकूटामूरत्ताद्विर्जगदीशो वनेचरः ॥ २२२ ॥

६०४ गुहादेशापितैश्वर्यः—वनवासके समय पर्वतकी कन्दराओंको ऐश्वर्य समर्पित करनेवाले—अपने निवाससे गुफाओंको भी ऐश्वर्य-सम्पन्न बनानेवाले, ६०५ शिवस्पर्धाजिटाधरः—शङ्करजीकी जटाओंसे होड़ लगानेवाली जटाएँ धारण करनेवाले, ६०६ चित्रकूटामूरत्ताद्विः—चित्रकूटको निवास-स्थल बनाकर उसे रत्नमय पर्वत (मेरुगिरि) की महत्ता प्राप्त करानेवाले, ६०७ जगदीशः—सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर, ६०८ वनेचरः—वनमें चित्ररेवाले ॥ २२२ ॥

यथेष्टामोघसर्वास्त्रो देवेन्द्रतनयाक्षिहा ।
ब्रह्मेन्द्रादिनतैषीको मारीचझो विराधहा ॥ २२३ ॥

६०९ यथेष्टामोघसर्वास्त्रः—जिनके सभी अस्त्र इच्छानुसार चलनेवाले एवं अचूक हैं, ६१० देवेन्द्र-तनयाक्षिहा—देवराजके पुत्र जयन्तकी आँख फोड़नेवाले, ६११ ब्रह्मेन्द्रादिनतैषीकः—जिनके

चलाये हुए सोंकके बाणको ब्रह्मा आदि देवताओंने भी

मस्तक झुकाया था, ऐसे प्रभावशाली भगवान् श्रीराम, ६१२ मारीचझः—मायामय मृगका रूप धारण करनेवाले मारीच नामक राक्षसके नाशक, ६१३ विराधहा—विराधका वध करनेवाले ॥ २२३ ॥

ब्रह्मशापहताशेषदण्डकारण्यपावनः ।
चतुर्दशसहस्रोग्ररक्षोद्वैकशैकथृक् ॥ २२४ ॥

६१४ ब्रह्मशापहताशेषदण्डकारण्यपावनः—ब्राह्मण (शुक्राचार्य) के शापसे नष्ट हुए दण्डकारण्यको अपने निवाससे पुनः पावन बनानेवाले ६१५ चतुर्दशसहस्रोग्ररक्षोद्वैकशैकथृक्—चौदह हजार भयङ्कर राक्षसोंको मारनेकी शक्तिसे युक्त एकमात्र बाण धारण करनेवाले ॥ २२४ ॥

खरारिस्त्रिशिरोहन्ता दूषणग्नो जनार्दनः ।

जटायुषोऽग्निगतिदोऽगस्त्यसर्वस्वमन्त्रराद् ॥ २२५ ॥

६१६ खरारिः—खर नामक राक्षसके शत्रु, ६१७ त्रिशिरोहन्ता—त्रिशिराका वध करनेवाले, ६१८ दूषणग्नः—दूषण नामक राक्षसके प्राण लेनेवाले, ६१९ जनार्दनः—भक्तलोग जिनसे अभ्युदय एवं निःश्रेयसरूप परम पुरुषार्थकी यांचना करते हैं, ६२० जटायुषोऽग्निगतिदः—जटायुका दाह-संस्कार करके उन्हें उत्तम गति प्रदान करनेवाले, ६२१ अगस्त्यसर्वस्वमन्त्रराद्—जिनका नाम महर्षि अगस्त्यका सर्वस्व एवं मन्त्रोंका राजा है ॥ २२५ ॥

लीलाधनुष्कोट्यपास्तदुन्दुश्यस्थिमहाचलः ।

सप्ततालव्यधाकृष्टधस्तपातालदानवः ॥ २२६ ॥

६२२ लीलाधनुष्कोट्यपास्तदुन्दुश्यस्थिमहाचलः—खेल-खेलमें ही दुन्दुभि नामक दानवकी हड्डियोंके महान् पर्वतको धनुषकी नोकसे उठाकर दूर केक देनेवाले, ६२३ सप्ततालव्यधाकृष्टधस्तपातालदानवः—सात तालवृक्षोंके वेधसे आकृष्ट होकर आये हुए पातालवासी दानवका विनाश करनेवाले ॥ २२६ ॥

सुग्रीवराज्यदोऽहीनमनसैवाभयप्रदः ।

हनुमद्वामुख्येशः समस्तकपिदेहभृत् ॥ २२७ ॥

६२४ सुग्रीवराज्यदः—सुग्रीवको राज्य देनेवाले, ६३८ उग्रहा—भयङ्कर राक्षसोंका

६२५ अहीनमनसैवाभयप्रदः—उदार चित्से वध करनेवाले ॥ २३० ॥

अभय-दान देनेवाले, ६२६ हनुमद्भुत्येशः—

हनुमानजी तथा भगवान् शङ्करके प्रधान आराध्यदेव,

६२७ समस्तकपिदेहभृत्—सम्पूर्ण वानरोंके शरीरोंका

पोषण करनेवाले ॥ २२७ ॥

सनागदैत्यबाणैकव्याकुलीकृतसागरः ।

सम्लेच्छकोटिबाणैकशुष्कनिर्दग्धसागरः ॥ २२८ ॥

६२८ सनागदैत्यबाणैकव्याकुलीकृत-
सागरः—एक ही बाणसे नाग और दैत्योंसहित
समुद्रको क्षुब्ध कर देनेवाले, ६२९ सम्लेच्छकोटि-
बाणैकशुष्कनिर्दग्धसागरः—एक ही बाणसे करोड़ों
म्लेच्छोंसहित समुद्रको सुखा देने और जला
डालनेवाले ॥ २२८ ॥

समुद्राद्भुतपूर्वैकबद्धसेतुर्यशोनिधिः ।

असाध्यसाधको लङ्घासमूलोत्साददक्षिणः ॥ २२९ ॥

६३० समुद्राद्भुतपूर्वैकबद्धसेतुः—समुद्रमें
पहले-पहल एक अद्भुत पुल बाँधनेवाले, ६३१
यशोनिधिः—सुयशके भंडार, ६३२ असाध्य-
साधकः—असम्भवको भी सम्भव कर दिखानेवाले,
६३३ लङ्घासमूलोत्साददक्षिणः—लङ्घाको जड़से
नष्ट कर डालनेमें दक्ष ॥ २२९ ॥

वरदूपजगच्छल्यपौलस्यकुलकृत्तनः ।

रावणिन्द्रः प्रहस्तच्छिलुभकर्णभिदुग्रहा ॥ २३० ॥

६३४ वरदूपजगच्छल्यपौलस्यकुलकृत्तनः—
वर पाकर घमंडसे भरे हुए तथा संसारके लिये
कण्टकरूप रावणके कुलका उच्छेद करनेवाले, ६३५
रावणिन्द्रः—लक्ष्मणरूपसे रावणके पुत्र मेघनादका
वध करनेवाले, ६३६ प्रहस्तच्छित्—प्रहस्तका मस्तक
काटनेवाले, ६३७ कुभकर्णभित्—कुभकर्णको

विदीर्ण करनेवाले, ६३८ उग्रहा—भयङ्कर राक्षसोंका
वध करनेवाले ॥ २३० ॥

रावणैकशिरश्छेत्ता निःशङ्केन्द्रकराज्यदः ।

स्वर्गास्वर्गत्वविच्छेदी देवेन्द्रनिन्द्रताहरः ॥ २३१ ॥

६३९ रावणैकशिरश्छेत्ता—रावणके सिर
काटनेवाले एकमात्र वीर, ६४० निःशङ्केन्द्र-
राज्यदः—निःशङ्क होकर इन्द्रको एकमात्र राज्य
देनेवाले, ६४१ स्वर्गास्वर्गत्वविच्छेदी—स्वर्गकी
अस्वर्गताको मिटा डालनेवाले,* ६४२ देवेन्द्रा-
निन्द्रताहरः—देवराज इन्द्रकी अनिन्द्रता दूर
करनेवाले† ॥ २३१ ॥

रक्षोदेवत्वहृष्टर्माधर्मत्वघः पुरुष्टुतः ।

नतिमात्रदशास्यार्दित्तराज्यविभीषणः ॥ २३२ ॥

६४३ रक्षोदेवत्वहृत्—राक्षसलोग जो देवताओंको
हटाकर स्वयं देवता बन बैठे थे, उनके उस देवत्वको हर
लेनेवाले, ६४४ धर्माधर्मत्वघः—धर्मकी अधर्मताका
नाश करनेवाले, (राक्षसोंके कारण धर्म भी अधर्मरूपमें
परिणत हो रहा था, भगवान् रामने उन्हें मारकर धर्मको
पुनः अपने स्वरूपमें प्रतिष्ठित किया), ६४५ पुरुष्टुतः—
बहुत लोगोंके द्वारा स्तुत होनेवाले, ६४६ नतिमात्रदशा-
स्यारिः—नत मस्तक होनेतक ही रावणको शत्रु
माननेवाले, ६४७ दत्तराज्यविभीषणः—विभीषणको
राज्य प्रदान करनेवाले ॥ २३२ ॥

सुधावृष्टिमृताशेषस्वसैन्योजीवनैककृत् ।

देवब्राह्मणनामैकधाता सर्वामराचित्तः ॥ २३३ ॥

६४८ सुधावृष्टिमृताशेषस्वसैन्योजीवनैक-
कृत्—सुधाकी वर्षा कराकर अपने समस्त मरे हुए
सैनिकोंको जीवन प्रदान करनेवाले, ६४९ देवब्राह्मण-
नामैकधाता—देवता और ब्राह्मणके नामोंके एकमात्र
रक्षक, वे यदि न होते तो देवताओं एवं ब्राह्मणोंका

* राक्षसोंने 'स्वर्ग' का वैभव लूटकर उसे 'अस्वर्ग' बना दिया था, भगवान् रामने रावणको मारकर पुनः उसे अपनी प्रतिष्ठाके अनुरूप बनाया, स्वर्गकी अस्वर्गता दूर कर दी।

† रावणने इन्द्रको इन्द्रपदसे हटा दिया था, वे 'अनिन्द्र' (इन्द्रपदसे च्युत) हो गये थे; श्रीरामने उनकी अनिन्द्रता दूर की—उन्हें पुनः इन्द्रके सिंहासनपर बिठाया।

नाम-निशान मिट जाता, ६५० सर्वामरार्चितः—
सम्पूर्ण देवताओंसे पूजित ॥ २३३ ॥

ब्रह्मसूर्येन्द्ररुद्रादिवृन्दार्पितसतीप्रियः ।

अयोध्याखिलराजाग्र्यः सर्वभूतमनोहरः ॥ २३४ ॥

६५१ ब्रह्मसूर्येन्द्ररुद्रादिवृन्दार्पितसतीप्रियः—
ब्रह्मा, सूर्य, इन्द्र तथा रुद्र आदि देवताओंके समूह-
द्वारा शुद्ध प्रमाणित करके समर्पित की हुई सती
सीताके प्रियतम, ६५२ अयोध्याखिलराजाग्र्यः—
अयोध्यापुरीके सम्पूर्ण राजाओंमें अग्रगण्य, ६५३
सर्वभूतमनोहरः—अपने सौन्दर्य-माधुर्यके कारण
सम्पूर्ण प्राणियोंका मन हरनेवाले ॥ २३४ ॥

स्वाम्यतुल्यकृपादण्डो हीनोत्कृष्टैकसत्प्रियः ।

श्वपक्ष्यादिन्यायदर्शी हीनार्थाधिकसाधकः ॥ २३५ ॥

६५४ स्वाम्यतुल्यकृपादण्डः—प्रभुताके
अनुरूप ही कृपा करने और दण्ड देनेवाले, ६५५
हीनोत्कृष्टैकसत्प्रियः—ऊँच-नीच—सबके सच्चे
प्रेमी, ६५६ श्वपक्ष्यादिन्यायदर्शी—कुते और पक्षी
आदिके प्रति भी न्याय प्रदर्शित करनेवाले, ६५७
हीनार्थाधिकसाधकः—असहाय पुरुषोंके कार्यकी
अधिक सिद्धि करनेवाले ॥ २३५ ॥

वधव्याजानुचितकृत्तारकोऽखिलतुल्यकृत् ।

पावित्र्याधिक्यमुक्तात्मा प्रियात्यक्तः स्मरारिजित् ॥ २३६ ॥

६५८ वधव्याजानुचितकृत्तारकः—अनुचित
कर्म करनेवाले लोगोंका वधके बहाने उद्धार करनेवाले,
६५९ अखिलतुल्यकृत्—सबके साथ उसकी
योग्यताके अनुरूप बर्ताव करनेवाले, ६६०
पावित्र्याधिक्यमुक्तात्मा—अधिक पवित्रताके कारण
नित्यमुक्त स्वभाववाले, ६६१ प्रियात्यक्तः—प्रिय पत्नी
सीतासे कुछ कालके लिये वियुक्त, ६६२
स्मरारिजित्—कामदेवके शत्रु भगवान् शिवको भी
जीतनेवाले ॥ २३६ ॥

साक्षात्कुशलवच्छिद्रावितो ह्यपराजितः ।

कोसलेन्द्रो वीरबाहुः सत्यार्थत्यक्तसोदरः ॥ २३७ ॥

६६३ साक्षात्कुशलवच्छिद्रावितः—कुश
और लवके रूपमें स्वयं अपने-आपसे युद्धमें हार
जानेवाले, ६६४ अपराजितः—वास्तवमें कभी

किसीके द्वारा भी परास्त न होनेवाले, ६६५
कोसलेन्द्रः—कोसल देशके ऐश्वर्यशाली सप्राट, ६६६
वीरबाहुः—शक्तिशालिनी भुजाओंसे युक्त, ६६७
सत्यार्थत्यक्तसोदरः—सत्यकी रक्षाके लिये अपने भाई
लक्ष्मणका त्याग करनेवाले ॥ २३७ ॥

शरसंधाननिर्धूतधरणीमण्डलो जयः ।

ब्रह्मादिकामसांनिध्यसनाथीकृतदैवतः ॥ २३८ ॥

६६८ शरसंधाननिर्धूतधरणीमण्डलः—
बाणोंके संधानसे समस्त भूमण्डलको कँपा देनेवाले,
६६९ जयः—विजयशील, ६७० ब्रह्मादि-
कामसांनिध्यसनाथीकृतदैवतः—ब्रह्मा आदिकी
कामनाके अनुसार समीपसे दर्शन देकर समस्त
देवताओंको सनाथ करनेवाले ॥ २३८ ॥

ब्रह्मलोकाम्पचाप्डालद्यशेषप्राणिसार्थकः ।

स्वर्नीतगर्दभश्वादिश्विरायोध्यावनैककृत् ॥ २३९ ॥

६७१ ब्रह्मलोकाम्पचाप्डालद्य-
शेषप्राणिसार्थकः—चाप्डाल आदि समस्त
प्राणियोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचाकर कृतार्थ करनेवाले,
६७२ स्वर्नीतगर्दभश्वादिः—गदहे और कुते
आदिको भी स्वर्गलोकमें ले जानेवाले, ६७३
चिरायोध्यावनैककृत्—चिरकालतक अयोध्याकी
एकमात्र रक्षा करनेवाले ॥ २३९ ॥

रामो द्वितीयसौमित्रिलक्ष्मणः प्रहतेन्द्रजित् ।

विष्णुभक्तः सरामाङ्गिपादुकाराज्यनिर्वृतिः ॥ २४० ॥

६७४ रामः—मुनियोंका मन रमानेवाले भगवान्
श्रीराम, ६७५ द्वितीयसौमित्रिः—सुमित्राकुमार
लक्ष्मणको साथ रखनेवाले, ६७६ लक्ष्मणः—शुभ
लक्षणोंसे सम्पन्न लक्ष्मणरूप, ६७७ प्रहतेन्द्रजित्—
लक्ष्मणरूपसे मेघनादका वध करनेवाले, ६७८
विष्णुभक्तः—विष्णुके अवतारभूत भगवान् श्रीरामके
भक्त भरतरूप, ६७९ सरामाङ्गिपादुकाराज्य-
निर्वृतिः—श्रीरामचन्द्रजीकी चरणपादुकाके साथ मिले
हुए राज्यसे संतुष्ट होनेवाले भरतरूप ॥ २४० ॥

भरतोऽसहृगन्धर्वकोटिष्ठो लवणान्तकः ।

६८० भरतः—प्रजाका भरण-पोषण करनेवाले

कैकेयीकुमार भरतरूप, ६८१ असह्यगन्धर्व-
कोटिष्ठः—करोड़ों दुःसह गन्धर्वोंका वध करनेवाले,
६८२ लवणान्तकः—लवणासुरको मारनेवाले
शत्रुघ्नरूप, ६८३ शत्रुघ्नः—शत्रुओंका वध करनेवाले
सुमित्राके छोटे कुमार, ६८४ वैद्यराट्—वैद्योंके राजा
धन्वन्तरिरूप, ६८५ आयुर्वेदगभौषिधीपतिः—
आयुर्वेदके भीतर वर्णित ओषधियोंके स्वामी ॥ २४१ ॥
नित्यामृतकरो धन्वन्तरिर्यज्ञो जगद्धरः ।

सूर्यारिष्ठः सुराजीवो दक्षिणेशो द्विजप्रियः ॥ २४२ ॥

६८६ नित्यामृतकरः—हाथोंमें सदा अमृत लिये
रहनेवाले, ६८७ धन्वन्तरिः—धन्वन्तरि नामसे प्रसिद्ध
एक वैद्य, जो समुद्रसे प्रकट हुए और भगवान् नारायणके
अंश थे, ६८८ यज्ञः—यज्ञस्वरूप, ६८९
जगद्धरः—संसारके पालक, ६९० सूर्यारिष्ठः—
सूर्यके शत्रु (केतु) को मारनेवाले, ६९१ सुराजीवः—
अमृतके द्वारा देवताओंको जीवन प्रदान करनेवाले,
६९२ दक्षिणेशः—दक्षिण दिशाके स्वामी धर्मराजरूप,
६९३ द्विजप्रियः—ब्राह्मणोंके प्रियतम ॥ २४२ ॥

छिन्नमूर्धपिदेशार्कः शेषाङ्गस्थापितामरः ।

विश्वार्थाशेषकृद्वाहुशिरश्छेत्ताक्षताकृतिः ॥ २४३ ॥

६९४ छिन्नमूर्धपिदेशार्कः—जिसका मस्तक
कटा हुआ है तथा जो कहनेमात्रके लिये सूर्य—
'स्वर्भानु' नाम धारण करता है, ऐसा राहु नामक ग्रह,*
६९५ शेषाङ्गस्थापितामरः—जिसके शेष अङ्गोंमें
अमरत्वकी स्थापना हुई है, ऐसा राहु, ६९६
विश्वार्थाशेषकृत्—संसारके सम्पूर्ण मनोरथोंको सिद्ध
करनेवाले भगवान्, ६९७ राहुशिरश्छेत्ता—राहुका
मस्तक काटनेवाले, ६९८ अक्षताकृतिः—स्वयं किसी
प्रकारकी भी क्षतिसे रहित शरीरवाले ॥ २४३ ॥

वाजपेयादिनामाग्निवेदधर्मपरायणः ।

श्वेतद्वीपपतिः सांख्यप्रणेता सर्वसिद्धिराट् ॥ २४४ ॥

६९९ वाजपेयादिनामाग्निः—वाजपेय आदि

नाम धारण करनेवाले अग्नि देवता, ७०० वेदधर्म-
परायणः—वेदोक्त धर्मके परम आश्रय, ७०१ श्वेत-
द्वीपपतिः—श्वेतद्वीपके स्वामी, ७०२
सांख्यप्रणेता—सांख्यशास्त्रकी रचना करनेवाले
कपिलस्वरूप, ७०३ सर्वसिद्धिराट्—सम्पूर्ण
सिद्धियोंके राजा ॥ २४४ ॥

विश्वप्रकाशितज्ञानयोगमोहतमिस्त्रहा ।

देवहूत्यात्मजः सिद्धः कपिलः कर्दमात्मजः ॥ २४५ ॥

७०४ विश्वप्रकाशितज्ञानयोगमोहतमिस्त्रहा—
संसारमें ज्ञानयोगका प्रकाश करके मोहरूपी अन्धकारका
नाश करनेवाले, ७०५ देवहूत्यात्मजः—मनुकुमारी
देवहूतिके पुत्र, ७०६ सिद्धः—सब प्रकारकी
सिद्धियोंसे परिपूर्ण, ७०७ कपिलः—कपिल नामसे
प्रसिद्ध भगवान्‌के अवतार, ७०८ कर्दमात्मजः—
कर्दम ऋषिके सुयोग्य पुत्र ॥ २४५ ॥

योगस्वामी ध्यानभङ्गसगरात्मजभस्मकृत् ।

धर्मो वृषेन्द्रः सुरभीपतिः शुद्धात्मभावितः ॥ २४६ ॥

७०९ योगस्वामी—सांख्ययोगके स्वामी, ७१०
ध्यानभङ्गसगरात्मजभस्मकृत्—ध्यान भङ्ग होनेसे
सगर-पुत्रोंको भस्म कर डालनेवाले, ७११ धर्मः—
जगत्को धारण करनेवाले धर्मके स्वरूप, ७१२
वृषेन्द्रः—श्रेष्ठ वृषभकी आकृति धारण करनेवाले,
७१३ सुरभीपतिः—सुरभी गौके स्वामी, ७१४
शुद्धात्मभावितः—शुद्ध अन्तःकरणमें चिन्तन किये
जानेवाले ॥ २४६ ॥

शम्भुस्त्रिपुरदाहैकस्थैर्यविश्वरथोद्धः ।

भक्तशम्भुजितो दैत्यामृतवापीसमस्तपः ॥ २४७ ॥

७१५ शम्भुः—कल्याणकी उत्पत्तिके स्थानभूत,
शिवस्वरूप, ७१६ त्रिपुरदाहैकस्थैर्यविश्व-
रथोद्धः—त्रिपुरका दाह करनेके समय एकमात्र स्थिर
रहनेवाले और विश्वमय रथका वहन करनेवाले, ७१७
भक्तशम्भुजितः—अपने भक्त शिवके द्वारा पराजित,

* राहुका एक नाम 'स्वर्भानु' भी है; इस प्रकार कहनेके लिये तो वह भानु है, पर वास्तवमें अन्धकाररूप है। प्रत्येक ग्रह
भगवान्‌की दिव्य विभूति है, इसलिये वह भी भगवत्स्वरूप ही है।

७१८ दैत्यामृतवापीसमस्तपः—त्रिपुरनिवासी दैत्योंकी अमृतसे भरी हुई सारी बावलीको गोरूपसे पी जानेवाले ॥ २४७ ॥

महाप्रलयविश्वैकनिलयोऽखिलनागराद् ।

शेषदेवः सहस्राक्षः सहस्रास्यशिरोभुजः ॥ २४८ ॥

७१९ महाप्रलयविश्वैकनिलयः—महाप्रलयके समय सम्पूर्ण विश्वके एकमात्र निवासस्थान, ७२० अखिलनागराद्—सम्पूर्ण नागोंके राजा शेषनाग-स्वरूप, ७२१ शेषदेवः—प्रलयकालमें भी शेष रहनेवाले देवता, ७२२ सहस्राक्षः—सहस्रों नेत्रवाले, ७२३ सहस्रास्यशिरोभुजः—सहस्रों मुख, मस्तक और भुजाओंवाले ॥ २४८ ॥

फणामणिकणाकारयोजिताच्छाम्बुदक्षितिः ।

कालाग्निरुद्रजनको मुशलास्त्रो हलायुधः ॥ २४९ ॥

७२४ फणामणिकणाकारयोजिताच्छाम्बुद-क्षितिः—फनोंकी मणियोंके कणोंके आकारसे पृथ्वीपर क्षेत्र बादलोंकी घटा-सी छा देनेवाले, ७२५ कालाग्निरुद्रजनकः—भयङ्कर कालाग्नि एवं संहारमूर्ति रुद्रको प्रकट करनेवाले, ७२६ मुशलास्त्रः—मुशलको अस्त्ररूपमें ग्रहण करनेवाले शेषावतार बलरामरूप, ७२७ हलायुधः—हलरूपी आयुधवाले ॥ २४९ ॥ नीलाम्बरो वारुणीशो मनोवाक्तायदोषहा ।

असंतोषदृष्टिमात्रपातितैकदशाननः ॥ २५० ॥

७२८ नीलाम्बरः—नीलवस्त्रधारी, ७२९ वारुणीशः—वारुणीके स्वामी, ७३० मनोवाक्ताय-दोषहा—मन, वाणी और शरीरके दोष दूर करनेवाले, ७३१ असंतोषदृष्टिमात्रपातितैकदशाननः—असंतोषपूर्ण दृष्टि डालनेमात्रसे ही पातालमें गये हुए रावणको गिरा देनेवाले शेषनागरूप ॥ २५० ॥

बिलसंयमनो घोरो रौहिणेयः प्रलम्बहा ।

मुष्टिकग्नो द्विविदहा कालिन्दीकर्षणो बलः ॥ २५१ ॥

७३२ बिलसंयमनः—सातों पाताललोकोंको काबूमें रखनेवाले, ७३३ घोरः—प्रलयके समय भयङ्कर आकृति धारण करनेवाले, ७३४ रौहिणेयः—रौहिणीके पुत्र, ७३५ प्रलम्बहा—प्रलम्ब दानवको

मारनेवाले, ७३६ मुष्टिकग्नः—मुष्टिकके प्राण लेनेवाले, ७३७ द्विविदहा—द्विविद नामक वीर बानरका वध करनेवाले, ७३८ कालिन्दीकर्षणः—यमुनाकी धाराको खींचनेवाले, ७३९ बलः—बलके मूर्तिमान् स्वरूप ॥ २५१ ॥

रेवतीरमणः पूर्वभक्तिखेदाच्युताग्रजः ।

देवकीवसुदेवाह्वकश्यपादितिनन्दनः ॥ २५२ ॥

७४० रेवतीरमणः—अपनी पली रेवतीके साथ रमण करनेवाले, ७४१ पूर्वभक्तिखेदाच्युताग्रजः—पूर्वजन्ममें लक्ष्मणरूपसे भगवान्की निरन्तर सेवा करते-करते थके रहनेके कारण दूसरे जन्ममें भगवान्की इच्छासे उनके ज्येष्ठ बन्धुके रूपमें अवतार लेनेवाले बलरामरूप, ७४२ देवकीवसुदेवाह्वकश्यपादितिनन्दनः—वसुदेव और देवकीके नामसे प्रसिद्ध महर्षि कश्यप और अदितिको पुत्ररूपसे आनन्द देनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण ॥ २५२ ॥

वार्ष्णेयः सात्वतां श्रेष्ठः शौरिर्यदुकुलेश्वरः ।

नराकृतिः परं ब्रह्म सव्यसाचिवरप्रदः ॥ २५३ ॥

७४३ वार्ष्णेयः—वृष्णिकुलमें उत्पन्न, ७४४ सात्वतां श्रेष्ठः—सात्वत कुलमें सर्वश्रेष्ठ, ७४५ शौरिः—शूरसेनके कुलमें अवतीर्ण, ७४६ यदुकुलेश्वरः—यदुकुलके स्वामी, ७४७ नराकृतिः—मानव-शरीर धारण करनेवाले श्रीकृष्ण, ७४८ परं ब्रह्म—वस्तुतः परमात्मा, ७४९ सव्यसाचिवरप्रदः—अर्जुनको वर देनेवाले ॥ २५३ ॥

ब्रह्मादिकाम्यलालित्यजगदाश्र्वयशैशवः ।

पूतनाम्भः शकटभित्यमलार्जुनभञ्जकः ॥ २५४ ॥

७५० ब्रह्मादिकाम्यलालित्यजगदाश्र्वयशैशवः—ब्रह्मा आदि भी जिन्हें देखनेकी इच्छा रखते हैं तथा जो सम्पूर्ण जगत्को आश्र्वयमें डालनेवाली हैं, ऐसी ललित बाललीलाओंसे युक्त श्रीकृष्ण, ७५१ पूतनाम्भः—पूतनाके प्राण लेनेवाले, ७५२ शकटभित्—लातके हलके आधातसे छकड़ेको चकनाचूर कर देनेवाले, ७५३ यमलार्जुनभञ्जकः—यमलार्जुन नामसे प्रसिद्ध दो जुङवें वृक्षोंको तोड़ डालनेवाले ॥ २५४ ॥

वातासुरारिः केशिन्नो धेनुकारिंवीश्वरः ।
दामोदरो गोपदेवो यशोदानन्ददायकः ॥ २५५ ॥

७५४ वातासुरारिः—तृणावर्तके शत्रु, ७५५
केशिन्नः—केशी नामक दैत्यको मारनेवाले, ७५६
धेनुकारिः—धेनुकासुरके शत्रु, ७५७ गवीश्वरः—
गौओंके स्वामी, ७५८ दामोदरः—उदरमें यशोदा
मैयाद्वारा रसी बाँधी जानेके कारण दामोदर नाम धारण
करनेवाले, ७५९ गोपदेवः—ग्वालोंके इष्टदेव,
७६० यशोदानन्ददायकः—यशोदा मैयाको आनन्द
देनेवाले ॥ २५५ ॥

कालीयमर्दनः सर्वगोपगोपीजनप्रियः ।
लीलागोवर्धनधरो गोविन्दो गोकुलोत्सवः ॥ २५६ ॥

७६१ कालीयमर्दनः—कालिय नागका
मान-मर्दन करनेवाले, ७६२ सर्वगोपगोपीजन-
प्रियः—समस्त गोपों और गोपियोंके प्रियतम, ७६३
लीलागोवर्धनधरः—अनायास ही गोवर्धन पर्वतको
अङ्गुलीपर उठा लेनेवाले, ७६४ गोविन्दः—इन्द्रकी
वर्षासे गौओंकी रक्षा करनेके कारण कामधेनुद्वारा
'गोविन्द' पदपर अभिषिक्त भगवान् श्रीकृष्ण, ७६५
गोकुलोत्सवः—गोकुलनिवासियोंको निरन्तर आनन्द
प्रदान करनेके कारण उत्सवरूप ॥ २५६ ॥

अरिष्टमथनः कामोन्मत्तगोपीविमुक्तिदः ।
सद्यःकुवलयापीडघाती चाणूरमर्दनः ॥ २५७ ॥

७६६ अरिष्टमथनः—अरिष्टासुरको नष्ट
करनेवाले, ७६७ कामोन्मत्तगोपीविमुक्तिदः—
प्रेमविभोर गोपीको मुक्ति प्रदान करनेवाले, ७६८
संद्यःकुवलयापीडघाती—कुवलयापीड नामक
हाथीको शीघ्र मार गिरानेवाले, ७६९ चाणूरमर्दनः—
चाणूरनामक मल्लको कुचल डालनेवाले ॥ २५७ ॥
कंसारिस्त्रयसेनादिराज्यव्यापारितामरः ।
सुधर्माङ्कितभूलोको जरासंधबलान्तकः ॥ २५८ ॥

७७० कंसारिः—मथुराके राजा कंसके शत्रु,
७७१ उग्रसेनादिराज्यव्यापारितामरः—राज्य-
सम्बन्धी कार्योंमें उग्रसेन आदिके रूपमें देवताओंको ही
नियुक्त करनेवाले, ७७२ सुधर्माङ्कितभूलोकः—

देवोचित सुधर्मा नामक सभासे भूलोकको भी सुशोभित
करनेवाले, ७७३ जरासंधबलान्तकः—जरासंधकी
सेनाका संहार करनेवाले ॥ २५८ ॥

त्यक्तभग्नजरासंधो भीमसेनयशःप्रदः ।
सांदीपनिमृतापत्यदाता कालान्तकादिजित् ॥ २५९ ॥

७७४ त्यक्तभग्नजरासंधः—युद्धसे भगे हुए
जरासंधको जीवित छोड़ देनेवाले, ७७५ भीमसेन-
यशःप्रदः—युक्तिसे जरासंधका वध कराकर
भीमसेनको यश प्रदान करनेवाले, ७७६ सांदीपनि-
मृतापत्यदाता—अपने विद्यागुरु सांदीपनिके मरे हुए
पुत्रको पुनः ला देनेवाले, ७७७ कालान्तकादिजित्—
काल और अन्तक आदिपर विजय पानेवाले ॥ २५९ ॥
समस्तनारकत्राता सर्वभूपतिकोटिजित् ।
रुक्मिणीरमणो रुक्मिशासनो नरकान्तकः ॥ २६० ॥

७७८ समस्तनारकत्राता—शरणमें आनेपर
नरकमें पड़े हुए समस्त प्राणियोंका भी उद्धार करनेवाले,
७७९ सर्वभूपतिकोटिजित्—रुक्मिणीके विवाहमें
करोड़ोंकी संख्यामें आये हुए समस्त राजाओंको परास्त
करनेवाले, ७८० रुक्मिणीरमणः—रुक्मिणीके साथ
रमण करनेवाले, ७८१ रुक्मिशासनः—रुक्मीको
दण्ड देनेवाले, ७८२ नरकान्तकः—नरकासुरका
विनाश करनेवाले ॥ २६० ॥

समस्तसुन्दरीकान्तो मुरारिगुरुडध्वजः ।
एकाकिजितरुद्रार्कमरुदायखिलेश्वरः ॥ २६१ ॥

७८३ समस्तसुन्दरीकान्तः—समस्त सुन्दरियाँ
जिन्हें पानेकी इच्छा करती हैं, ७८४ मुरारिः—मुर
नामक दानवके शत्रु, ७८५ गरुडध्वजः—गरुड़के
चिह्नसे चिह्नित ध्वजावाले, ७८६ एकाकिजितरुद्रार्क-
मरुदायखिलेश्वरः—अकेले ही रुद्र, सूर्य और वायु
आदि समस्त लोकपालोंको जीतनेवाले ॥ २६१ ॥

देवेन्द्रदर्पहा कल्पद्रुमालंकृतभूतलः ।
बाणबाहुसहस्रच्छिन्नद्यादिगणकोटिजित् ॥ २६३ ॥

७८७ देवेन्द्रदर्पहा—देवराज इन्द्रका अभिमान
चूर्ण करनेवाले, ७८८ कल्पद्रुमालंकृतभूतलः—
कल्पवृक्षको स्वर्गसे लाकर उसके द्वारा भूतलकी शोभा

बढ़ानेवाले, ७८९ बाणबाहुसहस्रच्छित्—बाणासुरकी सहस्र भुजाओंका उच्छेद करनेवाले, ७९० नन्दादि-गणकोटिजित्—नन्दी आदि करोड़ों शिवगणोंको परास्त करनेवाले ॥ २६२ ॥

लीलाजितमहादेवो महादेवैकपूजितः ।

इन्द्रार्थार्जुननिर्भङ्गयदः पाप्डवैकथृक् ॥ २६३ ॥

७९१ लीलाजितमहादेवः—अनायास ही महादेवजीपर विजय पानेवाले, ७९२ महादेवैक-पूजितः—महादेवजीके द्वारा एकमात्र पूजित, ७९३ इन्द्रार्थार्जुननिर्भङ्गयदः—इन्द्रकी प्रसन्नताके लिये अर्जुनको अखण्ड विजय प्रदान करनेवाले, ७९४ पाप्डवैकथृक्—पाप्डवोंके एकमात्र रक्षक ॥ २६३ ॥

काशिराजशिरश्छेता रुद्रशक्त्येकमर्दनः ।

विश्वेश्वरप्रसादाढ्यः काशिराजसुतार्दनः ॥ २६४ ॥

७९५ काशिराजशिरश्छेता—काशिराजका मस्तक काट देनेवाले, ७९६ रुद्रशक्त्येकमर्दनः—रुद्रकी शक्तिके एकमात्र मर्दन करनेवाले, ७९७ विश्वेश्वर-प्रसादाढ्यः—काशीविश्वनाथकी प्रसन्नता प्राप्त करनेवाले, ७९८ काशिराजसुतार्दनः—काशीनरेशके पुत्रको पीड़ा देनेवाले ॥ २६४ ॥

शम्पुप्रतिज्ञाविध्वंसीकाशीनिर्दग्धनायकः ।

काशीशगणकोटिग्नो लोकशिक्षाद्विजार्चकः ॥ २६५ ॥

७९९ शम्पुप्रतिज्ञाविध्वंसी—शङ्करजीकी प्रतिज्ञा तोड़नेवाले, ८०० काशीनिर्दग्धनायकः—जिन्होंने काशीको जलाकर अनाथ-सी कर दिया था, वे भगवान् श्रीकृष्ण, ८०१ काशीशगणकोटिग्नः—काशीपति विश्वेश्वरके करोड़ों गणोंका नाश करनेवाले, ८०२ लोकशिक्षाद्विजार्चकः—लोकको शिक्षा देनेके लिये सुदामा आदि ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाले ॥ २६५ ॥

शिवतीव्रतपोवश्यः पुराशिववरप्रदः ।

शङ्करैकप्रतिष्ठाधृक्स्वांशशङ्करपूजकः ॥ २६६ ॥

८०३ शिवतीव्रतपोवश्यः—शिवजीकी तीव्र तपस्याके वशीभूत होनेवाले, ८०४ पुराशिववरप्रदः—पूर्वकालमें शिवजीको वरदान देनेवाले, ८०५ शङ्करैकप्रतिष्ठाधृक्—भगवान् शङ्करकी एकमात्र

प्रतिष्ठा करनेवाले, ८०६—स्वांशशङ्करपूजकः—

अपने अंशभूत शङ्करकी पूजा करनेवाले ॥ २६६ ॥

शिवकन्याब्रतपतिः कृष्णरूपशिवारिहा ।

महालक्ष्मीवपुर्गौरीत्राता वैदलवृत्रहा ॥ २६७ ॥

८०७ शिवकन्याब्रतपतिः—शिवकी कन्याके

ब्रतकी रक्षा करनेवाले, ८०८ कृष्णरूपशिवारिहा—

कृष्णरूपसे शिवके शत्रु (भस्मासुर) का संहर

करनेवाले, ८०९ महालक्ष्मीवपुर्गौरीत्राता—

महालक्ष्मीका शरीर धारण करनेवाली पार्वतीके रक्षक,

८१० वैदलवृत्रहा—वैदलवृत्र नामक दैत्यका वध

करनेवाले ॥ २६७ ॥

स्वधाममुचुकुन्दैकनिष्कालयवनेष्टकृत् ।

यमुनापतिरानीतपरिलीनद्विजात्मजः ॥ २६८ ॥

८११ स्वधाममुचुकुन्दैकनिष्कालयवनेष्ट-

कृत्—अपने तेजःस्वरूप राजा मुचुकुन्दके द्वारा केवल

कालयवनका नाश कराकर उन्हें अभीष्ट वरदान

देनेवाले, ८१२ यमुनापतिः—सूर्यकन्या यमुनाको

पतीरूपसे ग्रहण करनेवाले, ८१३ आनीतपरिलीन-

द्विजात्मजः—मेरे हुए ब्राह्मण-पुत्रोंको पुनः

लानेवाले ॥ २६८ ॥

श्रीदामरङ्गभक्तार्थभूम्यानीतेन्द्रवैभवः ।

दुर्वृत्तशिशुपालैकमुक्तिदो द्वारकेश्वरः ॥ २६९ ॥

८१४ श्रीदामरङ्गभक्तार्थभूम्यानीतेन्द्रवैभवः—

अपने दीन भक्त श्रीदामा (सुदामा) के लिये पृथ्वीपर

इन्द्रके समान वैभव उपस्थित करनेवाले, ८१५ दुर्वृत्त-

शिशुपालैकमुक्तिदः—दुराचारी शिशुपालको एकमात्र

मोक्ष प्रदान करनेवाले, ८१६ द्वारकेश्वरः—द्वारकाके

स्वामी ॥ २६९ ॥

आचाप्णालादिकप्राप्यद्वारकानिधिकोटिकृत् ।

अक्षरोद्धवमुख्यैकभक्तः स्वच्छन्दमुक्तिदः ॥ २७० ॥

८१७ आचाप्णालादिकप्राप्यद्वारकानिधि-

कोटिकृत्—द्वारकामें चाण्डाल आदितकके लिये

सुलभ होनेवाली करोड़ों निधियोंका संग्रह करनेवाले,

८१८ अक्षरोद्धवमुख्यैकभक्तः—अक्षर और उद्धव

आदि प्रधान भक्तोंके साथ रहनेवाले, ८१९ स्वच्छन्द-

मुक्तिदः—इच्छानुसार मुक्ति देनेवाले ॥ २७० ॥

सबालस्त्रीजलक्रीडामृतवापीकृतार्णवः ।

ब्रह्मास्त्रदग्धगर्भस्थपरीक्षिज्जीवनैककृत् ॥ २७१ ॥

८२० सबालस्त्रीजलक्रीडामृतवापी-
कृतार्णवः—बालकों और स्त्रियोंके जल-विहार
करनेके लिये समुद्रको अमृतमयी बावलीके समान बना
देनेवाले, ८२१ ब्रह्मास्त्रदग्धगर्भस्थपरीक्षिज्जीवनैक-
कृत—अश्वस्थामाके ब्रह्मास्त्रसे दग्ध हुए गर्भस्थ
परीक्षितको एकमात्र जीवन-दान देनेवाले ॥ २७१ ॥
परिलीनद्विजसुतानेतार्जुनमदापहः ।
गूढमुद्राकृतिग्रस्तभीष्माद्यस्तिलकौरवः ॥ २७२ ॥

शम्बरासुरके प्राणहन्ता ॥ २७४ ॥

अनङ्गो जितगौरीशो रतिकान्तः सदेप्सितः ।

पुष्येषुर्विश्वविजयी स्मरः कामेश्वरीप्रियः ॥ २७५ ॥

८३३ अनङ्गः—अङ्गरहित, ८३४
जितगौरीशः—गौरीपति शङ्करको भी जीतनेवाले,
८३५ रतिकान्तः—रतिके प्रियतम, ८३६
सदेप्सितः—कामी पुरुषोंको सदा अभीष्ट, ८३७
पुष्येषुः—पुष्यमय बाणवाले, ८३८ विश्वविजयी—
सम्पूर्ण जगत्पर विजय पानेवाले, ८३९
स्मरः—विषयोंके स्मरणमात्रसे मनमें प्रकट हो
जानेवाले, ८४० कामेश्वरीप्रियः—कामेश्वरी—
रतिके प्रेमी ॥ २७५ ॥

ऊषापतिर्विश्वकेतुर्विश्वतृप्तोऽधिपूरुषः ।

चतुरात्मा चतुर्व्यूहश्वतुर्युगविधायकः ॥ २७६ ॥

८४१ ऊषापतिः—बाणासुरकी कन्या ऊषाके
स्वामी अनिरुद्धरूप, ८४२ विश्वकेतुः—विश्वमें विजय-
पताका फहरनेवाले, ८४३ विश्वतृप्तः—सब ओरसे
तृप्त, ८४४ अधिपूरुषः—अन्तर्यामी साक्षी चेतन,
८४५ चतुरात्मा—मन, बुद्धि, अहंकार और चित्तरूप
चार अन्तःकरणवाले, ८४६ चतुर्व्यूहः—वासुदेव,
सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार व्यूहोंसे युक्त,
८४७ चतुर्युगविधायकः—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और
कलियुग—इन चार युगोंका विधान करनेवाले ॥ २७६ ॥
चतुर्वेदैकविश्वात्मा सर्वोत्कृष्टांशकोटिसूः ।
आश्रमात्मा पुराणर्षिव्यासः शाखासहस्रकृत् ॥ २७७ ॥

८४८ चतुर्वेदैकविश्वात्मा—चारों वेदोंद्वारा
प्रतिपादित एकमात्र सम्पूर्ण विश्वके आत्मा, ८४९
सर्वोत्कृष्टांशकोटिसूः—सबसे श्रेष्ठ कोटि-कोटि
अंशोंको जन्म देनेवाले, ८५० आश्रमात्मा—
आश्रमधर्मरूप, ८५१ पुराणर्षिः—पुराणोंके प्रकाशक
ऋषि, ८५२ व्यासः—वेदोंका विस्तार करनेवाले,
८५३ शाखासहस्रकृत्—सामवेदकी सहस्र
शाखाओंका सम्पादन करनेवाले ॥ २७७ ॥
महाभारतनिर्माता कवीन्द्रो बादरायणः ।
कृष्णद्वैपायनः सर्वपुरुषार्थकबोधकः ॥ २७८ ॥

८२५ यथार्थखण्डताशेषदिव्यास्त्रपार्थ-
मोहहत्—समस्त दिव्यास्त्रोंका भलीभाँति खण्डन
करनेवाले अर्जुनके मोहको हरनेवाले, ८२६
गर्भशापच्छलध्वस्तयादवोर्विभरापहः—स्त्रीरूप
धारण करके गये हुए साम्बके गर्भको मुनियोंद्वारा शाप
दिलानेके बहाने पृथ्वीके भारभूत समस्त यादवोंका संहर
करनेवाले ॥ २७३ ॥

जराव्याधारिगतिदः स्मृतमात्रास्तिलेष्टदः ।

कामदेवो रतिपतिर्मन्त्रः शम्बरान्तकः ॥ २७४ ॥

८२७ जराव्याधारिगतिदः—शत्रुका काम
करनेवाले जरा नामक व्याधको उत्तम गति प्रदान
करनेवाले, ८२८ स्मृतमात्रास्तिलेष्टदः—स्मरण
करनेमात्रसे सम्पूर्ण अभीष्ट पदार्थोंको देनेवाले, ८२९
कामदेवः—कामदेवस्वरूप, ८३० रतिपतिः—
रतिके स्वामी, ८३१ मन्त्रः—विचारशक्तिका नाश
करनेवाले कामदेवरूप, ८३२ शम्बरान्तकः—

८५४ महाभारतनिर्माता—महाभारत ग्रन्थके रचयिता, ८५५ कवीन्द्रः—कवियोंके राजा, ८५६ बादरायणः—बदरी-वनमें उत्पन्न भगवान् वेदव्यासरूप, ८५७ कृष्णद्वैपायनः—द्वीपमें उत्पन्न श्याम वर्णवाले व्यासजी, ८५८ सर्वपुरुषार्थैकबोधकः—समस्त पुरुषार्थोंके एकमात्र बोध करनेवाले ॥ २७८ ॥

बुद्धो ध्यानजिताशेषदेवदेवीजगत्यियः ॥ २७९ ॥

८५९ वेदान्तकर्ता—वेदान्तसूत्रोंके रचयिता, ८६० ब्रह्मैकव्यञ्जकः—एक अद्वितीय ब्रह्मकी अभिव्यक्ति करनेवाले, ८६१ पुरुवंशकृत—पुरुवंशकी परम्परा सुरक्षित रखनेवाले, ८६२ बुद्धः—भगवान्‌के अवतार बुद्धदेव, ८६३ ध्यानजिताशेषदेवदेवीजगत्यियः—ध्यानके द्वारा समस्त देव-देवियोंको जीतकर जगत्‌के प्रियतम बननेवाले ॥ २७९ ॥

निरायुधो जगज्जैत्रः श्रीधनो दुष्टमोहनः ।

दैत्यवेदबहिष्कर्ता वेदार्थश्रुतिगोपकः ॥ २८० ॥

८६४ निरायुधः—अख-शाखोंका त्याग करनेवाले, ८६५ जगज्जैत्रः—सम्पूर्ण जगत्‌को वशमें करनेवाले, ८६६ श्रीधनः—शोभाके धनी, ८६७ दुष्टमोहनः—दुष्टोंको मोहित करनेवाले, ८६८ दैत्यवेदबहिष्कर्ता—दैत्योंको वेदसे बहिष्कृत करनेवाले, ८६९ वेदार्थश्रुतिगोपकः—वेदोंके अर्थ और श्रुतियोंको गुप्त रखनेवाले ॥ २८० ॥

शौद्धोदनिर्दृष्टिष्ठः सुखदः सदस्स्पतिः ।

यथायोग्याखिलकृपः सर्वशून्योऽखिलेष्टदः ॥ २८१ ॥

८७० शौद्धोदनिः—कपिलवस्तुके राजा शौद्धोदनके पुत्र, ८७१ दृष्टिष्ठः—दैवके विधानको प्रत्यक्ष देखनेवाले, ८७२ सुखदः—सबको सुख देनेवाले, ८७३ सदस्स्पतिः—सत्यरुषोंकी सभाके अध्यक्ष, ८७४ यथायोग्याखिलकृपः—यथायोग्य सम्पूर्ण जीवोंपर कृपा रखनेवाले, ८७५ सर्वशून्यः—

सम्पूर्ण पदार्थोंको शून्यरूप ही माननेवाले, ८७६ अखिलेष्टदः—सबको सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुएँ देनेवाले ॥ २८१ ॥

चतुष्कोटिपृथक्त्वप्रज्ञापारमितेश्वरः ।

पाखण्डवेदमार्गेशः पाखण्डश्रुतिगोपकः ॥ २८२ ॥

८७७ चतुष्कोटिपृथक्त्व—स्थावर आदि चार श्रेणियोंमें विभक्त हुई सृष्टिसे पृथक्, ८७८ तत्त्व-प्रज्ञापारमितेश्वरः—तत्त्वभूत प्रज्ञापारमिता^१ (बुद्धिकी पराकाष्ठा) के ईश्वर, ८७९ पाखण्डवेदमार्गेशः—पाखण्ड-वेदमार्गके स्वामी, ८८० पाखण्ड-श्रुतिगोपकः—पाखण्डके द्वारा प्रतिपादित वेदकी श्रुतियोंके रक्षक ॥ २८२ ॥

कल्की विष्णुयशःपुत्रः कलिकालविलोपकः ।

समस्तम्लेच्छदुष्टग्नः सर्वशिष्टद्विजातिकृत् ॥ २८३ ॥

८८१ कल्की—कलियुगके अन्तमें होनेवाला भगवान्‌का एक अवतार, ८८२ विष्णुयशःपुत्रः—श्रीविष्णुयशाके पुत्र भगवान् कलिक, ८८३ कलिकाल-विलोपकः—कलियुगका लोप करके सत्ययुगका प्रवेश करनेवाले, ८८४ समस्तम्लेच्छदुष्टग्नः—सम्पूर्ण म्लेच्छों और दुष्टोंका वध करनेवाले, ८८५ सर्वशिष्टद्विजातिकृत्—सबको श्रेष्ठ द्विज बनानेवाले अथवा समस्त साधु द्विजातियोंके रक्षक ॥ २८३ ॥

सत्यप्रवर्तको देवद्विजदीर्घक्षुधापहः ।

अश्ववारादिरेकान्तपृथ्वीदुर्गतिनाशनः ॥ २८४ ॥

८८६ सत्यप्रवर्तकः—सत्ययुगकी प्रवृत्ति करनेवाले, ८८७ देवद्विजदीर्घक्षुधापहः—[यज्ञ और ब्राह्मण-भोजन आदिका प्रचार करके] देवताओं और ब्राह्मणोंकी बढ़ी हुई भूखको शान्त करनेवाले, ८८८ अश्ववारादिः—घुड़सवारोंमें श्रेष्ठ, ८८९ एकान्तपृथ्वीदुर्गतिनाशनः—पृथ्वीकी दुर्गतिका पूर्णतया नाश करनेवाले ॥ २८४ ॥

सद्यःक्षमानन्तलक्ष्मीकृत्रष्टनिःशेषधर्मवित् ।

अनन्तस्वर्णयागैकहेमपूर्णाखिलद्विजः ॥ २८५ ॥

८९० सद्यःक्षमानन्तलक्ष्मीकृत्—पृथ्वीको शीघ्र ही अनन्त लक्ष्मीसे परिपूर्ण करनेवाले, ८९१ नष्टनिःशेषधर्मवित्—नष्ट हुए सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता, ८९२ अनन्तस्वर्णयागैकहेमपूर्णस्तिलद्विजः—अनन्त सुवर्णकी दक्षिणाओंसे युक्त यज्ञोंका अनुष्ठान कराकर सम्पूर्ण ब्राह्मणोंको स्वर्णसे सम्पन्न करनेवाले ॥ २८५ ॥

असाध्यैकजगच्छास्ता विश्वबन्धो जयध्वजः ।
आत्मतत्त्वाधिपः कर्तृश्रेष्ठो विधिरुपापतिः ॥ २८६ ॥

८९३ असाध्यैकजगच्छास्ता—किसीके वशमें न होनेवाले सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र शासक, ८९४ विश्वबन्धः—समस्त विश्वको अपनी मायासे बाँध रखनेवाले, ८९५ जयध्वजः—सर्वत्र अपनी विजयपताका फहरानेवाले, ८९६ आत्मतत्त्वाधिपः—आत्मतत्त्वके स्वामी, ८९७ कर्तृश्रेष्ठः—कर्ताओंमें श्रेष्ठ, ८९८ विधिः—शास्त्रीय विधिरूप, ८९९ उमापतिः—उमाके स्वामी ॥ २८६ ॥

भर्तृश्रेष्ठः प्रजेशाग्र्यो मरीचिर्जनकाग्रणीः ।
कश्यपो देवराङ्गिनः प्रह्लादो दैत्यराद् शशी ॥ २८७ ॥

९०० भर्तृश्रेष्ठः—भरण-पोषण करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ, ९०१ प्रजेशाग्र्यः—प्रजापतियोंमें अग्रगण्य, ९०२ मरीचिः—मरीचि नामक प्रजापतिरूप, ९०३ जनकाग्रणीः—जन्म देनेवाले प्रजापतियोंमें श्रेष्ठ, ९०४ कश्यपः—सर्वद्रष्टा कश्यप मुनिस्वरूप, ९०५ देवराद्—देवताओंके राजा, ९०६ इन्द्रः—परम ऐश्वर्यशाली इन्द्रस्वरूप, ९०७ प्रह्लादः—भगवद्भक्तिके प्रभावसे अत्यन्त आह्लादपूर्ण रानी कृयाधूके पुत्ररूप, ९०८ दैत्यराद्—दैत्योंके स्वामी प्रह्लादरूप, ९०९ शशी—खरगोशका चिह्न धारण करनेवाले चन्द्रमारूप ॥ २८७ ॥

नक्षत्रेशो रविस्तेजःश्रेष्ठः शुक्रः कवीश्वरः ।
महर्षिराङ्गुर्विष्णुरादित्येशो बलिस्वराद् ॥ २८८ ॥

९१० नक्षत्रेशः—नक्षत्रोंके स्वामी चन्द्रमारूप, ९११ रविः—सूर्यस्वरूप, ९१२ तेजःश्रेष्ठः—तेजस्तिलयोंमें सबसे श्रेष्ठ, ९१३ शुक्रः—भृगुके पुत्र शुक्राचार्यस्वरूप, ९१४ कवीश्वरः—कवियोंके स्वामी,

९१५ महर्षिराद्—महर्षियोंमें अधिक तेजस्वी, ९१६ भृगुः—ब्रह्माजीके पुत्र प्रजापति भृगुस्वरूप, ९१७ विष्णुः—बारह आदित्योंमें एक, ९१८ आदित्येशः—बारह आदित्योंके स्वामी, ९१९ बलिस्वराद्—बलिको इन्द्र बनानेवाले ॥ २८८ ॥
वायुवर्णहिः शुचिश्रेष्ठः शङ्करो रुद्रराङ्गुरुः ।
विद्वत्तमञ्जित्ररथो गन्धर्वाग्र्योऽक्षरोत्तमः ॥ २८९ ॥

९२० वायुः—वायुतत्त्वके अधिष्ठाता देवता, ९२१ वह्निः—अग्नितत्त्वके अधिष्ठाता देवता, ९२२ शुचिश्रेष्ठः—पवित्रोंमें श्रेष्ठ, ९२३ शङ्करः—सबका कल्याण करनेवाले शिवरूप, ९२४ रुद्रराद्—ग्यारह रुद्रोंके स्वामी, ९२५ गुरुः—गुरु नामसे प्रसिद्ध अङ्गिरापुत्र बृहस्पतिरूप, ९२६ विद्वत्तमः—सर्वश्रेष्ठ विद्वान्, ९२७ चित्ररथः—विचित्र रथवाले गन्धर्वोंके राजा, ९२८ गन्धर्वाग्र्यः—गन्धर्वोंमें अग्रगण्य चित्ररथरूप, ९२९ अक्षरोत्तमः—अक्षरोंमें उत्तम ‘ॐ’कारस्वरूप ॥ २८९ ॥

वर्णादिरग्यस्त्री गौरी शक्त्यग्र्या श्रीश्व नारदः ।
देवर्षिरादपाण्डवाग्र्योऽर्जुनो वादः प्रवादराद् ॥ २९० ॥

९३० वर्णादिः—समस्त अक्षरोंके आदिभूत अकारस्वरूप, ९३१ अग्यस्त्री—खियोंमें अग्रगण्य सती पार्वतीरूप, ९३२ गौरी—गौरवर्णा उमारूप, ९३३ शक्त्यग्र्या—भगवान्‌की अन्तरङ्ग शक्तियोंमें सर्वश्रेष्ठ भगवती लक्ष्मीरूप, ९३४ श्रीः—भगवान् विष्णुका आश्रय लेनेवाली लक्ष्मी, ९३५ नारदः—सबको ज्ञान देनेवाले देवर्षि नारदरूप, ९३६ देवर्षिराद्—देवर्षियोंके राजा, ९३७ पाण्डवाग्र्यः—पाण्डवोंमें अपने गुणोंके कारण श्रेष्ठ अर्जुनरूप, ९३८ अर्जुनः—अर्जुन नामसे प्रसिद्ध कुन्तीके तृतीय पुत्र, ९३९ वादः—तत्त्वनिर्णयके उद्देश्यसे शुद्ध नीयतके साथ किये जानेवाले शास्त्रार्थरूप, ९४० प्रवादराद्—उत्तम वाद करनेवालोंमें श्रेष्ठ ॥ २९० ॥

पावनः पावनेशानो वरुणो यादसां पतिः ।
गङ्गा तीर्थोत्तमो द्यूतं छलकाग्र्यं वरौषधम् ॥ २९१ ॥
९४१ पावनः—सबको पवित्र करनेवाले, ९४२

पावनेशानः—पावन वस्तुओंके ईश्वर, १४३ वरुणः—जलके अधिष्ठाता देवता वरुणरूप, १४४ यादसां पतिः—जल-जन्तुओंके स्वामी, १४५ गङ्गा—भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई परम पवित्र नदी, जो भूतलमें भागीरथीके नामसे विख्यात एवं भगवद्विभूति है, १४६ तीर्थोत्तमः—तीर्थोंमें उत्तम गङ्गारूप, १४७ द्यूतम्—छल करनेवालोंमें द्यूतरूप भगवान्की विभूति, १४८ छलकाग्र्यम्—छलकी पराकाष्ठा जूआरूप, १४९ वरौषधम्—जीवनकी रक्षा करनेवाली श्रेष्ठ ओषधि—अन्नरूप ॥ २९१ ॥

अन्नं सुदर्शनोऽस्त्राग्र्यं वज्रं प्रहरणोत्तमम्।
उच्चैःश्रवा वाजिराज ऐरावत इभेश्वरः ॥ २९२ ॥

१५० अन्नम्—प्राणियोंकी क्षुधा दूर करनेवाला धरतीसे उत्पन्न खाद्य पदार्थ, १५१ सुदर्शनः—देखनेमें सुन्दर तेजस्वी अस्त्र—सुदर्शनचक्ररूप, १५२ अस्त्राग्र्यम्—समस्त अस्त्रोंमें श्रेष्ठ सुदर्शन, १५३ वज्रम्—इन्द्रके आंयुधस्वरूप, १५४ प्रहरणोत्तमम्—प्रहर करनेयोग्य आयुधोंमें उत्तम वज्ररूप, १५५ उच्चैःश्रवाः—ऊँचे कानोंवाला दिव्य अश्व, जो समुद्रसे उत्पन्न हुआ था, १५६ वाजिराजः—घोड़ोंके राजा उच्चैःश्रवारूप, १५७ ऐरावतः—समुद्रसे उत्पन्न इन्द्रका वाहन ऐरावत नामक हाथी, १५८ इभेश्वरः—हाथियोंके राजा ऐरावतस्वरूप ॥ २९२ ॥

अरुन्धत्येकपलीशो हाश्वत्थोऽशेषवृक्षराद्।

अध्यात्मविद्या विद्याग्र्यः प्रणवश्छन्दसां वरः ॥ २९३ ॥

१५९ अरुन्धती—पतिव्रताओंमें श्रेष्ठ अरुन्धती—स्वरूप, १६० एकपलीशः—पतिव्रता अरुन्धतीके स्वामी महर्षि वसिष्ठरूप, १६१ अश्वत्थः—पीपलके वृक्षरूप, १६२ अशेषवृक्षराद्—सम्पूर्ण वृक्षोंके राजा अश्वत्थरूप, १६३ अध्यात्मविद्या—आत्मतत्त्वका बोध करनेवाली ब्रह्मविद्यास्वरूप, १६४ विद्याग्र्यः—विद्याओंमें अग्रगण्य प्रणवरूप, १६५ प्रणवः—ओंकाररूप, १६६ छन्दसां वरः—वेदोंका आदिभूत ओंकार, अथवा मन्त्रोंमें श्रेष्ठ प्रणव ॥ २९३ ॥

मेरुर्गिरिपतिर्मार्गो मासाग्र्यः कालसत्तमः।
दिनाद्यात्मा पूर्वसिद्धः कपिलः साम वेदराद् ॥ २९४ ॥

१६७ मेरुः—मेरु नामक दिव्य पर्वतरूप, १६८ गिरिपतिः—पर्वतोंके स्वामी, १६९ मार्गः—मार्गशीर्ष (अगहन) का महीना, १७० मासाग्र्यः—मासोंमें अग्रगण्य मार्गशीर्षस्वरूप, १७१ कालसत्तमः—समयोंमें सर्वश्रेष्ठ-ब्रह्मवेला, १७२ दिनाद्यात्मा—दिन और रात्रि दोनोंका सम्मिलित रूप—प्रभात या ब्रह्मवेला, १७३ पूर्वसिद्धः—आदि सिद्ध महर्षि कपिलरूप, १७४ कपिलः—कपिल वर्णवाले एक मुनि, जो भगवान्के अवतार हैं, १७५ साम—सहस्र शाखाओंसे विशिष्ट सामवेद, १७६ वेदराद्—वेदोंके राजा सामवेदरूप ॥ २९४ ॥

तार्क्ष्यः खगेन्द्र ऋत्वग्र्यो वसन्तः कल्पपादपः ।

दातृश्रेष्ठः कामधेनुरार्तिंश्चाग्र्यः सुहत्तमः ॥ २९५ ॥

१७७ तार्क्ष्यः—तार्क्ष (कश्यप) ऋषिके पुत्र गरुडरूप, १७८ खगेन्द्रः—पक्षियोंके राजा गरुड़, १७९ ऋत्वग्र्यः—ऋतुओंमें श्रेष्ठ वसन्तरूप, १८० वसन्तः—चैत्र और वैशाख मास, १८१ कल्पपादपः—कल्पवृक्षस्वरूप, १८२ दातृश्रेष्ठः—मनोवाञ्छित वस्तु देनेवालोंमें श्रेष्ठ कल्पवृक्ष, १८३ कामधेनुः—अभीष्ट पूर्ण करनेवाली गोरूप, १८४ आर्तिंश्चाग्र्यः—पीड़ा दूर करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ, १८५ सुहत्तमः—परम हितैषी ॥ २९५ ॥

चिन्तामणिगुरुश्रेष्ठो माता हिततमः पिता ।

सिंहो मृगेन्द्रो नागेन्द्रो वासुकिर्नवरो नृपः ॥ २९६ ॥

१८६ चिन्तामणिः—मनमें चिन्तन की हुई इच्छाको पूर्ण करनेवाली भगवत्स्वरूप दिव्य मणि, १८७ गुरुश्रेष्ठः—गुरुओंमें श्रेष्ठ मातारूप, १८८ माता—जन्म देनेवाली जननी, १८९ हिततमः—सबसे बड़े हितकारी, १९० पिता—जन्मदाता, १९१ सिंहः—मृगोंके राजा सिंहस्वरूप, १९२ मृगेन्द्रः—समस्त वनके जन्तुओंका स्वामी सिंहस्वरूप, १९३ नागेन्द्रः—नागोंके राजा, १९४ वासुकिः—नागराज वासुकिरूप, १९५ नृवरः—मनुष्योंमें श्रेष्ठ, १९६ नृपः—मनुष्योंका पालन करनेवाले राजारूप ॥ २९६ ॥

वर्णेशो ब्राह्मणश्चेतः करणाग्र्यं नमो नमः ।

इत्येतद्वासुदेवस्य विष्णोर्नामिसहस्रकम् ॥ २९७ ॥*

१९७ वर्णेशः—समस्त वर्णोंके स्वामी ब्राह्मण-रूप, १९८ ब्राह्मणः—ब्राह्मण माता-पितासे उत्पन्न एवं ब्रह्मज्ञानी, १९९ चेतः— परमात्मचिन्तनकी योग्यतावाले चित्तरूप, २००० करणाग्र्यम्—इन्द्रियोंका प्रेरक होनेके कारण उनमें सबसे श्रेष्ठ चित्त—इस प्रकार ये सबके हृदयमें वास करनेवाले भगवान् विष्णुके सहस्र नाम हैं। इन सब नामोंको मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥ २९७ ॥

यह विष्णुसहस्रनामस्तोत्र समस्त अपराधोंको शान्त करनेवाला, परम उत्तम तथा भगवान्में भक्तिको बढ़ानेवाला है। इसका कभी नाश नहीं होता। ब्रह्मलोक आदिकां तो यह सर्वस्व ही है। विष्णुलोकतक पहुँचनेके लिये यह अद्वितीय सीढ़ी है। इसके सेवनसे सब दुःखोंका नाश हो जाता है। यह सब सुखोंको देनेवाला तथा शीघ्र ही परम मोक्ष प्रदान करनेवाला है। काम, क्रोध आदि जितने भी अन्तःकरणके मल हैं, उन सबका इससे शोधन होता है। यह परम शान्तिदायक एवं महापातकी मनुष्योंको भी पवित्र बनानेवाला है। समस्त प्राणियोंको यह शीघ्र ही सब प्रकारके अभीष्ट फल दान करता है। समस्त विद्वांकी शान्ति और सम्पूर्ण अरिष्टोंका विनाश करनेवाला है। इसके सेवनसे भयङ्कर दुःख शान्त हो जाते हैं। दुःसह दरिद्रताका नाश हो जाता है तथा तीनों प्रकारके ऋण दूर हो जाते हैं। यह परम गोपनीय तथा धन-धान्य और यशकी वृद्धि करनेवाला है। सब प्रकारके ऐश्वर्यों, समस्त सिद्धियों और सम्पूर्ण धर्मोंको देनेवाला है। इससे कोटि-कोटि तीर्थ, यज्ञ, तप, दान और व्रतोंका फल प्राप्त होता है। यह संसारकी जड़ता दूर करनेवाला और सब प्रकारकी विद्याओंमें प्रवृत्ति करनेवाला है। जो राज्यसे भ्रष्ट हो गये हैं, उन्हें यह राज्य दिलगता और रोगियोंके सब रोगोंको हर लेता है। इतना ही नहीं, यह स्तोत्र वन्ध्या स्त्रियोंको पुत्र और

रोगसे क्षीण हुए पुरुषोंको तत्काल जीवन देनेवाला है। यह परम पवित्र, मङ्गलमय तथा आयु बढ़ानेवाला है। एक बार भी इसका श्रवण, पठन अथवा जप करनेसे अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेद, कोटि-कोटि मन्त्र, पुराण, शास्त्र तथा स्मृतियोंका श्रवण और पाठ हो जाता है। प्रिये ! जो इसके एक श्लोक, एक चरण अथवा एक अक्षरका भी नित्य जप या पाठ करता है, उसके सम्पूर्ण मनोरथ तत्काल सिद्ध हो जाते हैं। सब कार्योंकी सिद्धिसे शीघ्र ही विश्वास पैदा करनेवाला इसके समान दूसरा कोई साधन नहीं है।

कल्याणी ! तुम्हें इस स्तोत्रको सदा गुप्त रखना चाहिये और अपने अभीष्ट अर्थकी सिद्धिके लिये केवल इसीका पाठ करना चाहिये। जिसका हृदय संशयसे दूषित हो, जो भगवान् विष्णुका भक्त न हो, जिसमें श्रद्धा और भक्तिका अभाव हो तथा जो भगवान् विष्णुको साधारण देवता समझता हो, ऐसे पुरुषको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो अपना पुत्र, शिष्य अथवा सुहृद हो, उसे उसका हित करनेकी इच्छासे इस श्रीविष्णु-सहस्रनामका उपदेश देना चाहिये। अल्पबुद्धि पुरुष इसे नहीं ग्रहण करेंगे। देवर्षि नारद मेरे प्रसादसे कलियुगमें तत्काल, फल देनेवाले इस स्तोत्रको ग्रहण करके कल्पग्राम (कलापग्राम) में ले जायेंगे, जिससे भाग्यहीन लोगोंका दुःख दूर हो जायगा। भगवान् विष्णुसे बढ़कर कोई धाम नहीं है, श्रीविष्णुसे बढ़कर कोई तपस्या नहीं है, श्रीविष्णुसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है और श्रीविष्णुसे भिन्न कोई मन्त्र नहीं है। भगवान् श्रीविष्णुसे भिन्न कोई सत्य नहीं है, श्रीविष्णुसे बढ़कर जप नहीं है, श्रीविष्णुसे उत्तम ध्यान नहीं है तथा श्रीविष्णुसे श्रेष्ठ कोई गति नहीं है। जिस पुरुषकी भगवान् जनार्दनके चरणोंमें भक्ति है, उसे अनेक मन्त्रोंके जप, बहुत विस्तारवाले शास्त्रोंके स्वाध्याय तथा सहस्रों वाजपेय यज्ञोंके अनुष्ठान करनेकी क्या आवश्यकता है ? मैं सत्य-सत्य कहता हूँ—भगवान् विष्णु सर्वतीर्थमय हैं, भगवान् विष्णु सर्वशास्त्रमय हैं

तथा भगवान् विष्णु सर्वयज्ञमय हैं।* यह सब मैंने सम्पूर्ण विश्वका सर्वस्वभूत सार-तत्त्व बतलाया है।

पार्वती बोलीं—जगत्पते ! आज मैं धन्य हो गयी । आपने मुझपर बड़ा अनुग्रह किया । मैं कृतार्थ हो गयी, क्योंकि आपके मुखसे यह परम दुर्लभ एवं गोपनीय स्तोत्र मुझे सुननेको मिला है । देवेश ! मुझे तो संसारकी अवस्था देखकर आश्र्वय होता है । हाय ! कितने महान् कष्टकी बात है कि सम्पूर्ण सुखोंके दाता श्रीहरिके विद्यमान रहते हुए भी मूर्ख मनुष्य संसारमें क्लेश उठा रहे हैं।† भला, लक्ष्मीके प्रियतम भगवान् मधुसूदनसे बढ़कर दूसरा कौन देवता है । आप-जैसे योगीश्वर भी जिनके तत्त्वका निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं, उन श्रीपुरुषोत्तमसे बड़ा दूसरा कौन-सा पद है । उनको जाने बिना ही अपनेको ज्ञानी माननेवाले मूढ़ मनुष्य दूसरे किस देवताकी आराधना करते हैं । अहो ! सर्वेश्वर भगवान् विष्णु सम्पूर्ण श्रेष्ठ देवताओंसे भी उत्तम है । स्वामिन् ! जो आपके भी आदिगुरु हैं, उन्हें मूढ़ मनुष्य सामान्य दृष्टिसे देखते हैं; किन्तु प्रभो ! सर्वेश्वर ! यदि मैं अर्थ-कामादिमें आसक्त होने या केवल आपमें ही मन लगाये रहनेके कारण अथवा प्रमादवश ही समूचे सहस्रनामस्तोत्रका पाठ न कर सकूँ, तो उस अवस्थामें जिस किसी भी एक नामसे मुझे सम्पूर्ण सहस्रनामका फल प्राप्त हो जाय, उसे बतानेकी कृपा कीजिये ।‡

महादेवजी बोले—सुमुखि ! मैं तो 'राम ! राम ! राम !' इस प्रकार जप करते हुए परम मनोहर

श्रीरामनाममें ही निरन्तर रमण किया करता हूँ । रामनाम सम्पूर्ण सहस्रनामके समान हैं।§ पार्वती ! यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र भी प्रतिदिन विशेषरूपसे इस श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ करें तो वे धन-धान्यसे युक्त होकर भगवान् विष्णुके परमपदको प्राप्त होते हैं।\$ देवि ! जो लोग पूर्वोक्त अङ्गन्याससे युक्त श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ करते हैं, वे श्रेष्ठ पुरुष अविनाशी पदको प्राप्त होते हैं । सुमुखि ! बार-बार बहुत कहनेसे क्या लाभ; थोड़में इतना ही जान लो कि भगवान् विष्णुका सहस्रनाम परम मोक्ष प्रदान करनेवाला है । इसके पाठमें उतावली नहीं करनी चाहिये । यदि उतावली की जाती है, तो आयु और धनका नाश होता है । इस पृथ्वीपर जम्बूद्वीपके अंदर जितने भी तीर्थ हैं, वे सब सदा वहीं निवास करते हैं, जहाँ श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ होता है । जहाँ श्रीविष्णुसहस्रनामकी स्थिति होती है, वहीं गङ्गा, यमुना, कृष्णवेणी, गोदावरी, सरस्वती और समस्त तीर्थ निवास करते हैं । यह परम पवित्र स्तोत्र भक्तोंको सदा प्रिय है । भक्तिभावसे भावित चित्तके द्वारा सदा ही इस स्तोत्रका चिन्तन करना चाहिये । जो मनीषी पुरुष परम उत्तम श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रका पाठ करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त होकर श्रीहरिके समीप जाते हैं । जो लोग सूर्योदयके समय इसका पाठ और जप करते हैं, उनके बल, आयु और लक्ष्मीकी प्रतिदिन वृद्धि होती है । एक-एक नामका उच्चारण करके श्रीहरिको तुलसीदल अर्पण करनेसे जो पूजा सम्पन्न होती

* नास्ति विष्णोः परं धाम नास्ति विष्णोः परं तपः । नास्ति विष्णोः परो धर्मो नास्ति मन्त्रो ह्यवैष्णवः ॥

नास्ति विष्णोः परं सत्यं नास्ति विष्णोः परो जपः । नास्ति विष्णोः परं ध्यानं नास्ति विष्णोः परा गतिः ॥

कि तस्य बहुभिर्मन्त्रैः शास्त्रैः कि बहुविस्तरैः । वाजपेयसहस्रैर्वा भक्तिर्यस्य जनादने ॥

सर्वतीर्थमयो विष्णुः सर्वशास्त्रमयः प्रभुः । सर्वक्रतुमयो विष्णुः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ (७२ । ३१३—३१६)

† अहो बत महत्कष्टं समस्तसुखदे हरौ । विद्यमानेऽपि देवेश मूढाः क्लिश्यन्ति संसृतौ ॥ (७२ । ३१८)

‡ कामाद्यासक्तचित्तत्वात्किन्तु सर्वेश्वर प्रभो । त्वन्मयत्वात्प्रमादद्वा शक्तेभिं पठितुं न चेत् ॥

विष्णोः सहस्रनामैतत्प्रत्यहं वृषभध्वज । नाम्नैकेन तु येन स्यात्तफलं ब्रूहि मे प्रभो ॥ (७२ । ३३३-३३४)

§ राम रामेति रामेति स्मे रामे मनोरमे । सहस्रनाम ततुल्यं रामनाम वरानने ॥ (७२ । ३३५)

\$ ब्राह्मणा वा क्षत्रिया वा वैश्या वा गिरिकन्यके । शूद्रा वाथ विशेषेण पठन्त्यनुदिनं यदि ॥

धनधान्यसमायुक्ता यात्ति विष्णोः परं पदम् । (७३ । १—३)

है, उसे कोटि यज्ञोंकी अपेक्षा श्री अधिक फल देनेवाली समझना चाहिये। पार्वती ! जो द्विज रास्ता चलते हुए भी श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ करते हैं, उन्हें मार्गजनित दोष नहीं प्राप्त होते। जो लोग भगवान् केशवके इस माहात्म्यका श्रवण करते हैं, वे मनुष्योंमें श्रेष्ठ, पवित्र एवं पुण्यस्वरूप हैं।



गृहस्थ-आश्रमकी प्रशंसा तथा दान-धर्मकी महिमा

श्रीमहादेवजी कहते हैं—देवि ! सुनो, अब मैं धर्मके उत्तम माहात्म्यका वर्णन करूँगा, जिसका श्रवण करनेसे इस पृथ्वीपर फिर कभी जन्म नहीं होता। धर्मसे अर्थ, काम और मोक्ष—तीनोंकी प्राप्ति होती है; अतः जो धर्मके लिये चेष्टा करता है, वही विशेषरूपसे विद्वान् माना गया है।* जो कभी कुत्सित कर्ममें प्रवृत्त नहीं होता, वह घरपर भी पाँचों इन्द्रियोंका संयमरूप तप कर सकता है। जिसकी आसक्ति दूर हो गयी है, उसके लिये घर भी तपोबनके ही समान है; अतः गृहस्थाश्रमको स्वधर्म बताया गया है।† गिरिराजकिशोरी ! जिन्होंने अपनी इन्द्रियोंको वशमें नहीं किया है, उनके लिये इस गृहस्थ आश्रमको पार करना कठिन है; वे इस शुभ एवं श्रेष्ठतम आश्रमका विनाश कर डालते हैं। ब्रह्मा आदि देवताओंने मनीषी पुरुषोंके लिये गृहस्थ-धर्मको बहुत उत्तम बताया है। साधु पुरुष वनमें तपस्या करके जब भूखसे पीड़ित होता है, तब सदा अन्नदाता गृहस्थके ही घर आता है। वह गृहस्थ जब भक्तिपूर्वक उस भूखे अतिथिको अन्न देता है तो उसकी तपस्यामें हिस्सा बँटा लेता है; अतः मनुष्य समस्त आश्रमोंमें श्रेष्ठ इस गृहस्थाश्रमका सदा पालन करता है और इसीमें मानवोचित भोगोंका उपभोग करके अन्तमें स्वर्गको जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। देवि ! सदा गृहस्थ-धर्मका पालन करनेवाले मनुष्योंके पास पाप कैसे आ सकता है।



गृहस्थाश्रम परम पवित्र है। घर सदा तीर्थके समान पावन है। इस पवित्र गृहस्थाश्रममें रहकर विशेषरूपसे दान देना चाहिये। यहाँ देवताओंका पूजन होता है, अतिथियोंको भोजन दिया जाता है और [थके-माँदि] राहगीरोंको ठहरनेका स्थान मिलता है; अतः गृहस्थाश्रम परम धन्य है।‡ ऐसे गृहस्थाश्रममें रहकर जो लोग ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं, उन्हें आयु, धन और संतानकी कभी कमी नहीं होती।

शुभ समय आनेपर चन्द्रदेवकी पूजा करके नित्य-नैमित्तिक कर्मोंका अनुष्ठान करनेके पश्चात् अपनी शक्तिके अनुसार दान देना चाहिये। दानसे मनुष्य निस्सन्देह अपने पापोंका नाश कर डालता है। दानके प्रभावसे इस लोकमें अभीष्ट भोगोंका उपभोग करके मनुष्य सनातन श्रीविष्णुको प्राप्त होता है। जो अभक्ष्य-भक्षणमें प्रवृत्त रहनेवाला, गर्भस्थ बालककी हत्या करनेवाला, गुरु-पत्नीके साथ सम्भोग करनेवाला तथा झूठ बोलनेवाला है, ये सभी नीच योनियोंमें जन्म लेते हैं। जो यज्ञ करनेके योग्य नहीं है ऐसे मनुष्यसे जो यज्ञ कराता, लोकनिन्दित पुरुषसे याचना करता, सदा कोपसे युक्त रहता, साधुओंको पीड़ा देता, विश्वासघात करता, अपवित्र रहता और धर्मकी निन्दा करता है—इन पापोंसे युक्त होनेपर मनुष्यकी आयु शीघ्र नष्ट हो जाती है, ऐसा जानकर [पापका सर्वथा त्याग करके] विशेषरूपसे दान करना उचित है।

* धर्मादर्थे च कामे च मोक्षं च त्रितयं लभेत्। तस्माद्धर्मे समीहेत विद्वान् स बहुधा स्मृतः ॥ (७५।२)

† गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपस्त्वकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते। निवृत्तरागस्य तपोबनं गृहं गृहाश्रमोऽतो गदितः स्वधर्मः ॥ (७५।८)

‡ गृहाश्रमः पुण्यतमः सर्वदा तीर्थवद्वृहम्। अस्मिन् गृहाश्रमे पुण्ये दानं देयं विशेषतः ॥

देवानां पूजनं यत्र अतिथीनां तु भोजनम्। पथिकानां च शरणमतो धन्यतमो मतः ॥ (७५।१२-१३)

गण्डकी नदीका माहात्म्य तथा अभ्युदय एवं और्ध्वदैहिक नामक स्तोत्रका वर्णन

श्रीमहादेवजी कहते हैं—देवि ! अब मैं गण्डकी नदीके माहात्म्यका विधिपूर्वक वर्णन करूँगा । पार्वती ! गङ्गाका जैसा माहात्म्य है, वैसा ही गण्डकी नदीका भी बताया गया है । जहाँसे नाना प्रकारकी शालग्राम-शिला प्रकट होती है, उस गण्डकी नदीकी महिमाका बड़े-बड़े मुनियोंने वर्णन किया है । अण्डज, उद्धिज्ज, स्वेदज और जरायुज—सभी प्राणी उसके दर्शनमात्रसे पवित्र हो जाते हैं । महानदी गण्डकी उत्तरमें प्रकट हुई है । गिरिजे ! वह स्मरण करनेपर निश्चय ही सब पापोंका नाश कर देती है । वहाँ कल्याण प्रदान करनेवाले भगवान् नारायण सदा विद्यमान रहते हैं, ऋषियोंका भी वहाँ निवास है तथा सम्पूर्ण देवता, रुद्र, नाग और यक्ष विशेषरूपसे वहाँ रहा करते हैं । उस स्थलपर भगवान्की अनेक रूपवाली और सुखदायिनी चौबीस अवतारोंकी मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं । एक मत्स्यरूप है, दूसरी कच्छपरूप; इसी प्रकार वाराह, नृसिंह और वामनकी भी कल्याणदायिनी मूर्तियाँ हैं । श्रीराम, परशुराम तथा श्रीकृष्णकी भी मोक्षदायिनी मूर्ति देखी जाती है । श्रीविष्णुनामसे प्रसिद्ध उस स्थलपर उपर्युक्त मूर्तियोंके सिवा बुद्धकी मूर्ति भी बतायी गयी है । कल्कि और महर्षि कपिलकी भी पुण्यमयी मूर्ति उपलब्ध होती है, इनके सिवा और भी भाँति-भाँतिके आकार-वाली बहुत-सी मूर्तियाँ देखी जाती हैं । उन सबके अनेक रूप हैं और उनकी संख्या भी बहुत है । वह गण्डकी नामकी गङ्गा परम पुण्यमयी तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली है । उस भूमिपर आज भी मेरे साथ भगवान् हृषीकेश नियमपूर्वक निवास करते हैं, उसके जलका स्पर्श करनेमात्रसे मनुष्य भ्रूणहत्या, बालहत्या और गोहत्या आदि समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ।

गण्डकी नदीके जलका दर्शन करनेसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य जातिके मनुष्य—सभी निश्चय ही मुक्त हो जाते हैं; विशेषतः पापियोंके लिये तो यह त्रिवेणीके समान पुण्यमयी है । जहाँ ब्रह्महत्यारेकी भी मुक्ति हो जाती है, वहाँ औरोंके लिये क्या कहना है ?

पार्वती ! मैं सदा हर समय वहाँ जाता रहता हूँ; वह तीर्थोंमें तीर्थराज है—यह बात ब्रह्माजीने कही थी । मुनियोंने वहाँ स्नान और दानका विधान किया है । भगवान् विष्णुद्वारा पूर्वकालमें निर्मित हुआ वह क्षेत्र महान्-से-महान् है । वह वैष्णव पुरुषोंको उत्तम गति प्रदान करनेवाला और परम पावन माना गया है । देवि ! इस संसारमें मनुष्यका जन्म सदा दुर्लभ है; उसमें भी गण्डकी नदीका तीर्थ और वहाँ भी श्रीविष्णुक्षेत्र अत्यन्त दुर्लभ है । अतः श्रेष्ठ द्विजोंको आषाढ़ मासमें वहाँकी यात्रा करनी चाहिये । वरानने ! मैं बारंबार कहता हूँ कि गण्डकीके समान कोई तीर्थ, द्वादशीके तुल्य कोई व्रत और श्रीविष्णुसे भिन्न कोई देवता नहीं है । जो नरश्रेष्ठ गण्डकी नदीका माहात्म्य श्रवण करते हैं, वे इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें श्रीविष्णुधामको जाते हैं ।

महादेव उवाच—

शृणु सुन्दरि वक्ष्यामि स्तोत्रं चाभ्युदयं ततः ।
यच्छुत्वा मुच्यते पापी ब्रह्महा नात्र संशयः ॥ १ ॥
धाता वै नारदं प्राह तदहं तु ब्रवीमि ते ।
तमुवाच ततो देवः स्वयम्भूरमित्यृतिः ॥ २ ॥
प्रगृह्य रुचिरं बाहुं स्मारये चौर्ध्वदैहिकम् ।

महादेवजी कहते हैं—सुन्दरी ! सुनो, अब मैं अभ्युदयकारी स्तोत्रका वर्णन करूँगा, जिसे सुनकर ब्रह्महत्यारा भी निस्सन्देह मुक्त हो जाता है । ब्रह्माजीने देवर्षि नारदसे इस स्तोत्रका वर्णन किया था, वही मैं तुम्हें बताता हूँ । [पूर्वकालमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी जब रावणका वध कर चुके, उस समय समस्त देवता उनकी सुति करनेके लिये आये । उसी अवसरपर] अमित-तेजस्वी भगवान् ब्रह्माने श्रीरघुनाथजीकी सुन्दर बाँह हाथमें लेकर जो उनकी सुति की थी, वह 'और्ध्वदैहिक स्तोत्र' के नामसे प्रसिद्ध है । आज मैं उसीको स्मरण करके तुमसे कहता हूँ ।

भवान्नारायणः श्रीमान् देवशक्तायुधो हरिः ॥ ३ ॥
शार्ङ्गधारी हृषीकेशः पुराणपुरुषोऽत्मः ।
अजितः खड़भिजिष्णुः कृष्णश्रैव सनातनः ॥ ४ ॥

एकशूङ्गे वराहस्त्वं भूतभव्यभवात्मकः ।
अक्षरं ब्रह्म सत्यं तु आदौ चान्ते च राघव ॥ ५ ॥
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः ।
सेनानी रक्षणस्त्वं च वैकुण्ठस्त्वं जगत्प्रभो ॥ ६ ॥

श्रीब्रह्माजी बोले—श्रीरघुनन्दन ! आप समस्त जीवोंके आश्रयभूत नारायण, लक्ष्मीसे युक्त, स्वयंप्रकाश एवं सुदर्शन नामक चक्र धारण करनेवाले श्रीहरि हैं । शार्ङ्ग नामक धनुषको धारण करनेवाले भी आप ही हैं । आप ही इन्द्रियोंके स्वामी एवं पुराणप्रतिपादित पुरुषोत्तम हैं । आप कभी किसीसे भी परास्त नहीं होते । शत्रुओंकी तलवारोंको टूक-टूक करनेवाले, विजयी और सदा एकरस रहनेवाले—सनातन देवता सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण भी आप ही हैं । आप एक दाँतवाले भगवान् वराह हैं । भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों काल आपके ही रूप हैं । श्रीरघुनन्दन ! इस विश्वके आदि, मध्य और अन्तमें जो सत्यस्वरूप अविनाशी परब्रह्म स्थित है, वह आप ही हैं । आप ही लोकोंके परम धर्म हैं । आपको युद्धके लिये तैयार होते देख दैत्योंकी सेना ढारों ओर भाग खड़ी होती है, इसीलिये आप विष्वक्सेन कहलाते हैं । आप ही चार भुजा धारण करनेवाले श्रीविष्णु हैं ।

प्रभवश्चाव्यवस्त्वं च उपेन्द्रो मधुसूदनः ।
पृथिग्भर्मो धृतार्चिरस्त्वं पद्मनाभो रणान्तकृत् ॥ ७ ॥
शरणं शरणं च त्वामाहुः सेन्द्रा महर्षयः ।
ऋक्सामश्रेष्ठो वेदात्मा शतजिह्वो महर्षभः ॥ ८ ॥
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोकारः परन्तपः ।
शतधन्वा वसुः पूर्वं वसुनां त्वं प्रजापतिः ॥ ९ ॥

आप सबकी उत्पत्तिके स्थान और अविकारी हैं । इन्द्रके छोटे भाई वामन एवं मधु दैत्यके प्राणहन्ता श्रीविष्णु भी आप ही हैं । आप अदिति या देवकीके गर्भमें अवतीर्ण होनेके कारण पृथिग्भर्म कहलाते हैं । आपने महान् तेज धारण कर रखा है । आपकी ही नाभिसे विराट विश्वकी उत्पत्तिका कारणभूत कमल प्रकट हुआ था । आप शान्तस्वरूप होनेके कारण युद्धका अन्त करनेवाले हैं । इन्द्र आदि देवता तथा सम्पूर्ण महर्षिगण आपको ही सबका आश्रय एवं शरणदाता कहते हैं ।

ऋग्वेद और सामवेदमें आप ही सबसे श्रेष्ठ बताये गये हैं । आप सैकड़ों विधिवाक्यरूप जिह्वाओंसे युक्त वेदस्वरूप महान् वृषभ हैं । आप ही यज्ञ, आप ही वषट्कार और आप ही ऊँकार हैं । आप शत्रुओंको ताप देनेवाले तथा सैकड़ों धनुष धारण करनेवाले हैं । आप ही वसु, वसुओंके भी पूर्ववर्ती एवं प्रजापति हैं । त्रयाणामपि लोकानामादिकर्ता स्वयंप्रभुः ।
रुद्राणामष्टमो रुद्रः साध्यानामपि पञ्चमः ॥ १० ॥
अश्विनौ चापि कणां ते सूर्यचन्द्रौ च चक्षुषी ।
अन्ते चादौ च मध्ये च दृश्यसे त्वं परन्तप ॥ ११ ॥
प्रभवो निधनं चासि न विदुः को भवानिति ।
दृश्यसे सर्वलोकेषु गोषु च ब्राह्मणेषु च ॥ १२ ॥
दिक्षु सर्वासु गगने पर्वतेषु गुहासु च ।
सहस्रनयनः श्रीमाज्ञातशीर्षः सहस्रपात् ॥ १३ ॥

आप तीनों लोकोंके आदिकर्ता और स्वयं ही अपने प्रभु (परम स्वतन्त्र) हैं । आप रुद्रोंमें आठवें रुद्र और साध्योंमें पाँचवें साध्य हैं । दोनों अश्विनीकुमार आपके कान तथा सूर्य और चन्द्रमा नेत्र हैं । परंतप ! आप ही आदि, मध्य और अन्तमें दृष्टिगोचर होते हैं । सबकी उत्पत्ति और लयके स्थान भी आप ही हैं । आप कौन है—इस बातको ठीक-ठीक कोई भी नहीं जानते । सम्पूर्ण लोकोंमें, गौओंमें और ब्राह्मणोंमें आप ही दिखायी देते हैं तथा समस्त दिशाओंमें, आकाशमें, पर्वतोंमें और गुफाओंमें भी आपकी ही सत्ता है । आप शोभासे सम्पन्न हैं । आपके सहस्रों नेत्र, सैकड़ों मस्तक और सहस्रों चरण हैं ।

त्वं धारयसि भूतानि वसुधां च सपर्वताम् ।
अन्तःपृथिव्यां सलिले दृश्यसे त्वं महोरगः ॥ १४ ॥
त्रील्लोकान्धारयन् राम देवगन्धर्वदानवान् ।

आप सम्पूर्ण प्राणियोंको तथा पर्वतोंसहित पृथ्वीको भी धारण करते हैं । पृथ्वीके भीतर पाताललोकमें और क्षीरसागरके जलमें आप ही महान् सर्प—शेषनागके रूपमें दृष्टिगोचर होते हैं । राम ! आप उस स्वरूपसे देवता, गन्धर्व और दानवोंके सहित तीनों लोकोंको धारण करते हैं ।

अहं ते हृदयं राम जिह्वा देवी सरस्वती ॥ १५ ॥
देवा रोमाणि गात्रेषु निर्मितास्ते स्वमायया ।
निषेषस्ते स्मृता रात्रिरुच्येषो दिवसस्तथा ॥ १६ ॥

श्रीराम ! मैं (ब्रह्मा) आपका हृदय हूँ सरस्वती देवी जिह्वा है तथा आपके द्वारा अपनी मायासे उत्पन्न किये हुए देवता आपके अङ्गोंमें रोम हैं। आपका आँख मूँदना रात्रि और आँख खोलना दिन है।

संस्कारस्तेऽभवद्वेहो नैतदस्ति विना त्वया ।
जगत्सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं च वसुधातलम् ॥ १७ ॥
अग्निः कोपः प्रसादस्ते शेषः श्रीमांश्च लक्ष्मणः ।

शरीर और संस्कारकी उत्पत्ति आपसे ही हुई है। आपके बिना इस जगत्की स्थिति नहीं है। सम्पूर्ण विश्व आपका शरीर है, पृथ्वी आपकी स्थिरता है, अग्नि आपका कोप है और शेषावतार श्रीमान् लक्ष्मण आपके प्रसाद है। त्वया लोकास्त्रयः क्रान्ताः पुरा स्वैर्विक्रमैत्तिभिः ॥ १८ ॥
त्वयेन्द्रश्च कृतो राजा बलिर्बद्धो महासुरः ।
लोकान् संहत्य कालस्त्वं निवेश्यात्मनि केवलम् ॥ १९ ॥
करोष्येकार्णवं घोरं दृश्यादृश्ये च नान्यथा ।

पूर्वकालमें वामनरूप धारण कर आपने अपने तीन पगोंसे तीनों लोक नाप लिये थे तथा महान् असुर बलिको बाँधकर इन्द्रको स्वर्णका राजा बनाया था। आप ही कालरूपसे समस्त लोकोंका संहार करके अपने भीतर लीनकर सब ओर केवल भयङ्कर एकार्णवका दृश्य उपस्थित करते हैं। उस समय दृश्य और अदृश्यमें कुछ भेद नहीं रह जाता ।'

त्वया सिंहवपुः कृत्वा परमं दिव्यमद्भुतम् ॥ २० ॥
भयदः सर्वभूतानां हिरण्यकशिरुहर्तः ।

आपने नृसिंहावतारके समय परम अद्भुत एवं दिव्य सिंहका शरीर धारण करके समस्त प्राणियोंको भय देनेवाले हिरण्यकशिपु नामक दैत्यका वध किया था। त्वमश्ववदनो भूत्वा पातालतलपाश्रितः ॥ २१ ॥
संहतं परमं दिव्यं रहस्यं वै पुनः पुनः ।

आपने ही हयग्रीव अवतार धारण करके पातालके भीतर प्रवेशकर दैत्योंद्वारा अपहरण किये हुए वेदोंके परम रहस्य और यज्ञ-यागादिके प्रकरणोंको पुनः प्राप्त किया।

यत्परं श्रूयते ज्योतिर्यत्परं श्रूयते परम् ॥ २२ ॥
यत्परं परतश्चैव परमात्मेति कथ्यते ।

परो मन्त्रः परं तेजस्त्वमेव हि निगद्यसे ॥ २३ ॥

जो परम ज्योतिःस्वरूप तत्त्व सुना जाता है, जो परम उल्कृष्ट परब्रह्मके नामसे श्रवणगोचर होता है, जिसे परात्पर परमात्मा कहा जाता है तथा जो परम मन्त्र और परम तेज है, उसके रूपमें आपके ही स्वरूपका प्रतिपादन किया जाता है।

हृष्यं कव्यं पवित्रं च प्राप्तिः स्वर्गापिवर्गयोः ।
स्थित्युत्पत्तिविनाशांस्ते त्वामाहुः प्रकृतेः परम् ॥ २४ ॥

यज्ञश्च यजमानश्च होता चाध्वयुरेव च ।
भोक्ता यज्ञफलानां च त्वं वै वेदैश्च गीयसे ॥ २५ ॥

हृष्य (यज्ञ), कव्य (श्राद्ध), पवित्र, स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति, संसारकी उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार—ये सब आपके ही कार्य हैं। ज्ञानी पुरुष आपको प्रकृतिसे पर बतलाते हैं। वेदोंके द्वारा आप ही यज्ञ, यजमान, होता, अध्वर्यु तथा यज्ञफलोंके भोक्ता कहे जाते हैं। सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः ।

वधार्थं रावणस्य त्वं प्रविष्टे मानुषीं तनुम् ॥ २६ ॥

सीता साक्षात् लक्ष्मी हैं और आप स्वयंप्रकाश विष्णु, कृष्ण एवं प्रजापति हैं। आपने रावणका वध करनेके लिये ही मानव-शरीरमें प्रवेश किया है।

तदिदं च त्वया कार्यं कृतं कर्मभृतां वर ।
निहतो रावणो राम प्रहृष्टा देवताः कृताः ॥ २७ ॥

कर्म करनेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी ! आपने हमारा यह कार्य पूरा कर दिया। रावण मारा गया, इससे सम्पूर्ण देवताओंको आपने बहुत प्रसन्न कर दिया है। अमोघ देव वीर्यं ते नमोऽमोघपराक्रम ।

अमोघं दर्शनं राम अमोघस्त्वं संस्तवः ॥ २८ ॥

देव ! आपका बल अमोघ है। अचूक पराक्रम कर दिखानेवाले श्रीराम ! आपको नमस्कार है। राम ! आपके दर्शन और स्तवन भी अमोघ हैं।

अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि ।
ये च त्वां देव संभक्ताः पुराणं पुरुषोन्नमम् ॥ २९ ॥

देव ! जो मनुष्य इस पृथ्वीपर आप पुराण

पुरुषोत्तमका भलीभाँति भजन करते हुए निरन्तर आपके चरणोंमें भक्ति रखेंगे, वे जीवनमें कभी असफल न होंगे । इममार्वं स्तवं पुण्यमितिहासं पुरातनम् ।

ये नराः कीर्तयिष्यन्ति नास्ति तेषां पराभवः ॥ ३० ॥*

जो लोग परम ऋषि ब्रह्माजीके मुखसे निकले हुए इस पुरातन इतिहासरूप पुण्यमय स्तोत्रका पाठ करेंगे, उनका कभी पराभव नहीं होगा ।

यह महात्मा श्रीरघुनाथजीका स्तोत्र है, जो सब स्तोत्रोंमें श्रेष्ठ है । जो प्रतिदिन तीनों समय इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह महापातकी होनेपर भी मुक्त हो जाता है । श्रेष्ठ द्विजोंको चाहिये कि वे संध्याके समय विशेषतः श्राद्धके अवसरपर भक्तिभावसे मन लगाकर प्रयत्नपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करें । यह परम गोपनीय स्तोत्र है । इसे कहीं और कभी भी अनधिकारी व्यक्तिसे नहीं कहना चाहिये । इसके पाठसे मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर

लेता है । निश्चय ही उसे सनातन गति प्राप्त होती है । नरश्रेष्ठ ब्राह्मणोंको श्राद्धमें पहले तथा पिण्ड-पूजाके बाद भी इस स्तोत्रका पाठ करना चाहिये; इससे श्राद्ध अक्षय हो जाता है । यह परम पवित्र स्तोत्र मनुष्योंको मुक्ति प्रदान करनेवाला है । जो एकाग्र चित्तसे इस स्तोत्रको लिखकर अपने घरमें रखता है, उसकी आयु, सम्पत्ति तथा बलकी प्रतिदिन वृद्धि होती है । जो बुद्धिमान् पुरुष कभी इस स्तोत्रको लिखकर ब्राह्मणको देता है, उसके पूर्वज मुक्त होकर श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त होते हैं । चारों वेदोंका पाठ करनेसे जो फल होता है, वही फल मनुष्य इस स्तोत्रका पाठ और जप करके पा लेता है । अतः भक्तिमान् पुरुषको यत्नपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करना चाहिये । इसके पढ़नेसे मनुष्य सब कुछ पाता है और सुखपूर्वक रहकर उत्तरोत्तर उन्नतिको प्राप्त होता है ।



ऋषिपञ्चमी-ब्रतकी कथा, विधि और महिमा

महादेवजी कहते हैं—पार्वती ! एक समयकी बात है, मैंने जगत्के स्वामी भगवान् श्रीविष्णुसे पूछा था—भगवन् ! सब ब्रतोंमें उत्तम ब्रत कौन है, जो पुत्र-पौत्रकी वृद्धि करनेवाला और सुख-सौभाग्यको देनेवाला हो ? उस समय उन्होंने जो कुछ उत्तर दिया, वह सब मैं तुम्हें कहता हूँ; सुनो ।

श्रीविष्णु बोले—महाबाहु शिव ! पूर्वकालमें देवशर्मा नामके एक ब्राह्मण रहते थे, जो वेदोंके पारगामी विद्वान् थे और सदा स्वाध्यायमें ही लगे रहते थे । प्रतिदिन अग्निहोत्र करते तथा सदा अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन एवं दान-प्रतिग्रहरूप छः कर्मोंमें प्रवृत्त रहते थे । सभी वर्णोंके लोगोंमें उनका बड़ा मान था । वे पुत्र, पशु और बन्धु-बान्धव—सबसे सम्पन्न थे । ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ देवशर्माकी गृहिणीका नाम भग्ना था । वे भादोंके शुक्रपक्षमें पञ्चमी तिथि आनेपर तपस्या

(ब्रत-पालन) के द्वारा इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए पिताका एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया करते थे । पहले दिन रात्रिमें सुख और सौभाग्य प्रदान करनेवाले ब्राह्मणोंको निमन्त्रण देते और निर्मल प्रभातकाल आनेपर दूसरे-दूसरे नये बर्तन मँगाते तथा उन सभी बर्तनोंमें अपनी स्त्रीके द्वारा पाक तैयार कराते थे । वह पाक अठारह रसोंसे युक्त एवं पितरोंको संतोष प्रदान करनेवाला होता था । पाक तैयार होनेपर वे पृथक्-पृथक् ब्राह्मणोंको बुलावा भेजकर बुलवाते थे ।

एक बार उक्त समयपर निमन्त्रण पाकर समस्त वेदपाठी ब्राह्मण दोपहरीमें देवशर्माके घर उपस्थित हुए । विप्रवर देवशर्मानि अर्ध्य-पाद्यादि निवेदन करके विधिपूर्वक उनका स्वागत-सत्कार किया । फिर घरके भीतर जानेपर सबको बैठनेके लिये आसन दिया और विशेषतः मिष्ठानके साथ उत्तम अन्न उन्हें भोजन करनेके

लिये परोसा; साथ ही विधिपूर्वक पिण्डदानकी पूर्ति करनेवाला श्राद्ध भी किया। इसके बाद पिताका चिन्तन करते हुए उन्होंने उन ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके वस्त्र, दक्षिणा और ताम्बूल निवेदन किये। फिर उन सबको विदा किया। वे सभी ब्राह्मण आशीर्वाद देते हुए चले गये। तत्पश्चात् अपने सगोती, बन्धु-बान्धव तथा और भी जो लोग भूखे थे, उन सबको ब्राह्मणने विधिपूर्वक भोजन दिया। इस प्रकार श्राद्धका कार्य समाप्त होनेपर ब्राह्मण जब कुटीके दरवाजेपर बैठे, उस समय उनके घरकी कुतिया और बैल दोनों परस्पर कुछ बातचीत करने लगे। देवि ! बुद्धिमान् ब्राह्मणने उन दोनोंकी बातें सुनीं और समझीं। फिर मन-ही-मन वे इस प्रकार सोचने लगे—‘ये साक्षात् मेरे पिता हैं, जो मेरे ही घरके पशु हुए हैं तथा यह भी साक्षात् मेरी माता है, जो दैवयोगसे कुतिया हो गयी है। अब मैं इनके उद्धारके लिये निश्चित रूपसे क्या करूँ ?’ इसी विचारमें पड़े-पड़े ब्राह्मणको रातभर नींद नहीं आयी। वे भगवान् विश्वेश्वरका स्मरण करते रहे। प्रातःकाल होनेपर वे ऋषियोंके समीप गये। वहाँ वसिष्ठजीने उनका भलीभाँति स्वागत किया।

वसिष्ठजी बोले—ब्राह्मणश्रेष्ठ ! अपने आनेका कारण बताओ।

ब्राह्मण बोले—मुनिवर ! आज मेरा जन्म सफल हुआ तथा आज मेरी सम्पूर्ण क्रियाएँ सफल हो गयीं; क्योंकि इस समय मुझे आपका दुर्लभ दर्शन प्राप्त हुआ है। अब मेरा समाचार सुनिये। आज मैंने शास्त्रोक्त विधिसे श्राद्ध किया, ब्राह्मणोंको भोजन कराया तथा समस्त कुटुम्बके लोगोंको भी भोजन दिया है। सबके भोजनके पश्चात् एक कुतिया आयी और मेरे घरमें जहाँ एक बैल रहता है, वहाँ जा उसे पतिरूपसे सम्बोधित करके इस प्रकार कहने लगी—‘स्वामिन् ! आज जो घटना घटी है, उसे सुन लीजिये। इस घरमें जो दूधका बर्तन रखा हुआ था, उसे साँपने अपना जहर उगलकर दूषित कर दिया। यह मैंने अपनी आँखों देखा था। देखकर मेरे मनमें बड़ी चिन्ता हुई। सोचने लगी—इस दूधसे जब भोजन तैयार होगा, उस समय सब ब्राह्मण

इसको खाते ही मर जायेंगे। यों विचारकर मैं स्वयं उस दूधको पीने लगी। इतनेमें बहूकी दृष्टि मुझपर पड़ गयी। उसने मुझे खूब मारा। मेरा अङ्ग-भङ्ग हो गया है। इसीसे मैं लड़खड़ाती हुई चल रही हूँ। क्या करूँ, बहुत दुःखी हूँ।’

कुतियाके दुःखका अनुभव करके बैलने भी उससे कहा—‘अब मैं अपने दुःखका कारण बताता हूँ, सुनो; मैं पूर्वजन्ममें इस ब्राह्मणका साक्षात् पिता था। आज इसने ब्राह्मणोंको भोजन कराया और प्रचुर अन्नका दान किया है; किन्तु मेरे आगे इसने घास और जलतक नहीं रखा। इसी दुःखसे मुझे आज बहुत कष्ट हुआ है।’ उन दोनोंका यह कथानक सुनकर मुझे रातभर नींद नहीं आयी। मुनिश्रेष्ठ ! मुझे तभीसे बड़ी चिन्ता हो रही है। मैं वेदका स्वाध्याय करनेवाला हूँ, वैदिक कर्मोंके अनुष्ठानमें कुशल हूँ; फिर भी मेरे माता और पिताको महान् दुःख सहन करना पड़ रहा है। इसके लिये मैं क्या करूँ ? यही सोचता-विचारता आपके पास आया हूँ। आप ही मेरा कष्ट दूर कीजिये।

ऋषि बोले—ब्रह्मन् ! उन दोनोंने पूर्वजन्ममें जो कर्म किया है, उसे सुनो—ये तुम्हारे पिता परम सुन्दर कुण्डननगरमें श्रेष्ठ ब्राह्मण रहे हैं। एक समय भादोके महीनेमें पञ्चमी तिथि आयी थी, तुम्हारे पिता अपने पिताके श्राद्ध आदिमें लगे थे, इसलिये उन्हें पञ्चमीके ब्रतका ध्यान न रहा। उनके पिताकी क्षयाह तिथि थी। उस दिन तुम्हारी माता रजस्वला हो गयी थी, तो भी उसने ब्राह्मणोंके लिये सारा भोजन स्वयं ही तैयार किया। रजस्वला खी पहले दिन चाढ़ाली, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी और तीसरे दिन धोबिनके समान अपवित्र बतायी गयी है; चौथे दिन स्नानके बाद उसकी शुद्धि होती है। तुम्हारी माताने इसका विचार नहीं किया, अतः उसी पापसे उसको अपने ही घरकी कुतिया होना पड़ा है तथा तुम्हारे पिता भी इसी कर्मसे बैल हुए हैं।

ब्राह्मणने कहा—उत्तम ब्रतका पालन करनेवाले मुने ! मुझे कोई ऐसा ब्रत, दान, यज्ञ और तीर्थ बतलाइये, जिसके सेवनसे मेरे माता-पिताकी मुक्ति हो जाय।

ऋषि बोले— भादोंके शुक्लपक्षमें जो पञ्चमी आती है, उसका नाम ऋषिपञ्चमी है। उस दिन नदी, कुएँ, पोखरे अथवा ब्राह्मणके घरपर जाकर स्नान करे। फिर अपने घर आकर गोबरसे लीपकर मण्डल बनाये; उसमें कलशकी स्थापना करे। कलशके ऊपर एक पात्र रखकर उसे तिनीके चावलसे भर दे। उस पात्रमें यज्ञोपवीत, सुवर्ण तथा फलके साथ ही सुख और सौभाग्य देनेवाले सात ऋषियोंकी स्थापना करे। 'ऋषि-पञ्चमी' के ब्रतमें स्थित हुए पुरुषोंको उन सबका आवाहन करके पूजन करना चाहिये। तिनीके चावलका ही नैवेद्य लगाये और उसीका भोजन करे। केवल एक समय भोजन करके ब्रत करना चाहिये। उस दिन परम भक्तिके साथ मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए विधिपूर्वक ऋषियोंका पूजन करना उचित है। पूजनके समय ब्राह्मणको दक्षिणा और धीके साथ विधिपूर्वक भोजन-सामग्रीका दान देना चाहिये तथा समस्त ऋषियोंकी प्रसन्नता ही इस दानका उद्देश्य होना चाहिये। फिर विधिपूर्वक माहात्म्य-कथा सुनकर ऋषियोंकी प्रदक्षिणा करे और सबको पृथक्-पृथक् धूप-दीप तथा नैवेद्य निवेदन करके अर्घ्य प्रदान करे। अर्घ्यका मन्त्र इस प्रकार है—

ऋषयः सन्तु मे नित्यं ब्रतसंपूर्तिकारिणः ।
पूजां गृहन्तु महत्तामृषिभ्योऽस्तु नमो नमः ॥



न्याससहित अपामार्जन नामक स्तोत्र और उसकी महिमा

पार्वती बोली— भगवन्! सभी प्राणी विष और रोग आदिके उपद्रवसे ग्रस्त तथा दुष्ट ग्रहोंसे हर समय पीड़ित रहते हैं। सुरश्रेष्ठ! जिस उपायका अवलम्बन करनेसे मनुष्योंको अभिचार (मारण-उच्चाटन आदि) तथा कृत्या आदिसे उत्पन्न होनेवाले नाना प्रकारके भयङ्कर रोगोंका शिकार न होना पड़े, उसका मुझसे वर्णन कीजिये।

महादेवजी बोले— पार्वती! जिन लोगोंने ब्रत, उपवास और नियमोंके पालनद्वारा भगवान् विष्णुको

पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुः प्राचेतसस्तथा ।
वसिष्ठमारिचात्रेया अर्घ्यं गृहन्तु वो नमः ॥
(७८ । ५९-६०)

'ऋषिगण सदा मेरे ब्रतको पूर्ण करनेवाले हों। वे मेरी दी हुई पूजा स्वीकार करें। सब ऋषियोंको मेरा नमस्कार है। पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्राचेतस, वसिष्ठ, मारीच और आत्रेय—ये मेरा अर्घ्य ग्रहण करें। आप सब ऋषियोंको मेरा प्रणाम है।'

इस प्रकार मनोरम धूप-दीप आदिके द्वारा ऋषियोंकी पूजा करनी चाहिये। इस ब्रतके प्रभावसे पितरोंकी मुक्ति होती है। वत्स! पूर्वकर्मके परिणामसे अथवा रजके संसर्गदोषसे जो कष्ट होता है, उससे इस ब्रतका अनुष्ठान करनेपर निःसंदेह छुटकारा मिल जाता है।

महादेवजी कहते हैं— यह सुनकर देवशर्मनि पिता-माताकी मुक्तिके लिये 'ऋषिपञ्चमी' ब्रतका अनुष्ठान किया। उस ब्रतके प्रभावसे वे दोनों पति-पत्नी पुत्रको आशीर्वाद देते हुए मुक्तिमार्गसे चले गये। 'ऋषिपञ्चमी' का यह पवित्र ब्रत ब्राह्मणके लिये बताया गया, किन्तु जो नरश्रेष्ठ इसका अनुष्ठान करते हैं, वे सभी पुण्यके भागी होते हैं। जो श्रेष्ठ पुरुष इस परम उत्तम ऋषि-ब्रतका पालन करते हैं, वे इस लोकमें प्रचुर भोगोंका उपभोग करके अन्तमें भगवान् श्रीविष्णुके सनातन लोकको प्राप्त होते हैं।

संतुष्ट कर लिया है, वे कभी रोगसे पीड़ित नहीं होते। जिन्होंने कभी ब्रत, पुण्य, दान, तप, तीर्थ-सेवन, देव-पूजन तथा अधिक मात्रामें अन्न-दान नहीं किया है, उन्हीं लोगोंको सदा रोग और दोषसे पीड़ित समझना चाहिये। मनुष्य अपने मनसे आरोग्य तथा उत्तम समृद्धि आदि जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह सब भगवान् विष्णुकी सेवासे निश्चय ही प्राप्त कर लेता है। श्रीमधुसूदनके संतुष्ट हो जानेपर न कभी मानसिक चिन्ता सताती है, न रोग होता है, न विष तथा ग्रहोंके कष्टमें

बंधना पड़ता है और न कृत्याके ही स्पर्शका भय रहता है। श्रीजनार्दनके प्रसन्न होनेपर समस्त दोषोंका नाश हो जाता है। सभी ग्रह सदाके लिये शुभ हो जाते हैं तथा वह मनुष्य देवताओंके लिये भी दुर्धर्ष बन जाता है। जो सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति समान भाव रखता है और अपने प्रति जैसा बर्ताव चाहता है वैसा ही दूसरोंके प्रति भी करता है, उसने मानो उपवास आदि करके भगवान् मधुसूदनको संतुष्ट कर लिया। ऐसे लोगोंके पास शत्रु नहीं आते, उन्हें रोग या आभिचारिक कष्ट नहीं होता तथा उनके द्वारा कभी पापका कार्य भी नहीं बनता। जिसने भगवान् विष्णुकी उपासना की है, उसे भगवान्‌के चक्र आदि अमोघ अस्त्र सदा सब आपत्तियोंसे बचाते रहते हैं।

पार्वती बोली—भगवन्! जो लोग भगवान् गोविन्दकी आराधना न करनेके कारण दुःख भोग रहे हैं, उन दुःखी मनुष्योंके प्रति सब प्राणियोंमें सनातन वासुदेवको स्थित देखनेवाले समदर्शी एवं दयालु पुरुषोंका जो कर्तव्य हो, वह मुझे विशेषरूपसे बताइये।

महादेवजी बोले—देवेश्वर! बतलाता हूँ एकाग्रचित्त होकर सुनो। यह उपाय रोग, दोष एवं अशुभको हरनेवाला तथा शत्रुजनित आपत्तिका नाश करनेवाला है। विद्वान् पुरुष शिखामें श्रीधरका, शिखाके निचले भागमें भगवान् श्रीकरका, केशोंमें हृषीकेशका, मस्तकमें परम पुरुष नारायणका, कानके ऊपरी भागमें श्रीविष्णुका, ललाटमें जलशायीका, दोनों भौंहोंमें श्रीविष्णुका, भौंहोंके मध्य-भागमें श्रीहरिका, नासिकाके

अग्रभागमें नरसिंहका, दोनों कानोंमें अर्णवेशय (समुद्रमें शयन करनेवाले भगवान्) का, दोनों नेत्रोंमें पुण्डरीकाक्षका, नेत्रोंके नीचे भूधर (धरणीधर) का, दोनों गालोंमें कल्किनाथका, कानोंके मूल भागमें वामनका, गलेकी दोनों हँसलियोंमें शङ्खधारीका, मुखमें गोविन्दका, दाँतोंकी पद्मकिम्बें मुकुन्दका, जिह्वामें वाणीपतिका, ठोड़ीमें श्रीरामका, कण्ठमें वैकुण्ठका, बाहुमूलके निचले भाग (काँख) में बलभ्र (बल नामक दैत्यके मारनेवाले) का, कंधोंमें कंसधातीका, दोनों भुजाओंमें अज (जन्मरहित) का, दोनों हाथोंमें शार्ङ्गपाणिका, हाथके अँगूठेमें संकर्षणका, अँगुलियोंमें गोपालका, वक्षःस्थलमें अधोक्षजका, छातीके बीचमें श्रीवत्सका, दोनों स्तनोंमें अनिरुद्धका, उदरमें दामोदरका, नाभिमें पद्मनाभका, नाभिके नीचे केशवका, लिङ्गमें धराधरका, गुदामें गदाग्रजका, कटिमें पीताम्बरधारीका, दोनों जाँधोंमें मधुद्विद् (मधुसूदन) का, पिंडलियोंमें मुरारिका, दोनों घुटनोंमें जनर्दनका, दोनों घुड़ियोंमें फणीशका, दोनों पैरोंकी गतिमें त्रिविक्रमका, पैरके अँगूठेमें श्रीपतिका, पैरके तलवोंमें धरणीधरका, समस्त रोमकूपोंमें विष्वक्सेनका, शरीरके मांसमें मत्स्यावतारका, मेदेमें कूर्मावतारका, वसामें वाराहका, सम्पूर्ण हँड़ियोंमें अच्युतका, मज्जामें द्विजप्रिय (ब्राह्मणोंके प्रेमी) का, शुक्र (वीर्य) में श्वेतपतिका, सर्वाङ्गमें यज्ञपुरुषका तथा आत्मामें परमात्माका न्यास करे। इस प्रकार न्यास करके मनुष्य साक्षात् नारायण हो जाता है; वह जबतक मुँहसे कुछ बोलता नहीं, तबतक विष्णुरूपसे ही स्थित रहता है।*

* तद् वक्ष्यामि सुरश्रेष्ठे समाहितमनाः शृणु । रोगदोषाशुभहरं विद्विडापदविनाशनम् ॥

शिखायां श्रीधरं न्यस्य शिखाधः श्रीकरं तथा । हृषीकेशं तु केशेषु मूर्ध्नि नारायणं परम् ॥

ऊर्ध्वश्रोत्रे न्यसेद्विष्णुं ललाटे जलशायिनम् । विष्णुं वै श्रुयो न्यस्य श्रूमध्ये हरिमेव च ॥

नरसिंहं नासिकाग्रे कर्णयोरर्णवेशयम् । चक्षुषोः पुण्डरीकाक्षं तदधो भूधरं न्यसेत् ॥

कपोलयोः कल्किनाथं वामनं कर्णमूलयोः । शङ्खानं शङ्खयोर्न्यस्य गोविन्दं वदने तथा ॥

मुकुन्दं दन्तपङ्क्षौ तु जिह्वायां वाक्पतिं तथा । रामं हनौ तु विन्यस्य कण्ठे वैकुण्ठमेव च ॥

बलभ्रं बाहुमूलधक्षांसयोः कंसधातिनम् । अजं भुजद्वये न्यस्य शार्ङ्गपाणिं करद्वये ॥

संकर्षणं कराङ्गुष्ठे गोपमङ्गुलिपद्मकिंषु । वक्षस्यधोक्षजं न्यस्य श्रीवत्सं तस्य मध्यतः ॥

स्तनयोरनिरुद्धं च दामोदरमथोदरे । पद्मनाभं तथा नाभौ नाभ्यधश्शापि केशवम् ॥

शान्ति करनेवाला पुरुष मूलसहित शुद्ध कुशोंको लेकर एकाग्रचित्त हो रोगीके सब अङ्गोंको झाड़े; विशेषतः विष्णुभक्त पुरुष रोग, ग्रह और विषसे पीड़ित मनुष्यकी अथवा केवल विषसे ही कष्ट पानेवाले रोगियोंकी इस प्रकार शुभ शान्ति करे। पार्वती ! कुशसे झाड़ते समय सब रोगोंका नाश करनेवाले इस स्तोत्रका पाठ करना चाहिये ।

ॐ परमार्थस्वरूप, अन्तर्यामी, महात्मा, रूपहीन होते हुए भी अनेक रूपधारी तथा व्यापक परमात्माको नमस्कार है। वाराह, नरसिंह और सुखदायी वामन भगवान्का ध्यान एवं नमस्कार करके श्रीविष्णुके उपर्युक्त नामोंका अपने अङ्गोंमें न्यास करे। न्यासके पश्चात् इस प्रकार कहे—‘मैं पापके स्पर्शसे रहित, शुद्ध, व्याधि और पापोंका अपहरण करनेवाले गोविन्द, पद्मनाभ, वासुदेव और भूधर नामसे प्रसिद्ध भगवान्को नमस्कार करके जो कुछ कहूँ वह मेरा सारा वचन सिद्ध हो। तीन पगोंसे त्रिलोकीको नापनेवाले भगवान् त्रिविक्रम, सबके हृदयमें रमण करनेवाले राम, वैकुण्ठधामके अधिपति, बदरिकाश्रममें तपस्या करनेवाले भगवान् नर, वाराह, नृसिंह, वामन और उज्ज्वल रूपधारी हयग्रीवको नमस्कार है। हृषीकेश ! आप सारे अमङ्गलको हर लीजिये। सबके हृदयमें निवास करनेवाले भगवान् वासुदेवको नमस्कार है। नन्दक नामक खड्ग धारण करनेवाले सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्णको नमस्कार है। कमलके समान नेत्रोंवाले आदि चक्रधारी श्रीकेशवको नमस्कार है। कमल-केसरके समान वर्णवाले भगवान्को नमस्कार है। पीले रंगके निर्मल वस्त्र धारण करनेवाले भगवान् विष्णुको नमस्कार है। अपनी एक दाढ़पर समूची पृथ्वीको उठा लेनेवाले त्रिमूर्तिपति

भगवान् वाराहको नमस्कार है। जिसके नखोंका सर्व वज्रसे भी अधिक तीक्ष्ण और कठोर है, ऐसे दिव्य सिंहका रूप धारण करनेवाले भगवान् नृसिंह ! आपको नमस्कार है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदसे लक्षित होनेवाले परमात्मन् ! अत्यन्त लघु शरीरवाले कश्यपपुत्र वामनका रूप धारण करके भी समूची पृथ्वीको एक ही पगमें नाप लेनेवाले ! आपको बारंबार नमस्कार है। बहुत बड़ी दाढ़वाले भगवान् वाराह ! सम्पूर्ण दुःखों और समस्त पापके फलोंको रौंद डालिये, रौंद डालिये। पापके फलको नष्ट कर डालिये, नष्ट कर डालिये। विकराल मुख और दाँतोंवाले, नखोंसे उद्दीप्त दिखायी देनेवाले, पीड़ाओंके नाशक भगवान् नृसिंह ! आप अपनी गर्जनासे इस रोगीके दुःखोंका भञ्जन कीजिये, भञ्जन कीजिये। इच्छानुसार रूप ग्रहण करके पृथ्वी आदिको धारण करनेवाले भगवान् जनार्दन अपनी ऋक्, यजुः और साममयी वाणीद्वारा इस रोगीके सब दुःखोंकी शान्ति कर दें। एक, दो, तीन या चार दिनका अन्तर देकर आनेवाले हलके या भारी ज्वरको, सदा बने रहनेवाले ज्वरको, किसी दोषके कारण उत्पन्न हुए ज्वरको, सत्रिपातसे होनेवाले तथा आगन्तुक ज्वरको विदीर्ण कर उसकी वेदनाका नाश करके भगवान् गोविन्द उसे सदाके लिये शान्त कर दें। नेत्रका कष्ट, मस्तकका कष्ट, उदररोगका कष्ट, अनुच्छवास (साँसका रुकना), महाश्वास (साँसका तेज चलना—दमा), परिताप, (ज्वर), वेपथु (कम्प या जूँड़ी), गुदारोग, नासिकारोग, पादरोग, कुष्ठरोग, क्षयरोग, कमला आदि रोग, प्रमेह आदि भयङ्कर रोग, बातरोग, मकड़ी और चेचक आदि समस्त रोग भगवान् विष्णुके चक्रकीं चोट खाकर नष्ट हो जायें। अच्युत, अनन्त और गोविन्द नामोंके उच्चारणरूपी

मेदे धरधरं देवं गुदे चैव गदाग्रजम् । पीताम्बरधरं कट्यामूरुयुग्मे मधुद्विषम् ॥

मुद्दिषं पिण्डकयोर्जनयुग्मे जनार्दनम् । फणीशं गुल्फयोर्न्यस्य क्रमयोश्च त्रिविक्रमम् ॥

पादाङ्गुष्ठे श्रीपतिं च पादाधो धरणीधरम् । रोमकूपेषु सर्वेषु विष्वक्सेनं न्यसेद्वुधः ॥

मत्स्यं मांसे तु विन्यस्य कूमी मेदसि विन्यसेत् । वाराहं तु वसामध्ये सर्वास्थिषु तथाच्युतम् ॥

द्विजप्रियं तु मजायो शुक्रे श्वेतपति तथा । सर्वाङ्गे यज्ञपुरुषं परमात्मानमात्मनि ॥

एवं न्यासविधि कृत्वा साक्षात्रारायणो भवेत् । यावत्र व्याहरेत्किंचित्तावद्विष्णुमयः स्थितः ॥ (७९ । १६—३०)

ओषधिसे समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं—यह बात मैं सत्य-सत्य कहता हूँ। स्थावर, जङ्गम अथवा कृत्रिम विष हो या दाँत, नख, आकाश तथा भूत आदिसे प्रकट होनेवाला अत्यन्त दुस्सह विष हो; वह सारा-का-सारा श्रीजनार्दनका नामकीर्तन करनेपर इस रोगीके शरीरमें शान्त हो जाय। बालकके शरीरमें ग्रह, प्रेतग्रह अथवा अन्यान्य शाकिनी-ग्रहोंका उपद्रव हो या मुखपर चक्कते निकल आये हों अथवा रेवती, वृद्ध रेवती तथा वृद्धिका नामके भयङ्कर ग्रह, मातृग्रह एवं बालग्रह पीड़ा दे रहे हों; भगवान् श्रीविष्णुका चरित्र उन सबका नाश कर देता है। वृद्धों अथवा बालकोंपर जो कोई भी ग्रह लगे हों, वे श्रीनृसिंहके दर्शनमात्रसे तत्काल शान्त हो जाते हैं। भयानक दाढ़ोंके कारण विकराल मुखवाले भगवान् नृसिंह दैत्योंको भयभीत करनेवाले हैं। उन्हें देखकर सभी ग्रह बहुत दूर भाग जाते हैं। ज्वालाओंसे देदीप्यमान मुखवाले महासिंहरूपधारी नृसिंह! सुन्दर मुख और नेत्रोंवाले सर्वेश्वर! आप समस्त दुष्ट ग्रहोंको दूर कीजिये। जो-जो रोग, महान् उत्पात, विष, महान् ग्रह, क्रूरस्वभाववाले भूत, भयङ्कर ग्रह-पीड़ाएँ, हथियारसे कटे हुए घावोंपर होनेवाले रोग, चेचक आदि फोड़े और शरीरके भीतर स्थित रहनेवाले ग्रह हों, उन सबको हे त्रिभुवनकी रक्षा करनेवाले! दुष्ट दानवोंके विनाशक! महातेजस्वी सुदर्शन! आप काट डालिये, काट डालिये। महान् ज्वर, वातरोग, लूता रोग तथा भयानक महाविषको भी आप नष्ट कर दीजिये, नष्ट कर दीजिये। असाध्य अमरशूल विषकी ज्वाला और गर्दभ रोग—ये सब-के-सब शत्रु हैं, 'उँ हां हां हूं हूं' इस बीजमन्त्रके साथ तीखी धारवाले कुठारसे आप इन शत्रुओंको मार डालें। दूसरोंका दुःख दूर करनेके लिये शरीर धारण करनेवाले परमेश्वर! आप भगवान्को नमस्कार है। इनके सिवां और भी जो प्राणियोंको पीड़ा देनेवाले दुष्ट ग्रह और रोग हों, उन सबको सबके आत्मा परमात्मा जनार्दन दूर करें। वासुदेव! आपको नमस्कार है। आप कोई रूप धारण करके ज्वालाओंके कारण अत्यन्त भयानक सुदर्शन नामक चक्र चलाकर सब

दुष्टोंको नष्ट कर दीजिये। देववर! अच्युत! आप दुष्टोंका संहार कीजिये।

महाचक्र सुदर्शन! भगवान् गोविन्दके श्रेष्ठ आयुध! तीखी धार और महान् वेगवाले शस्त्र! कोटि सूर्यके समान तेज धारण करनेवाले महाज्वालामय सुदर्शन! भारी आवाजसे सबको भयभीत करनेवाले चक्र! आप समस्त दुःखों और सम्पूर्ण रक्षसोंका उच्छेद कर डालिये, उच्छेद कर डालिये। हे सुदर्शनदेव! आप पापोंका नाश और आरोग्य प्रदान कीजिये। महात्मा नृसिंह अपनी गर्जनाओंसे पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर—सब ओर रक्षा करें। अनेक रूप धारण करनेवाले भगवान् जनार्दन भूमिपर और आकाशमें, पीछे-आगे तथा पार्श्वभागमें रक्षा करें। देवता, असुर और मनुष्योंके सहित सम्पूर्ण विश्व श्रीविष्णुमय है। योगेश्वर श्रीविष्णु ही सब वेदोंमें गाये जाते हैं, इस सत्यके प्रभावसे इस रोगीका सारा दुःख दूर हो जाय। समस्त वेदाङ्गोंमें भी परमात्मा श्रीविष्णुका ही गान किया जाता है। इस सत्यके प्रभावसे विश्वात्मा केशव इसको सुख देनेवाले हों। भगवान् वासुदेवके शरीरसे प्रकट हुए कुशोंके द्वारा मैंने इस मनुष्यका मार्जन किया है; इससे शान्ति हो, कल्याण हो और इसके दुःखोंका नाश हो जाय। जिसने गोविन्दके अपामार्जन स्तोत्रसे मार्जन किया है, वह भी यद्यपि साक्षात् श्रीनारायणका ही स्वरूप है; तथापि सब दुःखोंकी शान्ति श्रीहरिके वचनसे ही होती है। श्रीमधुसूदनका स्मरण करनेपर सम्पूर्ण दोष, समस्त ग्रह, सभी विष और सारे भूत शान्त हो जाते हैं। अब यह श्रीहरिके वचनानुसार पूर्ण स्वस्थ हो जाय। शान्ति हो, कल्याण हो और दुःख नष्ट हो जाय। भगवान् हृषीकेशके नाम-कीर्तनके प्रभावसे सदा ही इसके स्वास्थ्यकी रक्षा रहे। जो पाप जहाँसे इसके शरीरमें आये हों, वे वहीं चले जायँ।

यह परम उत्तम 'अपामार्जन' नामक स्तोत्र है। समस्त प्राणियोंका कल्याण चाहनेवाले श्रीविष्णुभक्त पुरुषोंको रोग और पीड़ाओंके समय इसका प्रयोग करना चाहिये। इससे समस्त दुःखोंका पूर्णतया नाश हो जाता है। यह

सब पापोंकी शुद्धिका साधन है। श्रीविष्णुके 'अपामार्जन स्तोत्र'से आर्द्ध^१-शुष्क^२, लघु-स्थूल (छोटे-बड़े) एवं ब्रह्महत्या आदि जितने भी पाप हैं, वे सब उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्यके दर्शनसे अन्धकार दूर हो जाता है। जिस प्रकार सिंहके भयसे छोटे मृग भागते हैं, उसी प्रकार इस स्तोत्रसे सारे रोग और दोष नष्ट हो जाते हैं। इसके श्रवणमात्रसे ही ग्रह, भूत और पिशाच आदिका नाश हो जाता है। लोभी पुरुष धन कमानेके लिये कभी इसका उपयोग न करें। अपामार्जन स्तोत्रका उपयोग करके किसीसे कुछ भी नहीं लेना चाहिये, इसीमें अपना हित है। आदि, मध्य और अन्तका ज्ञान रखनेवाले शान्तचित्त श्रीविष्णुभक्तोंको निःस्वार्थभावसे इस स्तोत्रका प्रयोग करना उचित है; अन्यथा यह सिद्धिदायक नहीं होता। भगवान् विष्णुका जो अपामार्जन नामक स्तोत्र है, यह मनुष्योंके लिये अनुपम सिद्धि है, रक्षाका परम साधन है और सर्वोत्तम ओषधि है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने अपने पुत्र पुलस्त्य मुनिको इसका उपदेश किया था; फिर पुलस्त्य मुनिने दाल्भ्यको सुनाया। दाल्भ्यने समस्त प्राणियोंका हित करनेके लिये इसे लोकमें प्रकाशित किया; तबसे श्रीविष्णुका यह अपामार्जन स्तोत्र तीनों लोकोंमें व्याप्त हो गया। यह सब प्रसङ्ग भक्तिपूर्वक श्रवण करनेसे मनुष्य अपने रोग और दोषोंका नाश करता है।

'अपामार्जन' नामक स्तोत्र परम अद्भुत और दिव्य है। मनुष्यको चाहिये कि पुत्र, काम और अर्थकी सिद्धिके लिये इसका विशेषरूपसे पाठ करे। जो द्विज एक या दो समय बराबर इसका पाठ करते हैं, उनकी आयु, लक्ष्मी और बलकी दिन-दिन वृद्धि होती है। ब्राह्मण विद्या, क्षत्रिय राज्य, वैश्य धन-सम्पत्ति और शुद्ध भक्ति प्राप्त करता है। दूसरे लोग भी इसके पाठ, श्रवण

और जपसे भक्ति प्राप्त करते हैं। पार्वती ! जो इसका पाठ करता है, उसे सामवेदका फल होता है; उसकी सारी पाप-राशि तत्काल नष्ट हो जाती है। देवि ! ऐसा जानकर एकाग्रचित्तसे इस स्तोत्रका पाठ करना चाहिये। इससे पुत्रकी प्राप्ति होती है और घरमें निश्चय ही लक्ष्मी परिपूर्ण हो जाती है। जो वैष्णव इस स्तोत्रको भोजपत्रपर लिखकर सदा धारण किये रहता है, वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त होता है। जो इसका एक-एक श्लोक पढ़कर भगवान्को तुलसीदल समर्पित करता है, वह तुलसीसे पूजन करनेपर सम्पूर्ण तीर्थोंके सेवनका फल पा लेता है। यह भगवान् विष्णुका स्तोत्र परम उत्तम और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। सम्पूर्ण पृथ्वीका दान करनेसे मनुष्य श्रीविष्णुलोकमें जाता है; किन्तु जो ऐसा करनेमें असमर्थ हो, वह श्रीविष्णुलोककी प्राप्तिके लिये विशेषरूपसे इस स्तोत्रका जप करे। यह रोग और ग्रहोंसे पीड़ित बालकोंके दुःखकी शान्ति करनेवाला है। इसके पाठमात्रसे भूत, ग्रह और विष नष्ट हो जाते हैं। जो ब्राह्मण कण्ठमें तुलसीकी माला पहनकर इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसे वैष्णव जानना चाहिये; वह निश्चय ही श्रीविष्णुधाममें जाता है। इस लोकका परित्याग करनेपर उसे श्रीविष्णुधामकी प्राप्ति होती है। जो मोह-मायासे दूर हो दम्भ और तृष्णाका त्याग करके इस दिव्य स्तोत्रका पाठ करता है, वह परम मोक्षको प्राप्त होता है। इस भूमण्डलमें जो ब्राह्मण भगवान् विष्णुके भक्त हैं, वे धन्य माने गये हैं; उन्होंने कुलसहित अपने आत्माका उद्धार कर लिया—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जिन्होंने भगवान् नारायणकी शरण ग्रहण कर ली है, संसारमें वे परम धन्य हैं। उनकी सदा भक्ति करनी चाहिये, क्योंकि वे भागवत (भगवद्भक्त) पुरुष हैं।



१-स्वेच्छासे किये हुए पाप। २-अनिच्छासे किये हुए पाप।

श्रीविष्णुकी महिमा—भक्तप्रवर पुण्डरीककी कथा

श्रीपार्वती बोलीं—विश्वेश्वर ! प्रभो ! भगवान् श्रीविष्णुका माहात्म्य अद्भुत है, जिसे सुनकर फिर कभी संसार-बन्धन नहीं प्राप्त होता। आप पुनः उसका वर्णन कीजिये।

महादेवजीने कहा—सुन्दरी ! मैं भगवान् श्रीविष्णुके उत्तम माहात्म्यका वर्णन करता हूँ सुनो; इसे सुनकर मनुष्य पुण्य प्राप्त करता है और अन्तमें उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। महाप्राज्ञ देवब्रत, जो इन्द्र आदि देवताओंके लिये भी दुर्धर्ष थे, कुरुक्षेत्रकी पुण्यभूमिमें ध्यानयोगपरायण हो रहे थे। वे सम्पूर्ण शास्त्रोंके आश्रय थे। उन्होंने अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर लिया था। उनमें पापका लेश भी नहीं था। वे सत्यप्रतिज्ञा थे और क्रोधको जीतकर समतामें प्रतिष्ठित हो चुके थे। संसारके स्वामी और सबको शरण देनेवाले भक्तवत्सल भगवान् नारायणमें मन, वाणी, शरीर और क्रियाके द्वारा वे परम निष्ठाको प्राप्त थे। ऐसे शान्तचित्त तथा समस्त गुणोंके आश्रयभूत कुरु-पितामह भीष्मको पृथ्वीपर मस्तक झुकाकर राजा युधिष्ठिरने प्रणाम किया और इस प्रकार पूछा।



युधिष्ठिर बोले—समस्त शास्त्र-वेत्ताओंमें श्रेष्ठ, धर्मके ज्ञाता पितामह ! कोई तो धर्मको सबसे श्रेष्ठ बतलाते हैं और कोई धनको। कोई दानकी प्रशंसा करते हैं, तो कोई संग्रहके गीत गाते हैं। कुछ लोग सांख्यके समर्थक हैं, तो दूसरे लोग योगके। कोई यथार्थ ज्ञानको उत्तम मानते हैं, तो कोई वैराग्यको। कुछ लोग अग्निष्टोम आदि कर्मको ही सबसे श्रेष्ठ समझते हैं, तो कुछ लोग उस आत्मज्ञानको बड़ा मानते हैं, जिसे पाकर मिठीके ढेले, पत्थर और सुवर्णमें समबुद्धि हो जाती है। कुछ लोगोंके मतमें मनीषी पुरुषोंद्वारा बताये हुए यम और नियम ही सबसे उत्तम हैं। कुछ लोग दयाको श्रेष्ठ बताते हैं, तो कुछ तपस्वी महात्मा अहिंसाको ही सर्वोत्तम कहते हैं। कुछ मनुष्य शौचाचारको श्रेष्ठ बतलाते हैं, तो कुछ देवार्चनको। इस विषयमें पाप-कर्मोंसे मोहित चित्तवाले मानव चक्रर खा जाते हैं—वे कुछ निर्णय नहीं कर पाते। इन सबमें जो सर्वोत्तम कृत्य हो, जिसका महात्मा पुरुष भी अनुष्ठान कर सके, उसे बतानेकी कृपा कीजिये।

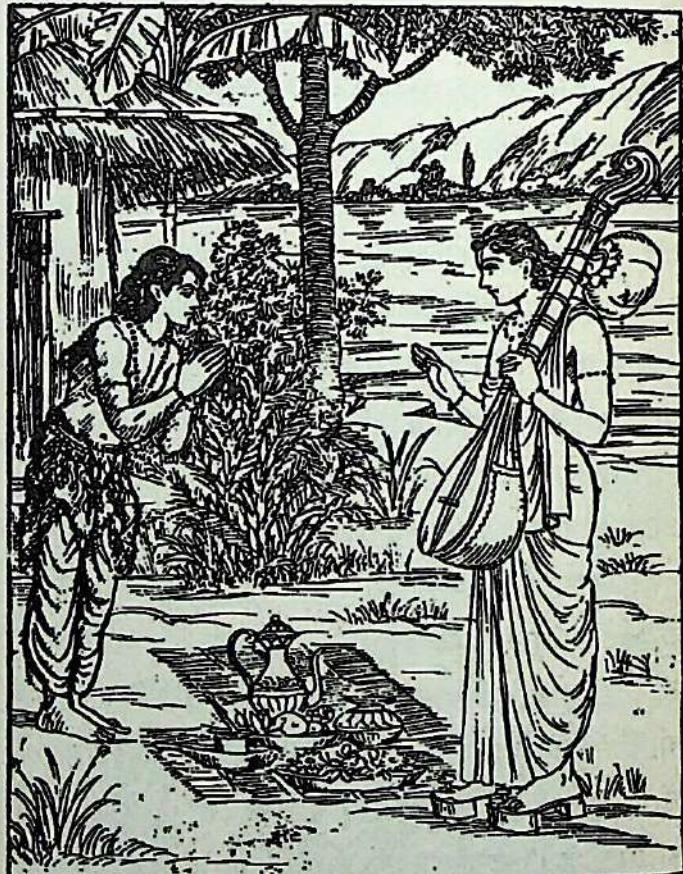
भीष्मजी बोले—धर्मनन्दन ! सुनो, यह अत्यन्त गूढ़ विषय है, जो संसारबन्धनसे मोक्ष दिलानेवाला है। यह विषय तुम्हें भलीभाँति सुनना और जानना चाहिये। पुण्डरीक नामके एक परम बुद्धिमान् और वेदविद्यासे सम्पन्न ब्राह्मण थे, जो ब्रह्मचर्य-आश्रममें निवास करते हुए सदा गुरुजनोंकी आज्ञाके अधीन रहा करते थे। वे जितेन्द्रिय, क्रोधजयी, संध्योपासनमें तत्पर, वेद-वेदाङ्गोंके ज्ञानमें निपुण और शास्त्रोंकी व्याख्या करनेमें कुशल थे। प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल समिधाओंसे अग्निको प्रज्वलित करके उत्तम हविष्यसे होम किया करते थे। जगत्पति भगवान् विष्णुका ध्यान करके विधिपूर्वक उनकी आराधनामें लगे रहते थे। तपस्या और स्वाध्यायमें तत्पर रहकर वे साक्षात् ब्रह्माजीके पुत्रकी भाँति जान पड़ते थे। जल, समिधा और फूल आदि लाकर निरन्तर गुरुकी पूजामें प्रवृत्त रहते थे। उनके मनमें माता-पिताके प्रति भी पूर्ण सेवाकां भाव था। वे भिक्षाका आहार करते और दम्प-द्वेषसे दूर रहते

थे। ब्रह्मविद्या (उपनिषद) का स्वाध्याय करते और प्राणायामके अभ्यासमें संलग्न रहते थे। उनके हृदयमें सबके प्रति आत्मभाव था। संसारकी ओरसे वे निःस्पृह हो गये थे। एक बार उनके मनमें संसार-सागरसे तारनेवाला विचार उत्पन्न हुआ; फिर तो वे माता-पिता, भाई, सुहृद्, मित्र, सखा, सम्बन्धी, बस्तु-बास्तव, वंश-परम्परासे प्राप्त एवं धन-धान्यसे परिपूर्ण गृह, सब प्रकारके अन्नकी पैदावारके योग्य बहुमूल्य खेत तथा उनकी तृष्णा छोड़कर महान् धैर्यसे सम्पन्न और परम सुखी होकर पैदल ही पृथ्वीपर विचरने लगे। 'यह यौवन, रूप, आयु और धनका संग्रह सब अनित्य है'— यों विचारकर उनका मन तीनों लोकोंकी ओरसे फिर गया। पाण्डुनन्दन ! महायोगी पुण्डरीक पुराणोक्त मार्गसे यथासमय समस्त तीर्थोंमें विधिपूर्वक विचरने लगे।

एक समय धीर तपस्वी महाभाग पुण्डरीक अपने पूर्वकर्मोंके अधीन हो घूमते-घामते शालग्राम-तीर्थमें जा पहुँचे, जो तपस्याके धनी एवं तत्त्ववेत्ता मुनियोंके द्वारा सेवित था। उस परम पुण्यमय क्षेत्रमें सरस्वती नदीके देवहृद नामक तीर्थमें स्नान करके उत्तम ब्रतका पालन करनेवाले वे महाबुद्धिमान् ब्राह्मण वहींके जातिस्मरी, चक्रकुण्ड, चक्र नदीसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य कुण्ड तथा अन्यान्य तीर्थोंमें भी घूमने लगे। तीर्थ-सेवनसे उनका अन्तःकरण अत्यन्त शुद्ध हो चुका था, अतः उन्होंने ध्यानयोगमें प्रवृत्त होकर वहीं अपना आश्रम बना लिया। उसी तीर्थमें शास्त्रोक्त विधि तथा परम भक्तिके साथ भगवान् गरुडध्वजकी आराधना करके वे सिद्धि पाना चाहते थे; इसलिये शीत, उष्ण आदि द्वन्द्वोंसे रहित एवं जितेन्द्रिय हो दीर्घ कालतक अकेले ही वहाँ निवास करते रहे। शाक, मूळ और फल—यही उनका भोजन था। वे सदा संतुष्ट रहते और सबमें समान दृष्टि रखते थे। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधिके द्वारा आलस्यरहित हो सदा विधिपूर्वक योगाभ्यास करते थे। उनके सारे पाप दूर हो चुके थे; वे वैदिक, तान्त्रिक तथा पौराणिक मन्त्रोंसे सर्वेक्षर भगवान् विष्णुकी आराधना करते थे; अतः

उन्होंने भलीभाँति शुद्धि प्राप्त कर ली थी। राग-द्वेषसे मुक्त हो मूर्तिमान् ख्वधर्मकी भाँति चित्तवृत्तियोंको भगवान्में लगाकर वे निरन्तर उनकी आराधनामें संलग्न रहते थे।

तदनन्तर किसी समय परमार्थ-तत्त्वके ज्ञाता साक्षात् सूर्यके समान महातेजस्वी, विष्णु-भक्तिसे परिपूर्ण हृदयवाले तथा वैष्णवोंके हितमें तत्पर रहनेवाले देवर्षि नारदजी तपोनिधि पुण्डरीकको देखनेके लिये उस स्थानपर आये। नारदजीको आया देख पुण्डरीक प्रसन्न चित्तसे उठे और हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् विधिपूर्वक अर्ध्य निवेदन करके उन्होंने पुनः नारदजीको मस्तक झुकाया। फिर मन-ही-मन विचार



किया—ये अद्भुत आकार और मनोहर वेष धारण करनेवाले तेजस्वी पुरुष कौन हैं। इनके हाथमें वीणा है तथा मुखपर प्रसन्नता छा रही है। यह सोचते हुए वे उन परम तेजस्वी नारदजीसे बोले—महाद्युते ! आप कौन हैं ? और कहाँसे इस आश्रमपर पधारे हैं ? भगवन् ! इस पृथ्वीपर आपका दर्शन तो प्रायः दुर्लभ ही है। मेरे लिये जो आज्ञा हो, उसे बतानेकी कृपा कीजिये।'

नारदजीने कहा—ब्रह्मन् ! मैं नारद हूँ। तुम्हें

देखनेकी उत्कण्ठासे यहाँ आया हूँ। द्विजश्रेष्ठ ! भगवान्का भक्त यदि चाष्टाल हो तो भी वह स्मरण, वार्तालाप अथवा पूजन करनेपर सबको पवित्र कर देता है*। जो अपने हाथोंमें शार्ङ्ग नामक धनुष, पाञ्चजन्य शङ्ख, सुदर्शन चक्र और कौमोदकी गदा धारण करते हैं तथा जो त्रिभुवनके नेत्र हैं, उन देवाधिदेव भगवान्का मैं दास हूँ।

पुण्डरीक बोले—देवर्षे ! आपका दर्शन पाकर मैं देहधारियोंमें धन्य हो गया, देवताओंके लिये भी परम पूजनीय बन गया। मेरे माता-पिता कृतार्थ हो गये और आज मैंने जन्म लेनेका फल पा लिया। नारदजी ! मैं आपका भक्त हूँ, मुझपर अनुग्रह कीजिये। मुझे परम गूढ़ रहस्यसे भरे हुए कर्तव्यका उपदेश दीजिये।

नारदजीने कहा—ब्रह्मन् ! इस पृथ्वीपर अनेक शास्त्र, बहुत-से कर्म और नाना प्रकारके धर्म हैं; इसीलिये संसारमें ऐसी विलक्षणता दिखायी देती है। अन्यथा सभी प्राणियोंको या तो केवल सुख-ही-सुख प्राप्त होता या केवल दुःख-ही-दुःख। [कोई सुखी और कोई दुःखी—ऐसा अन्तर देखनेमें नहीं आता।] कुछ लोगोंके मतमें ‘यह जगत् क्षणिक, विज्ञानमात्र, चेतन आत्मासे रहित तथा बाह्य पदार्थोंकी अपेक्षासे शून्य है।’ दूसरे लोग ऐसा कहते हैं कि ‘यह जगत् सदा नित्य अव्यक्त (मूल प्रकृति) से उत्पन्न होता है तथा उसीमें लीन होता है, अतः उपादानकी नित्यताके अनुसार यह भी नित्य ही है। कुछ लोग तत्त्वके विचारमें प्रवृत्त होकर ऐसा निश्चय करते हैं कि ‘आत्मा अनेक, नित्य एवं सर्वगत है।’ दूसरे लोग इस निश्चयपर पहुँचे हैं कि ‘जितने शरीर हैं, उतने ही आत्मा हैं।’ इस मतके अनुसार हाथी और कीड़े आदिके शरीरमें तथा [ब्रह्माप्डरूपी] महान् अण्डमें भी आत्माकी सत्ता मौजूद है। कुछ लोगोंका कहना है कि ‘आज इस जगत्की जैसी अवस्था है, वैसी ही कालान्तरमें भी रहती है। संसारका यह [अनादि] प्रवाह नित्य ही बना रहता है,

भला इसका कर्ता कौन है।’ कुछ अन्य व्यक्तियोंकी रायमें ‘जो-जो वस्तु प्रत्यक्ष उपलब्ध होती है, उसके सिवा और किसी वस्तुकी सत्ता नहीं है; फिर स्वर्ग आदि कहाँ हैं।’ कुछ लोग जगत्को ईश्वरकी सत्तासे रहित समझते हैं और कुछ लोग इसमें ईश्वरको व्यापक मानते हैं। इस प्रकार एक-दूसरेसे अत्यन्त भिन्न विचार रखनेवाले ये सभी लोग सत्यसे विमुख हो रहे हैं। इसी तरह भिन्न-भिन्न मतका मायाजाल फैलानेवाले दूसरे लोग भी बुद्धि और विद्याके अनुसार अपनी-अपनी युक्तियोंको स्थापित करते हुए भेदपूर्ण विचारोंको लेकर भाँति-भाँतिकी बातें करते हैं।

तपोधन ! अब मैं तर्कमें स्थित होकर वास्तविक तत्त्वकी बात कहता हूँ। यह परमार्थ-ज्ञान परम पुण्यमय और भयङ्कर संसारबन्धनका नाश करनेवाला है। देवता आदिसे लेकर मनुष्यपर्यन्त सब लोग उसीको प्रामाणिक मानते हैं, जो परमार्थज्ञानमूलक प्रतीत होता है। किन्तु जो अज्ञानसे मोहित हो रहे हैं, वे लोग अनागत (भविष्य), अतीत (भूत) और दूरवर्ती वस्तुको प्रमाण-रूपमें नहीं स्वीकार करते। उन्हें प्रत्यक्ष वर्तमान वस्तुकी ही प्रामाणिकता मान्य है। परन्तु मुनियोंने प्रत्यक्ष और अनुमानके सिवा उस आगमको भी प्रमाण माना है, जो पूर्वपरम्परासे एक ही रूपमें चला आ रहा हो। वास्तवमें ऐसे आगमको ही परमार्थ वस्तुके साधनमें प्रमाण मानना चाहिये। द्विजश्रेष्ठ ! आगम उस शास्त्रका नाम है, जिसके अध्यासके बलसे राग-द्वेषरूपी मलका नाश करनेवाला उत्तम ज्ञान उत्पन्न होता हो। जो कर्म और उसके फलरूपसे प्रसिद्ध है, जिसका तत्त्व ही विज्ञान और दर्शन नाम धारण करता है, जो सर्वत्र व्यापक और जाति आदिकी कल्पनासे रहित है, जिसे आत्मसंवेदन (आत्मानुभव) रूप, नित्य, सनातन, इन्द्रियातीत, चिन्मय, अमृत, ज्ञेय, अनन्त, अजन्मा, अविकारी, व्यक्त और अव्यक्तरूपमें स्थित, निरञ्जन (निर्मल), सर्वव्यापी श्रीविष्णुके नामसे विख्यात तथा वाणीद्वारा वर्णित समस्त

* सृतः संभाषितो वापि पूजितो वा द्विजोत्तम । पुनाति भगवद्भक्तशाष्टालोऽपि यदृच्छया ॥ (८१ । ५५)

वस्तुओंसे भिन्नरूपमें स्थित माना गया है, वह परमात्मा ही आगमका दूसरा लक्षण है। तात्पर्य यह कि साधन-भूत ज्ञान और साध्यस्वरूप ज्ञेय दोनों ही आगम हैं। वह ज्ञेय परमात्मा योगियोद्वारा ध्यान करनेयोग्य है। परमार्थसे विमुख मनुष्योद्वारा उसका ज्ञान होना असम्भव है। भिन्न-भिन्न बुद्धियोंसे वह यद्यपि भिन्न-सा लक्षित होता है, तथापि आत्मासे भिन्न नहीं है। तात पुण्डरीक ! ध्यान देकर सुनो। सुब्रत ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने मेरे पूछनेपर जिस तत्त्वका उपदेश किया था, वही तुम्हें बतलाता हूँ। एक समय अज, अविनाशी पितामह ब्रह्माजी ब्रह्मलोकमें विराजमान थे। उस समय मैंने विधिपूर्वक उनके चरणोंमें प्रणाम करके पूछा—‘ब्रह्मन् ! कौन-सा ज्ञान सबसे उत्तम बताया गया है ? तथा कौन-सा योग सर्वश्रेष्ठ माना गया है ? यह सब यथार्थरूपसे मुझे बताइये।’

ब्रह्माजीने कहा—तात ! सावधान होकर परम उत्तम ज्ञानयोगका श्रवण करो। यह थोड़े-से वाक्योंमें कहा गया है, किन्तु इसका अर्थ बहुत विस्तृत है। इसकी उपासनामें कोई फ़ेश या परिश्रम नहीं है। जिन्हें गुरु-परम्परासे पञ्चविंशक^१ पुरुष बतलाया गया है, वे ही सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा हैं; इसलिये उन्हींको सम्पूर्ण जगत्के निवासरूप सनातन परमात्मा नारायण कहा जाता है। वे ही संसारकी सृष्टि, संहार और पालनमें लगे रहते हैं। ब्रह्मन् ! ब्रह्मा, शिव और विष्णु—इन तीनों रूपोंमें एक ही देवाधिदेव सनातन पुरुष विराज रहे हैं। अपना हित चाहनेवाले पुरुषको सदा उन्हींकी आराधना करनी चाहिये। जो निःसृह, नित्य संतुष्ट, ज्ञानी, जितेन्द्रिय, ममता-अहङ्कारसे रहित, राग-द्वेषसे शून्य, शान्तचित्त और सब प्रकारकी आसक्तियोंसे पृथक् हो ध्यानयोगमें प्रवृत्त रहते हैं, वे ही उन अक्षय जगदीश्वरको देखते और प्राप्त करते हैं। जो लोग भगवान् नारायणकी शरण ग्रहण कर चुके हैं तथा जिनके मन-प्राण उन्हींके चिन्तनमें लगे हैं, वे ही ज्ञानदृष्टिसे संसारकी वर्तमान

अवस्थाको, कालान्तरमें होनेवाली अवस्थाको, भूत, भविष्य, वर्तमान और दूरको, स्थूल और सूक्ष्मको तथा अन्य ज्ञातव्य बातोंको यथार्थरूपसे देख पाते हैं। इसके विपरीत जिनकी बुद्धि मन्द और अन्तःकरण दूषित है तथा जिनका स्वभाव कुतर्क और अज्ञानसे दुष्ट हो रहा है, ऐसे लोगोंको सब कुछ उलटा ही प्रतीत होता है।

नारदजी कहते हैं—पुण्डरीक ! अब मैं दूसरा प्रसङ्ग सुनाता हूँ। इसे भी सुनो। पूर्वकालमें जगत्के कारणभूत ब्रह्माजीने ही इसका भी उपदेश किया था। एक बार इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता तथा ऋषियोंके पूछनेपर उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ब्रह्माजीने उनके हितकी बात इस प्रकार बतायी थी।



ब्रह्माजीने कहा—देवताओ ! भगवान् नारायण ही सबके आश्रय है। सनातन लोक, यज्ञ तथा नाना प्रकारके शास्त्रोंका भी पर्यवसान नारायणमें ही होता है। छहों अङ्गोंसहित वेद तथा अन्य आगम सर्वव्यापी

१. पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच इन्द्रियोंके विषय, मन, पाँच भूत, अहंकार, महत्तत्त्व और प्रकृति—ये चौबीस तत्त्व हैं, इनसे भिन्न सर्वज्ञ परमात्मा पच्चीसवाँ तत्त्व है; इसलिये वह ‘पञ्चविंशक’ कहलाता है।

विश्वेश्वर श्रीहरिके ही स्वरूप हैं। पृथ्वी आदि पाँचों भूत भी वे ही अविनाशी परमेश्वर हैं। देवताओंसहित सम्पूर्ण जगत्को श्रीविष्णुमय ही जानना चाहिये; तथापि पापी मनुष्य मोहग्रस्त होनेके कारण इस बातको नहीं समझते। यह समस्त चराचर जगत् उन्हींकी मायासे व्याप्त है। जो मनसे भगवान्‌का ही चिन्तन करता है, जिसके प्राण भगवान्‌में ही लगे रहते हैं, वह परमार्थ तत्त्वका ज्ञाता पुरुष ही इस रहस्यको जानता है। सम्पूर्ण भूतोंके ईश्वर भगवान् विष्णु ही तीनों लोकोंका पालन करनेवाले हैं। यह सारा संसार उन्हींमें स्थित है और उन्हींसे उत्पन्न होता है। वे ही रुद्ररूप होकर जगत्का संहार करते हैं। पालनके समय उन्हींको श्रीविष्णु कहते हैं तथा सृष्टिकालमें मैं (ब्रह्मा) और अन्यान्य लोकपाल भी उन्हींकी स्वरूप हैं। वे सबके आधार हैं, परन्तु उनका आधार कोई नहीं है। वे सम्पूर्ण कलाओंसे युक्त होते हुए भी उनसे रहित हैं। वे ही छोटे-बड़े तथा उनसे भिन्न हैं। साथ ही इन सबसे विलक्षण भी हैं; अतः देवताओ! सबका संहार करनेवाले उन श्रीहरिकी ही शरणमें जाओ। वे ही हमारे जन्मदाता पिता हैं। उन्हींको मधुसूदन कहा गया है।

नारदजी कहते हैं—कमलयोनि ब्रह्माजीके यों कहनेपर सब देवताओंने सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी सर्वव्यापी देव भगवान् जनार्दनकी शरण होकर उन्हें प्रणाम किया; अतः विप्रेषे ! तुम भी श्रीनारायणकी आराधनामें लग जाओ। उनके सिवा दूसरा कौन ऐसा परम उदार देवता है, जो भक्तकी माँगी हुई वस्तु दे सके। वे पुरुषोत्तम ही पिता और माता हैं। सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी, देवताओंके भी देवता और जगदीश्वर हैं। तुम उन्हींकी परिचर्या करो। प्रतिदिन आलस्यरहित हो अग्निहोत्र, भिक्षा, तपस्या और स्वाध्यायके द्वारा उन-

देवदेवेश्वर गुरुको ही संतुष्ट करना चाहिये। ब्रह्मेषे ! उन्हीं पुरुषोत्तम नारायणको तुम सब तरहसे अपनाओ।

उन बहुत-से मन्त्रों और उन बहुत-से व्रतोंके द्वारा क्या लेना है। 'ॐ नमो नारायणाय' यह मन्त्र ही सम्पूर्ण अभीष्ट अर्थकी सिद्धि करनेवाला है। द्विजश्रेष्ठ ! ब्राह्मण चीरवस्त्र पहनकर जटा रखा ले या दण्ड धारण करके मूँड़ मुँड़ा ले अथवा आभूषणोंसे विभूषित रहे; ऊपरी चिह्न धर्मका कारण नहीं होता। जो भगवान् नारायणकी शरण ले चुके हैं, वे क्रूर, दुरात्मा और सदा ही पापाचारी रहे हों तो भी परमपदको प्राप्त होते हैं। जिनके पाप दूर हो गये हैं, ऐसे वैष्णव पुरुष कभी पापसे लिप्स नहीं होते। वे अहिंसा-भावके द्वारा अपने मनको काबूमें किये रहते हैं और सम्पूर्ण संसारको पवित्र करते हैं।*

क्षत्रबन्धु नामके राजाने, जो सदा प्राणियोंकी हिंसामें ही लगा रहता था, भगवान् केशवकी शरण लेकर श्रीविष्णुके परमधामको प्राप्त कर लिया। महान् धैर्यशाली राजा अम्बरीषने अत्यन्त कठोर तपस्या की थी और भगवान् पुरुषोत्तमकी आराधना करके उनका साक्षात्कार किया था। राजाओंके भी राजा मित्रासन बड़े तत्त्ववेत्ता थे। उन्होंने भी भगवान् हृषीकेशकी आराधना करके ही उनके वैकुण्ठधामको प्राप्त किया था। उनके सिवा बहुत-से ब्रह्मिष्ठ भी, जो तीक्ष्ण व्रतोंका पालन करनेवाले और शान्तचित्त थे, परमात्मा विष्णुका ध्यान करके परम सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त हुए। पूर्वकालमें परम आहादसे भरे हुए प्रह्लाद भी सम्पूर्ण जीवोंके आश्रयभूत श्रीहरिका सेवन, पूजन और ध्यान करते थे; अतः भगवान् ने ही उनकी संकटोंसे रक्षा की। परम धर्मात्मा और तेजस्वी राजा भरतने भी दीर्घ कालतक इन श्रीविष्णुभगवान्‌की उपासना करके परम मोक्ष प्राप्त कर लिया था।

* किं तैसु मन्त्रैर्बहुभिः किं तैसु बहुभिन्नतैः । ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥

चीरवासा जटी विश्रो दण्डी मुण्डी तथैव च । भूषितो वा द्विजश्रेष्ठ न लिङ्गं धर्मकारणम् ॥

ये नृशंसा दुरात्मानः पापाचारपराः सदा । तेऽपि यन्ति परं स्थानं नारायणपरायणाः ॥

लिप्यन्ते न च पापेन वैष्णवा वीतकिल्बिषाः । पुनन्ति सकलं लोकमहिसाजितमानसाः ॥ (८१ । १०७—११०)

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा सन्नायासी—कोई भी क्यों न हो, भगवान् केशवकी आराधनाको छोड़कर परमगतिको नहीं प्राप्त हो सकता। हजारों जन्म लेनेके पश्चात् जिसकी ऐसी बुद्धि होती है कि 'मैं भगवान् विष्णुके भक्तोंका दास हूँ', वह समस्त पुरुषार्थोंका साधक होता है। वह पुरुष भी निस्सन्देह श्रीविष्णुधाममें जाता है। फिर जो कठोर व्रतोंका पालन करनेवाले पुरुष भगवान् विष्णुमें ही मन-प्राण लगाये रहते हैं, उनकी उत्तम गतिके विषयमें क्या कहना है। अतः तत्त्वका चिन्तन करनेवाले पुरुषोंको चाहिये कि वे नित्य-निरन्तर अनन्य चिन्तसे विश्वव्यापी सनातन परमात्मा नारायणका ध्यान करते रहें।*

भीष्मजी कहते हैं—यों कहकर परोपकारपरायण परमार्थवेत्ता देवर्षि नारद वहीं अन्तर्धान हो गये। नारायणकी शरणमें मङ्गे हुए धर्मात्मा पुण्डरीक भी 'उँ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षरमन्त्रका जप करने लगे। वे अपने हृदयकमलमें अमृतस्वरूप गोविन्दकी स्थापना करके मुखसे सदा यही कहा करते थे कि 'हे विश्वात्मन् ! आप मुझपर प्रसन्न होइये।' द्वन्द्व और परिग्रहसे रहित हो तपोधन पुण्डरीकने उस निर्मल शालग्रामतीर्थमें अकेले ही चिरकालतक निवास किया। स्वप्रमें भी उन्हें केशवके सिवा और कुछ नहीं दिखायी देता था। उनकी निद्रा भी पुरुषार्थ-सिद्धिकी विरोधिनी नहीं थी। तपस्या, ब्रह्मचर्य तथा विशेषतः शौचाचारके पालनसे, जन्म-जन्मान्तरोंके विशुद्ध संस्कारसे तथा सर्वलोकसाक्षी देवाधिदेव श्रीविष्णुके प्रसादसे पापरहित पुण्डरीकने परम उत्तम वैष्णवी सिद्धि प्राप्त कर ली। वे सदा हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा लिये कमलके समान नेत्रोंवाले श्यामसुन्दर पीताम्बरधारी भगवान् अच्युतकी ही झाँकी किया करते थे। मृगों और प्राणियोंकी हिसा करनेवाले सिंह, व्याघ्र

तथा अन्यान्य जीव अपना स्वाभाविक विरोध छोड़कर उनके समीप आते और इच्छानुसार विचरा करते थे। उनकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ प्रसन्न रहती थीं। उनके हृदयमें एक-दूसरेके हितसाधनका मनोरम भाव भर जाता था। वहाँके जलाशय और नदियोंके जल स्वच्छ हो गये थे। सभी ऋतुओंमें वहाँ प्रसन्नता छायी रहती थी। सबकी इन्द्रिय-वृत्तियाँ शुद्ध हो गयी थीं। हवा ऐसी चलती थी, जिसका स्पर्श सुखदायक जान पड़े। वृक्ष फूल और फलोंसे लदे रहते थे। परम बुद्धिमान् पुण्डरीकके लिये सभी पदार्थ अनुकूल हो गये थे। देवदेवेश्वर भक्तवत्सल गोविन्दके प्रसन्न होनेपर उनके लिये समस्त चराचर जगत् प्रसन्न हो गया था।

तदनन्तर एक दिन बुद्धिमान् पुण्डरीकके सामने भगवान् जगन्नाथ प्रकट हुए। हाथोंमें शङ्ख, चक्र और



* ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ मिक्षुकः। केशवाराधनं हित्वा नैव याति परं गतिम्॥

जन्मान्तरसहस्रेषु यस्य स्यान्पतिरीदृशी। दासोऽहं विष्णुभक्तानामिति सर्वार्थसाधकः॥

स याति विष्णुसालोक्यं पुरुषो नात्र संशयः। किं पुनस्तद्वत्प्राणाः पुरुषाः संशितव्रताः॥

अनन्यमनसा नित्यं ध्यातव्यस्तत्त्वचिन्तकैः। नारायणो जगद्व्यापी परमात्मा सनातनः॥ (८१। ११७—१२०)

गदा शोभा पा रहे थे। तेजोमयी आकृति, कमलके समान बड़े-बड़े नेत्र और चन्द्रमण्डलके समान कान्तिमान् मुख। कमरमें करधनी, कानोंमें कुण्डल, गलेमें हार, बाहुओंमें भुजबन्द, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न और श्याम शरीरपर पीतवस्त्र शोभा पा रहे थे। भगवान् कौस्तुभमणिसे विभूषित थे। वनमालासे उनका सारा अङ्ग व्याप्त था। मकराकृत कुण्डल जगमगा रहे थे। दमकते हुए यज्ञोपवीत और नीचेतक लटकती हुई मोतियोंकी मालासे उनकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। देव, सिद्ध, देवेन्द्र, गन्धर्व और मुनि चँवर तथा व्यजन आदिसे भगवान्की सेवा कर रहे थे। पापरहित पुण्डरीकने स्वयं उन देवदेवेश्वर महात्मा जनार्दनको वहाँ उपस्थित देख पहचान लिया और प्रसन्न चित्तसे हाथ जोड़ प्रणाम करके स्तुति करना आरम्भ किया।

पुण्डरीक बोले—सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र नेत्र आप भगवान् विष्णुको नमस्कार है। आप निरञ्जन (निर्मल), नित्य, निर्गुण एवं महात्मा हैं; आपको नमस्कार है। आप समस्त प्राणियोंके ईश्वर हैं भक्तोंका भय एवं पीड़ा दूर करनेके लिये गोविन्द तथा गरुडध्वजरूप धारण करते हैं। जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये अनेक आकार धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। यह सम्पूर्ण विश्व आपमें ही स्थित है। केवल आप ही इसके उपादान कारण हैं। आपने ही जगत्का निर्माण किया है। नाभिसे कमल प्रकट करनेवाले आप भगवान् पद्मनाभको बारंबार नमस्कार है। समस्त वेदान्तोंमें जिनकी आत्मविभूतिका ही श्रवण किया जाता है, उन परमेश्वरको नमस्कार है। नारायण ! आप ही सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी और जगत्के कारण हैं। मेरे हृदय-मन्दिरमें निवास करनेवाले भगवान् शङ्ख-चक्र-गदाधर ! मुझपर प्रसन्न होइये। समस्त प्राणियोंके आदिभूत, इस पृथ्वीको धारण करनेवाले, अनेक रूपधारी तथा सबकी उत्पत्तिके कारण श्रीविष्णुको नमस्कार है। ब्रह्मा आदि देवता और सुरेश्वर भी जिनकी महिमाको नहीं जानते,

जिनकी महिमाका तपस्यासे ही अनुमान हो सकता है, उन परमात्माको नमस्कार है। भगवन् ! आपकी महिमा वाणीका विषय नहीं है, उसे कहना असम्भव है। आप जाति आदिकी कल्पनासे दूर हैं, अतः सदा तत्त्वतः ध्यान करनेके योग्य हैं। पुरुषोत्तम ! आप एक—अद्वितीय होते हुए भी भक्तोंपर कृपा करनेके लिये भेदरूपसे मत्स्य-कूर्म आदि अवतार धारण करके दर्शन देते हैं।

भीष्मजी कहते हैं—इस प्रकार जगत्के स्वामी वीरवर भगवान् पुरुषोत्तमकी स्तुति करके पुण्डरीक उन्हींको निहारने लगे; क्योंकि चिरकालसे वे उनके दर्शनकी लालसा रखते थे। तब तीन पगोंसे त्रिलोकीको नापनेवाले तथा नाभिसे कमल प्रकट करनेवाले भगवान् विष्णुने महाभाग पुण्डरीकसे गम्भीर वाणीमें कहा—‘बेटा पुण्डरीक ! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। महामते ! तुम्हरे मनमें जो भी कामना हो, उसे वरके रूपमें माँगो। मैं अवश्य दूँगा।’

पुण्डरीक बोले—देवेश्वर ! कहाँ मैं अत्यन्त खोटी बुद्धिवाला मनुष्य और कहाँ मेरे परम हितैषी आप। माधव ! जिसमें मेरा हित हो, उसे आप ही दीजिये।

पुण्डरीकके यों कहनेपर भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—‘सुव्रत ! तुम्हारा कल्याण हो। आओ, मेरे ही साथ चलो। तुम मेरे परम उपकारी और सदा मुझमें ही मन लगाये रखनेवाले हो; अतः सर्वदा मेरे साथ ही रहो।’

भीष्मजी कहते हैं—भक्तवत्सल भगवान् श्रीधरने प्रसन्नतापूर्वक जब इस प्रकार कहा, उसी समय आकाशमें देवताओंकी दुंदुभी बज उठी और आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। ब्रह्मा आदि देवता साधुवाद देने लगे। सिद्ध, गन्धर्व और किन्नर गान करने लगे। समस्त लोकोंद्वारा वन्दित देवदेव जगदीश्वरने वहीं पुण्डरीकको अपने साथ ले लिया और गरुड़पर आरुड़ हो वे परम धामको चले गये; इसलिये राजेन्द्र युधिष्ठिर !



तुम भी भगवान् विष्णुकी भक्तिमें लग जाओ। उन्हींमें मन, प्राण लगाये रहो और सदा उनके भक्तोंके हितमें तत्पर रहो। यथायोग्य अर्चना करके पुरुषोत्तमका भजन करो और सब पापोंका नाश करनेवाली भगवान्‌की पवित्र कथा सुनो। राजन्! जिस उपायसे भी भक्तपूजित विश्वात्मा भगवान् विष्णु प्रसन्न हों, वह विस्तारके साथ करो। जो मनुष्य भगवान् नारायणसे विमुख होते हैं, वे सौ अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञोंका अनुष्ठान करके भी उन्हें नहीं पा सकते। जिसने एक बार भी 'हरि' इन दो अक्षरोंका उच्चारण कर लिया, उसने मोक्षतक पहुँचनेके लिये मानो कमर कस ली। जिनके हृदयमें नीलकमलके समान श्यामसुन्दर भगवान् जनार्दन विराजमान हैं, उन्हींको लाभ है, उन्हींकी विजय है; उनकी पराजय कैसे हो सकती है।*

★ —

श्रीगङ्गाजीकी महिमा, वैष्णव पुरुषोंके लक्षण तथा श्रीविष्णु-प्रतिमाके पूजनका माहात्म्य

पार्वती बोलीं—महामते ! श्रीगङ्गाजीके माहात्म्यका पुनः वर्णन कीजिये, जिसे सुनकर सभी मुनि संसारकी ओरसे विरक्त हो जाते हैं।

श्रीमहादेवजीने कहा—देवि ! बुद्धिमें बृहस्पति और पराक्रममें इन्द्रके समान भीष्मजी जब बाणशाय्यापर शयन कर रहे थे, उस समय उन्हें देखनेके लिये अत्रि, वसिष्ठ, भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, गौतम, अगस्त्य और सुमति आदि बहुत-से ऋषियाँ आये। धर्मपुन्न युधिष्ठिर अपने भाइयोंके साथ वहाँ मौजूद थे। उन्होंने उन परम तेजस्वी, जगत्पूज्य ऋषियोंको प्रणाम करके विधिपूर्वक उनका पूजन किया। पूजा ग्रहण करके वे तपोधन महात्मा जब सुखपूर्वक आसनपर बैठ गये, तब युधिष्ठिरने भीष्मजीको प्रणाम करके इस प्रकार पूछा—पितामह ! धर्मार्थी पुरुषोंके नित्य सेवन करनेयोग्य परम पुण्यमय देश, पर्वत और आश्रम



* अश्वमेधशतैरिष्टा वाजपेयशतैरपि । प्राप्तुवन्ति नग नैव नारायणपराङ्मुखः ॥

कौन-कौन-से हैं ?'

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास बतलाया जाता है, जिसमें शिल और उच्छवृत्तिसे जीविका चलानेवाले ब्राह्मणका किसी सिद्ध पुरुषके साथ हुए संवादका वर्णन है। कोई सिद्ध पुरुष समूची पृथ्वीकी परिक्रमा करके किसी उच्छवृत्तिवाले महात्मा गृहस्थके घर गये। वे आत्मविद्याके तत्त्वज्ञ, सदा अपनी इन्द्रियोंको काबूमें रखनेवाले, राग-द्वेषसे रहित, ज्ञान-कर्ममें कुशल, वैष्णवोंमें श्रेष्ठ, वैष्णव-धर्मके पालनमें तत्पर, वैष्णवोंकी निन्दासे दूर रहनेवाले, योगाध्यासी, त्रिकालपूजाके तत्त्वज्ञ, वेदविद्यामें निपुण, धर्माधर्मका विचार करनेवाले, नित्य नियमपूर्वक वेदपाठ करनेवाले और सदा अतिथिपूजामें तत्पर रहनेवाले थे।



सिद्ध पुरुषको आया देख गृहस्थने उनका विधिपूर्वक आतिथ्य-सत्कार किया। तत्यश्चात् उनसे पूछा— द्विजवर ! कौन-कौनसे देश, पर्वत और आश्रम पवित्र है ? मुझे प्रेमपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिये ।

सिद्ध पुरुषने कहा—ब्रह्मन् ! जिनके बीच नदियोंमें श्रेष्ठ त्रिपथगा गङ्गाजी सदा बहती रहती है, वे ही देश, वे ही जनपद, वे ही पर्वत और वे ही आश्रम परम पवित्र हैं। जीव गङ्गाजीका सेवन करके जिस गतिको प्राप्त करता है, उसे तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ अथवा त्यागसे भी नहीं पा सकता।* अपने मनको संयममें रखनेवाले पुरुषोंको गङ्गाजीके जलमें स्नान करनेसे जो संतोष होता है, वह सौ यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी नहीं हो सकता। जैसे सूर्य उदयकालमें तीव्र अन्धकारका नाश करके तेजसे उद्भासित हो उठता है, उसी प्रकार गङ्गाजीके जलमें डुबकी लगानेवाला मनुष्य पापोंका नाश करके पुण्यसे प्रकाशमान होने लगता है। विप्र ! जैसे आगका संयोग पाकर रूईका ढेर जल जाता है, उसी प्रकार गङ्गाका स्नान मनुष्यके सारे पापोंको दूर कर देता है।† जो मनुष्य सूर्यकी किरणोंसे तपे हुए गङ्गाजलका पान करता है, वह सब रोगोंसे मुक्त हो जाता है। जो पुरुष एक पैरसे खड़ा होकर एक हजार चान्द्रायण व्रतोंका अनुष्ठान करता है और जो केवल गङ्गाजीके जलमें डुबकी लगाता है—इन दोनोंमें डुबकी लगानेवाला मनुष्य ही श्रेष्ठ है। जो दस हजार वर्षोंतक नीचे सिर करके लटका रहता है, उसकी अपेक्षा भी वही मनुष्य श्रेष्ठ है जो एक मास भी गङ्गाजलका सेवन कर लेता है। नरश्रेष्ठ ! गङ्गाजीमें स्नान करके मनुष्य देहत्यागके पश्चात् तुरंत वैकुण्ठमें चला जाता है। जो सौ योजन दूरसे भी 'गङ्गा-गङ्गा'का उच्चारण करता है, वह

सकृदुचरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् । बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमन प्रति ॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः । येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥ (८१ । १६३—१६५)

* तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञस्त्यागेन वा पुनः । गति तां न लभेजन्तुर्गङ्गां संसेव्य यां लभेत् ॥ (८२ । २४)

† अपहत्य तमस्तीवं यथा भात्युदये रविः । तथापहत्य पाप्मानं भाति गङ्गाजलमृतः ॥

अग्निं प्राप्य यथा विप्र तूलशिरिंनश्यति । तथा गङ्गावगाहश सर्वपापं व्यपोहति ॥ (८२ । २६-२७)

सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुलोकको चला जाता है।*

ब्रह्महत्या, गोधाती, शराबी और बालहत्या करनेवाला मनुष्य भी गङ्गाजीमें स्नान करके सब पापोंसे छूट जाता और तत्काल देवलोकमें चला जाता है। माधव तथा अक्षयवटका दर्शन और त्रिवेणीमें स्नान करनेवाला पुरुष वैकुण्ठमें जाता है। जैसे सूर्यके उदय होनेपर अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार गङ्गामें स्नान करनेमात्रसे मनुष्यके सारे पाप दूर हो जाते हैं। गङ्गाद्वार, कुशावर्त, बिल्वक, नील पर्वत तथा कनकबल तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यका पुनर्जन्म नहीं होता।†

भीष्मजी कहते हैं—ऐसा जानकर श्रेष्ठ मनुष्यको बारंबार गङ्गास्नान करना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करनेमात्रसे मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। जैसे देवताओंमें विष्णु, यज्ञोंमें अश्वमेध और समस्त वृक्षोंमें अश्वथ्य (पीपल) श्रेष्ठ है, उसी प्रकार नदियोंमें भागीरथी गङ्गा सदा श्रेष्ठ मानी गयी है।

पार्वतीने पूछा—विश्वेश्वर ! वैष्णवोंका लक्षण कैसा बताया गया है तथा उनकी महिमा कैसी है ? प्रधो ! यह बतानेकी कृपा करें।

महादेवजी बोले—देवि ! भक्त पुरुष भगवान् विष्णुकी वस्तु माना गया है, इसलिये इसे 'वैष्णव' कहते हैं। जो शौच, सत्य और क्षमासे युक्त हो, राग-द्वेषसे दूर रहता हो, वेद-विद्याके विचारका ज्ञाता हो, नित्य अग्निहोत्र और अतिथियोंका सत्कार करता हो तथा पिता-माताका भक्त हो, वह वैष्णव कहलाता है। जो कण्ठमें माला धारण करके मुखसे सदा श्रीरामनामका उच्चारण करते, भक्तिपूर्वक भगवान्की लीलाओंका गान करते, पुराणोंके स्वाध्यायमें लगे रहते और सर्वदा यज्ञ किया करते हैं, उन मनुष्योंको वैष्णव जानना चाहिये। वे सब धर्मोंमें सम्मानित होते हैं। जो पापाचारी मनुष्य उन वैष्णवोंकी निन्दा करते हैं, वे मरनेपर बारंबार कुत्सित योनियोंमें पड़ते हैं। जो द्विज धातु अथवा मिट्टीकी बनी

हुई चार हाथोंवाली शोभामयी गोपाल-मूर्तिका सदा पूजन करते हैं, वे पुण्यके भागी होते हैं। जो ब्राह्मण पत्थरकी बनी हुई परम सुन्दर रूपवाली श्रीकृष्ण-प्रतिमाकी पूजा करते हैं, वे पुण्यस्वरूप हैं। जहाँ शालग्रामशिला तथा द्वारकाकी गोमती-चक्राङ्कित शिला हो और उन दोनोंका पूजन किया जाता हो, वहाँ निःसन्देह मुक्ति मौजूद रहती है। वहाँ यदि मन्त्रद्वारा मूर्तिकी स्थापना करके पूजन किया जाय तो वह पूजन कोटिगुना अधिक पुण्य देनेवाला तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करनेवाला होता है। वहाँ भगवान् जनार्दनकी नवधा भक्ति करनी चाहिये। भक्त पुरुषोंको मूर्तिमें भगवान्का ध्यान और पूजन करना चाहिये। सम्भव हो तो भगवन्मूर्तिकी राजोचित उपचारोंसे पूजा करे तथा उस मूर्तिमें दीनों और अनाथोंको एकमात्र शरण देनेवाले, सम्पूर्ण लोकोंके हितकारी एवं बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाले सर्वात्मा भगवान् अधोक्षजका नित्य-निरन्तर स्मरण करे। जो मूर्तिके सम्बन्धमें 'ये गोपाल हैं', 'ये साक्षात् श्रीकृष्ण हैं', 'ये श्रीरामचन्द्रजी हैं'—यों कहता है और इसी भावसे विधिपूर्वक पूजा करता है, वह निश्चय ही भगवान्का भक्त है। श्रेष्ठ वैष्णव द्विजोंको चाहिये कि वे परम भक्तिके साथ सोने, चाँदी, ताँबे अथवा पीतलकी विष्णु-प्रतिमाका निर्माण करायें, जिसके चार भुजा, दो नेत्र, हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा, शरीरपर पीत वस्त्र, गलेमें वनमाला, कानोंमें वैदूर्यमणिके कुण्डल, माथेपर मुकुट और वक्षःस्थलमें कौस्तुभमणिका दिव्य प्रकाश हो। प्रतिमा भारी और शोभासम्पन्न होनी चाहिये। फिर वेद-शास्त्रोक्त मन्त्रोंके द्वारा विशेष समारोहसे उसकी स्थापना कराकर पीछे शास्त्रके अनुसार षोडशोपचारके मन्त्र आदिद्वारा विधिपूर्वक उसका पूजन करना चाहिये। जगत्के स्वामी भगवान् विष्णुके पूजित होनेपर सम्पूर्ण देवताओंकी पूजा हो जाती है। अतः इस प्रकार आदि-अन्तसे रहित, शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले

* गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि । मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ (८२ । ३४-३५)

† गङ्गाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके' नीलपर्वते । स्नात्वा कनकबले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते ॥ (८२ । ३८-३९)

भगवान् श्रीहरिका पूजन करना चाहिये। वे सर्वेश्वर उसे निश्चय ही रौरव नरकमें निवास करना पड़ता है। मैं पुण्यस्वरूप वैष्णवोंको सब कुछ देते हैं। जो शिवकी ही विष्णु हूँ, मैं ही रुद्र हूँ और मैं ही पितामह ब्रह्म हूँ। पूजा नहीं करता और श्रीविष्णुकी निन्दामें तत्पर रहता है, मैं ही सदा सब भूतोंमें निवास किया करता हूँ।



चैत्र और वैशाख मासके विशेष उत्सवका वर्णन, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़में जलस्थ श्रीहरिके पूजनका महत्त्व

पार्वती बोलीं—महेश्वर ! सब महीनोंकी विधिका वर्णन कीजिये। प्रत्येक मासमें कौन-कौन-से महोत्सव करने चाहिये और उनके लिये उत्तम विधि क्या है ? सुरेश्वर ! किस महीनेका कौन देवता है ? किसकी पूजा करनी चाहिये, उस पूजनकी महिमा कैसी है और वह किस तिथिको करना उचित है ?

महादेवजी बोले—देवि ! मैं प्रत्येक मासके उत्सवकी विधि बतलाता हूँ। पहले चैत्र मासके शुक्लपक्षमें विशेषतः एकादशी तिथिको भगवान्‌को झूलेपर बिठाकर पूजा करनी चाहिये। यह दोलरोहणका उत्सव बड़ी भक्तिके साथ और विधिपूर्वक मनाना चाहिये। पार्वती ! जो लोग कलियुगके पाप-दोषका अपहरण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको झूलेपर विराजमान देखते हैं—उस रूपमें उनकी झाँकी करते हैं, वे सहस्रों अपराधोंसे मुक्त हो जाते हैं। करोड़ों जन्मोंमें किये हुए पाप तभीतक मौजूद रहते हैं, जबतक मनुष्य विश्वके स्वामी भगवान् जगन्नाथको झूलेपर बिठाकर उन्हें अपने हाथसे झुलाता नहीं। जो लोग कलियुगमें झूलेपर बैठे हुए जनार्दनका दर्शन करते हैं, वे गोहत्यारे हों तो भी मुक्त हो जाते हैं; फिर औरेंकी तो बात ही क्या है। दोलोत्सवसे प्रसन्न होकर समस्त देवता भगवान् शङ्करको साथ लेकर झूलेपर बैठे हुए श्रीविष्णुकी झाँकी करनेके लिये आते हैं और आँगनमें खड़े हो हर्षमें भरकर स्वयं भी नाचते, गाते एवं बाजे बजाते हैं। वासुकि आदि नाग और इन्द्र आदि देवता भी दर्शनके लिये पथारते हैं। भगवान् विष्णुको झूलेपर विराजमान देख तीनों लोकोंमें उत्सव होने लगता है; अतः सैकड़ों कार्य छोड़कर दोलोत्सवके दिन झूलनका उत्सव करो। जो लोग

झूलेपर बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णके सामने रात्रिमें जागरण करते हैं, उन्हें एक निमेषमें ही सब पुण्योंकी प्राप्ति हो जाती है। सुरेश्वर ! झूलेपर विराजमान दक्षिणाभिमुख भगवान् गोविन्दका एक बार भी दर्शन करके मनुष्य ब्रह्महत्याके पापसे छूट जाता है।

ॐ दोलारूढाय विष्णुहे माधवाय च धीमहि ।
तत्रो देवः प्रचोदयात् ॥

‘झूलेपर बैठे हुए भगवान्‌का तत्त्व जाननेके लिये हम ज्ञान प्राप्त करते हैं। श्रीमाधवका ध्यान करते हैं। अतः वे देव—भगवान् विष्णु हमलोगोंकी बुद्धिको प्रेरित करें।’

इस गायत्री-मन्त्रके द्वारा भगवान्‌का पूजन करना चाहिये। ‘माधवाय नमः’, ‘गोविन्दाय नमः’ और ‘श्रीकण्ठाय नमः’ इन मन्त्रोंसे भी पूजन किया जा सकता है। मन्त्रोच्चारणके साथ विधिपूर्वक पूजन करना उचित है। एकाग्रचित्त होकर गुरुको यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये तथा निरन्तर भक्तिपूर्वक श्रीविष्णुकी लीलाओंका गान करते रहना चाहिये। इससे उत्सव पूर्ण होता है। सुमुखि ! और अधिक कहनेसे क्या लाभ। झूलेपर विराजमान भगवान् विष्णु सब पापोंको हरनेवाले हैं। जहाँ दोलोत्सव होता है, वहाँ देवता, गन्धर्व, किन्नर और ऋषि बहुधा दर्शनके लिये आते हैं। उस समय ‘उ३० नमो भगवते वासुदेवाय’ इस मन्त्रद्वारा षोडशोपचारसे विधिवत् पूजा करनी उचित है। इससे सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण होती हैं।’ सुव्रते ! अङ्गन्यास, करन्यास तथा शरीरन्यास—सब कुछ द्वादशाक्षर मन्त्रसे करना चाहिये और इस आगमोक्त मन्त्रसे ही महान् उत्सवका कार्य सम्पन्न करना चाहिये। झूलेपर सबसे

ऊँचे लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुको बैठाना चाहिये । भगवान् के आगे [कुछ नीची सतहमें] वैष्णवोंको,



नारदादि देवर्षियोंको तथा विश्वकर्मण आदि भक्तोंको स्थापित करना चाहिये । फिर पाँच प्रकारके बाजोंकी आवाजके साथ विद्वान् पुरुष भगवान् की आरती करे और प्रत्येक पहरमें यत्नपूर्वक पूजा भी करता रहे । तत्पश्चात् नारियल तथा सुन्दर केलोंके साथ जलसे भगवान् को अर्घ्य दे । अर्घ्यका मन्त्र इस प्रकार है—

देवदेव जगन्नाथ शङ्खचक्रगदाधर ।
अर्घ्यं गृहणं मे देव कृपां कुरु ममोपरि ॥

(८५।३१)

‘देवताओंके देवता, जगत्के स्वामी तथा शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले दिव्यस्वरूप नारायण ! यह अर्घ्य ग्रहण करके मुझपर कृपा कीजिये ।’

तदनन्तर भगवान् के प्रसादभूत चरणमृत आदि वैष्णवोंको बाटे । वैष्णवजनोंको चाहिये कि वे बाजे बजाकर भगवान् के सामने नृत्य करें और सभी लोग बारी-बारीसे भगवान् को झुलायें । सुरेश्वर ! पृथ्वीपर जो-जो तीर्थ और क्षेत्र हैं, वे सभी उस दिन भगवान् का

दर्शन करने आते हैं—ऐसा जानकर यह महान् उत्सव अवश्य करना चाहिये ।

पार्वती ! वैशाख मासकी पूर्णिमाके दिन वैष्णव पुरुष भक्ति, उत्साह और प्रसन्नताके साथ जगदीश्वर भगवान् को जलमें पधराकर उनकी पूजा करे अथवा एकादशी तिथिको अत्यन्त हर्षमें भरकर गीत, वाद्य तथा नृत्यके साथ यह पुण्यमय महोत्सव करे । भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी लीला-कथाका गान करते हुए ही यह शुभ उत्सव रचाना उचित है । उस समय भगवान् से प्रार्थना-पूर्वक कहे—‘हे देवेश्वर ! इस जलमें शयन कीजिये ।’ जो लोग वर्षाकालके आरंभमें भगवान् जनार्दनको जलमें शयन करते हैं, उन्हें कभी नरककी ज्वालामें नहीं तपना पड़ता । देवेश्वर ! सोने, चाँदी, ताँबे अथवा मिट्टीके बर्तनमें श्रीविष्णुको शयन कराना उचित है । पहले उस बर्तनमें शीतल एवं सुगच्छित जल रखकर विद्वान् पुरुष उस जलके भीतर श्रीविष्णुको स्थापित करे । गोपाल या श्रीराम नामक मूर्तिकी स्थापना करे अथवा शालग्रामशिलाको ही स्थापित करे या और ही कोई प्रतिमा जलमें रखे । उससे होनेवाले पुण्यका अन्त नहीं है । देवि ! इस पृथ्वीपर जबतक पर्वत, लोक और सूर्यकी किरणें विद्यमान हैं, तबतक उसके कुलमें कोई नरकगामी नहीं होता । अतः ज्येष्ठ मासमें श्रीहरिको जलमें पधराकर उनकी पूजा करनी चाहिये । इससे मनुष्य प्रलय-कालतक निष्पाप बना रहता है । ज्येष्ठ और आषाढ़के समय तुलसीदल्से वासित शीतल जलमें भगवान् धरणीधरकी पूजा करे । जो लोग ज्येष्ठ और आषाढ़ मासमें नाना प्रकारके पुष्पोंसे जलमें स्थित श्रीकेशवकी पूजा करते हैं, वे यम-यातनासे छुटकारा पा जाते हैं । भगवान् विष्णु जलके प्रेमी हैं, उन्हें जल बहुत ही प्रिय है; इसीलिये वे जलमें शयन करते हैं । अतः गर्भीकी मौसममें विशेषरूपसे जलमें स्थापित करके ही श्रीहरिका पूजन करना चाहिये । जो शालग्रामशिलाको जलमें विराजमान करके परम भक्तिके साथ उसकी पूजा करता है, वह अपने कुलको पवित्र करनेवाला होता है । पार्वती ! सूर्यके मिथुन और कर्कराशिपर स्थित होनेके

समय जिसने भक्तिपूर्वक जलमें श्रीहरिकी पूजा की है, विशेषतः द्वादशी तिथिको जिसने जलशायी विष्णुका अर्चन किया है, उसने मानो कोटिशत यज्ञोंका अनुष्ठान कर लिया। जो वैशाख मासमें भगवान् माधवको जलपात्रमें स्थापित करके उनका पूजन करते हैं, वे इस पृथ्वीपर मनुष्य नहीं, देवता हैं।

जो द्वादशीकी रातको जलपात्रमें गन्ध आदि डालकर उसमें भगवान् गरुडध्वजकी स्थापना और पूजा करता है, वह मोक्षका भागी होता है। जो श्रद्धारहित, पापात्मा, नास्तिक, संशयात्मा और तर्कमें ही स्थित रहनेवाले हैं, ये पाँच व्यक्ति पूजाके फलके भागी नहीं होते।* इसी प्रकार जो जगत्के स्वामी महेश्वर श्रीविष्णुको सदा जलमें रखकर उनकी पूजा करता है, वह मनुष्य सदाके लिये महापापोंसे मुक्त हो जाता है। देवेश्वर ! 'ॐ ह्वां ह्रीं रामाय नमः' इस मन्त्रसे वहाँ पूजन बताया गया है। 'ॐ ह्रीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय नमः' इस मन्त्रसे जलको अभिमन्त्रित करना चाहिये। तत्पश्चात् निमाङ्कित मन्त्रसे अर्ध निवेदन करे—

— ★ —

देवदेव महाभाग श्रीवत्सकृतलाङ्घन ।
महादेव नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभावन ॥

अर्ध्य गृहाण भो देव मुक्ति मे देहि सर्वदा ।

(८७। २३-२४)

'देवदेव ! महाभाग ! श्रीवत्सके चिह्नोंसे युक्त महान् देवता ! विश्वको उत्पन्न करनेवाले भगवान् नारायण ! मेरा अर्ध्य ग्रहण करें और मुझे सदाके लिये मोक्ष प्रदान करें।'

जो नाना प्रकारके पुष्पोंसे गरुडासन श्रीविष्णुकी पूजा करता है, वह सब बाधाओंसे मुक्त हो श्रीविष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है। द्वादशीको एकाग्रचित्त हो रातमें जागरण करके अविकारी एवं अविनाशी भगवान् विष्णुका भक्तिपूर्वक भजन करे। इस तरह भक्तिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको भक्तिभावसे तत्पर हो भगवान् विष्णुका वैशाखसम्बन्धी उत्सव करना चाहिये, तथा उसमें आगमोक्त मन्त्रद्वारा समस्त विधिका पालन करना चाहिये। महादेवी ! ऐसा करनेसे कोटि यज्ञोंके समान फल मिलता है। इस उत्सवको करनेवाला पुरुष राग-द्वेषसे मुक्त हो महामोहकी निवृत्ति करके इस लोकमें सुख भोगता और अन्तमें श्रीविष्णुके सनातन धामको जाता है। वेदके अध्ययनसे रहित तथा शास्त्रके स्वाध्यायसे शून्य मनुष्य भी श्रीहरिकी भक्ति पाकर वैष्णवपदको प्राप्त होता है।

पवित्रारोपणकी विधि, महिमा तथा भिन्न-भिन्न मासमें श्रीहरिकी पूजामें काम आनेवाले विविध पुष्पोंका वर्णन

श्रीमहादेवजी कहते हैं—देवेश्वर ! श्रावण मास आनेपर पवित्रारोपणका विधान है। इसका पालन करनेपर दिव्य भक्ति उत्पन्न होती है। विद्वान् पुरुषको भक्तिपूर्वक श्रीविष्णुका पवित्रारोपण करना चाहिये। पार्वती ! ऐसा करनेसे वर्षभरकी पूजा सम्पन्न हो जाती है। श्रीविष्णुके लिये पवित्रारोपण करनेपर अपनेको सुख होता है। कपड़ेका सूत, जो किसी ब्राह्मणीका काता हुआ हो अथवा अपने हाथसे तैयार किया हुआ हो, ले आये

और उसीसे पवित्रक बनाये। उपर्युक्त सूतके अभावमें किसी उत्तम शूद्र जातिकी ऋके हाथका काता हुआ सूत भी लिया जा सकता है। यदि ऐसा भी न मिले तो जैसा-तैसा खरीदकर भी ले आना चाहिये। पवित्रारोपणकी विधि रेशमके सूतसे ही करनी चाहिये अथवा चाँदी या सोनेसे श्रीविष्णु देवताके लिये विधिपूर्वक पवित्रक बनाना चाहिये। सब धातुओंके अभावमें विद्वान् पुरुषोंको साधारण सूत ग्रहण करना चाहिये। सूतको

* अश्रद्धानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः। हेतुनिष्ठश्च पञ्चते न पूजाफलभागिनः ॥ (८७। १९)

तिगुना करके उसे जलसे धोना चाहिये । फिर यदि शिवलिङ्गके लिये बनाना हो तो उस लिङ्गके बराबर अथवा किसी प्रतिमाके लिये बनाना हो तो उस प्रतिमाके सिरसे लेकर पैरतकका या घुटनेतकका या नाभिके 'बराबरतकका पवित्रक बनाना चाहिये । इनमें पहला उत्तम, दूसरा मध्यम और तीसरा लघु श्रेणीका है । एक सालमें जितने दिन हों, उतनी संख्यामें या उसके आधी संख्यामें अथवा एक सौ आठकी संख्यामें सूतसे ही उस पवित्रकमें गाँठे लगानी चाहिये । पार्वती ! चौबनकी संख्यामें भी गाँठे लगायी जा सकती हैं । विष्णुप्रतिमाके लिये जो पवित्रक बने; उसे बनमालाके आकारका बना लेना चाहिये । जैसे भी शोभा हो, वह उपाय करना चाहिये । इससे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं । पवित्रक तैयार होनेके पश्चात् भगवान्को अर्पण करना चाहिये ।

पार्वती ! कुबेरके लिये पवित्रारोपण करनेकी तिथि प्रतिपदा बतायी गयी है । लक्ष्मीदेवीके लिये द्वितीया सब तिथियोंमें उत्तम है । तुम्हारे लिये तृतीया बतायी गयी है और गणेशके लिये चतुर्थी । चन्द्रमाके लिये पञ्चमी, कार्तिकेयके लिये षष्ठी, सूर्यके लिये सप्तमी, दुर्गाके लिये अष्टमी, मातृवर्गके लिये नवमी, यमराजके लिये दशमी, अन्य सब देवताओंके लिये एकादशी, लक्ष्मीपति श्रीविष्णुके लिये द्वादशी, कामदेवके लिये त्रयोदशी, मेरे लिये चतुर्दशी तथा ब्रह्माजीके लिये पवित्रकसे पूजन करनेके निमित्त पूर्णिमा तिथि बतायी गयी है । ये भिन्न-भिन्न देवताओंके लिये पवित्रारोपणके योग्य तिथियाँ कही गयी हैं । लघु श्रेणीके पवित्रकमें बारह, मध्यम श्रेणीके पवित्रकमें चौबीस और उत्तम श्रेणीके पवित्रकमें छत्तीस ग्रन्थियाँ कम-से-कम होनी चाहिये । सब पवित्रकोंको कपूर और केसर अथवा चन्दन और हल्दीमें रँगकर बाँसके नये पात्रमें रखना चाहिये और जहाँ भगवान्का पूजन हो, वहाँ उन सबको देवताकी भाँति स्थापित करना चाहिये । पहले देवताकी पूजा करके फिर उन्हें पवित्रकोंमें अधिवासित करना चाहिये । पवित्रकमें अधिवास हो जानेपर पुनः पूजन करना उचित है । पवित्रकोंमें जो देवता अधिवास करते हैं, उनका आगे बतायी जानेवाली

विधिसे संनिधीकरण (समीपतास्थापन) करना चाहिये । ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—ये तीन सूत्रोंके देवता हैं तथा क्रिया, पौरुषी, वीरा, अपराजिता, जया, विजया, मुक्तिदा, सदाशिवा, मनोन्मनी और सर्वतोमुखी—ये दस ग्रन्थियोंकी अधिष्ठात्री देवियाँ हैं । इन सबका सूत्रोंमें आवाहन करना चाहिये । शास्त्रोक्त विधिसे मुद्राद्वारा आवाहन करे । सबका आवाहन करके संनिधीकरणकी क्रिया करे ।

मुद्राद्वारा समीपता स्थापित करनेका नाम संनिधी-करण है । पहले रक्षामुद्रासे संरक्षण करके धेनुमुद्राके द्वारा उन्हें अमृतस्वरूप बनाये । फिर सबसे पहले भगवान्के आगे कलशका जल लेकर 'झीं कृष्णाय' इस मन्त्रसे उन पवित्रकोंका प्रोक्षण करे । तत्पश्चात् गच्छ, धूप, दीप, नैवेद्य और ताम्बूल आदि निवेदन करके षोडशोपचार आदिसे पवित्रकके देवताओंका पूजन करे । फिर उन्हें धूप देकर देवताके सम्मुख हो नमस्कारमुद्राके द्वारा देवताको अभिमन्त्रित करे । उस समय इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—

आमन्त्रितो महादेव सार्थ देव्या गणादिभिः ।
मन्त्रैर्वा लोकपालैश्च सहितः परिचारकैः ॥
आगच्छ भगवन् विष्णो विधेः सम्पूर्तिंहेतवे ।
प्रातस्त्वत्पूजनं कुर्मः सांनिध्यं नियतं कुरु ॥

(८८।२९-३०)

'महान् देवता भगवान् विष्णु ! मन्त्रोद्वारा आवाहन करनेपर आप देवी लक्ष्मी, पार्षद, लोकपाल और परिचारकोंके साथ विधिकी पूर्तिके लिये यहाँ पथारिये । प्रातःकालमें आपकी पूजा करूँगा । यहाँ निश्चितरूपसे सन्त्रिकटता स्थापित कीजिये ।'

तदनन्तर वह गच्छ और पवित्रक भगवान् राघवके अथवा श्रीविष्णुके चरणोंके समीप रख दे, फिर प्रातः-काल नित्यकर्म करके पुण्याह और स्वस्तिवाचन कराये तथा भगवान्की जय-जयकारके साथ घण्टा आदि बाजे और तुरही आदि बजाते हुए पवित्रकोंद्वारा पूजन करे ।

'अँ वासुदेवाय विद्यहे, विष्णुदेवाय धीमहि, तत्रो देवः प्रचोदयात् ।'

श्रीवासुदेवका तत्व जाननेके लिये हम ज्ञान प्राप्त करते हैं, श्रीविष्णुदेवके लिये ध्यान करते हैं, वे देव विष्णु हमारी बुद्धिको प्रेरित करें।'

इस मन्त्रसे अथवा देवताके नाम-मन्त्रसे पवित्रक अर्पण करना चाहिये। इसके बाद भगवान् विष्णुकी महापूजा करे, जिससे सबके आत्मा श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं। चारों ओर विधिपूर्वक दीपमाला जलाकर रखे। भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य—ये चार प्रकारके अन्न नैवेद्यके लिये प्रस्तुत करे। पूर्वपूजित पवित्रक भगवान्को अर्पण कर दे। फिर विशेष भक्तिके साथ श्रीगुरुकी पूजा करे। गुरु महान् देवता है, उन्हें वस्त्र और अलङ्कार आदि अर्पण करके विधिपूर्वक पूजन करना उचित है। गुरु-पूजनके पश्चात् पवित्रक धारण करे। इसके बाद वहाँ जो वैष्णव उपस्थित हों, उन्हें ताम्बूल आदि देकर अग्निको पूर्णाहुति अर्पण करे। अन्तमें लक्ष्मीनिवास भगवान् श्रीकृष्णको कर्म समर्पित करे—

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं तु केशव ।

यत्पूजितं मया सम्यक् सम्पूर्णं यातु मे ध्युवम् ॥

(८८ । ३९)

'हे केशव ! मैंने मन्त्र, क्रिया और भक्तिके बिना जो पूजन किया हो, वह भी निश्चय ही परिपूर्ण हो जाय।'

तदनन्तर देवताओंका विसर्जन करके वैष्णव ब्राह्मणों तथा इष्ट-बन्धुओंके साथ स्वयं भी शुद्ध अन्न भोजन करे। जो उत्तम द्विज इस दिव्य पूजनके प्रसङ्गको सुनते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके परम-पदको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार पवित्रारोपण करनेपर इस पृथ्वीपर जितने भी दान और नियम किये जाते हैं, वे सब परिपूर्ण होते हैं। पवित्रारोपणका विधान उत्सवोंका समाप्त है। इससे ब्रह्महत्यारा भी शुद्ध हो जाता है, इसमें तनिक भी अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। गिरिराजकुमारी ! मैंने जो कुछ कहा है, वह सत्य है, सत्य है, सत्य है। पवित्रारोपणमें जो पुण्य है, वही उसके दर्शनमें भी है। महाभागे ! यदि शुद्ध भी भक्तिभावसे पवित्रारोपणका विधान पूर्ण कर लें तो वे परम धन्य माने जाते हैं। मैं इस भूतलपर धन्य और कृत-कृत्य हूँ; क्योंकि मैंने भगवान् विष्णुकी मोक्षदायिनी भक्ति प्राप्त की है।

पार्वतीने पूछा—देवेश्वर ! विश्वनाथ ! किस मासमें किन-किन फूलोंका भगवान्की पूजामें उपयोग करना चाहिये ? यह बतानेकी कृपा करें।

श्रीमहादेवजी बोले—चैत्र मासमें चम्पा और चमेलीके फूलोंसे छेशहरी केशवका प्रयत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये। दौना, कटसरैया और वरुणवृक्षके फूलोंसे भी जगत्के स्वामी सर्वेश्वर श्रीविष्णुका पूजन किया जा सकता है। मनुष्य एकाग्रचित्त होकर लाल या और किसी रंगके सुन्दर कमलपुष्पोंद्वारा चैत्र मासमें श्रीहरिका पूजन करे। देवि ! वैशाख मासमें जब कि सूर्य वृष राशिपर स्थित हों, केतकी (केवड़े) के पत्ते लेकर महाप्रभु श्रीविष्णुका पूजन करना चाहिये। जिन्होंने भक्तिपूर्वक भगवान्का पूजन कर लिया, उनके ऊपर श्रीहरि संतुष्ट रहते हैं। ज्येष्ठ मास आनेपर नाना प्रकारके फूलोंसे भगवान्की पूजा करनी चाहिये। देवदेवेश्वर श्रीविष्णुके पूजित होनेपर सम्पूर्ण देवताओंकी पूजा सम्पन्न हो जाती है। आषाढ़ मासमें कनेरके फूल, लाल फूल अथवा कमलके फूलोंसे भगवान्की विशेष पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य इस प्रकार भगवान् विष्णुकी पूजा करते हैं, वे पुण्यके भागी होते हैं। जो सुवर्णके समान रंगवाले कदम्बके फूलोंसे सर्वव्यापी गोविन्दकी पूजा करेंगे, उन्हें कभी यमराजका भय नहीं होगा। लक्ष्मीपति श्रीविष्णु श्रीलक्ष्मीजीको पाकर जैसे प्रसन्न रहते हैं, उसी प्रकार कदम्बका फूल पाकर भी विश्वविधाता श्रीहरिको विशेष प्रसन्नता होती है। सुरेश्वर ! तुलसी, श्यामा, तुलसी तथा अशोकके द्वारा सर्वदा पूजित होनेपर श्रीविष्णु नित्यप्रसि कष्टका निवारण करते हैं। जो लोग सावन मास आनेपर अलसीका फूल लेकर अथवा दूर्वादलके द्वारा श्रीजनार्दनकी पूजा करते हैं, उन्हें भगवान् प्रलयकालतक मनोवाञ्छित भोग प्रदान करते रहते हैं। पार्वती ! भादोंके महीनेमें चम्पा, श्वेत पुष्प, रत्तसिंदूरक तथा कहारके पुष्पोंसे पूजन करके मनुष्य सब कामनाओंका फल प्राप्त कर लेता है। आश्विनके शुभ मासमें जुही, चमेली तथा नाना प्रकारके शुभ पुष्पोंद्वारा प्रयत्नपूर्वक भक्तिके साथ सदा श्रीहरिका पूजन करना चाहिये। जो कमलके फूल ले आकर श्रीजनार्दनकी

पूजा करते हैं, वे मानव इस पृथ्वीपर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पदार्थ प्राप्त कर लेते हैं। कार्तिक मास आनेपर परमेश्वर श्रीविष्णुकी पूजा करनी चाहिये। उस समय ऋतुके अनुकूल जितने भी पुष्ट उपलब्ध हों, वे सभी श्रीमाधवको अर्पण करने चाहिये। तिल और तिलके फूल भी चढ़ाये अथवा उन्हींके द्वारा पूजन करे। उनके द्वारा देवेश्वरके पूजित होनेपर मनुष्य अक्षय फलका भागी होता है। जो लोग कार्तिकमें छितवन, मौलसिरी तथा चम्पाके फूलोंसे श्रीजनार्दनकी पूजा करते हैं, वे मनुष्य नहीं, देवता हैं। मार्गशीर्ष मासमें नाना प्रकारके पुष्टों, विशेषतः दिव्य पुष्टों, उत्तम नैवेद्यों, धूपों तथा आरती आदिके द्वारा सदा प्रयत्नपूर्वक भगवान्का

पूजन करे। महादेवि ! पौष मासमें नाना प्रकारके तुलसीदल तथा कस्तूरीमिश्रित जलके द्वारा पूजन करना कल्याणदायक माना गया है। माघ मास आनेपर नाना प्रकारके फूलोंसे भगवान्की पूजा करे। उस समय कपूरसे तथा नाना प्रकारके नैवेद्य एवं लड्डुओंसे पूजा होनी चाहिये। इस प्रकार देवदेवेश्वरके पूजित होनेपर मनुष्य निश्चय ही मनोवाञ्छित फलोंको प्राप्त कर लेता है। फाल्गुनमें भी नवीन पुष्टों अथवा सब प्रकारके फूलोंसे श्रीहरिका अर्चन करना चाहिये। सब तरहके फूल लेकर वसन्तकालकी पूजा सम्पादन करे। इस प्रकार श्रीजगन्नाथके पूजित होनेपर पुरुष श्रीविष्णुकी कृपासे अविनाशी वैकुण्ठपदको प्राप्त कर लेता है।

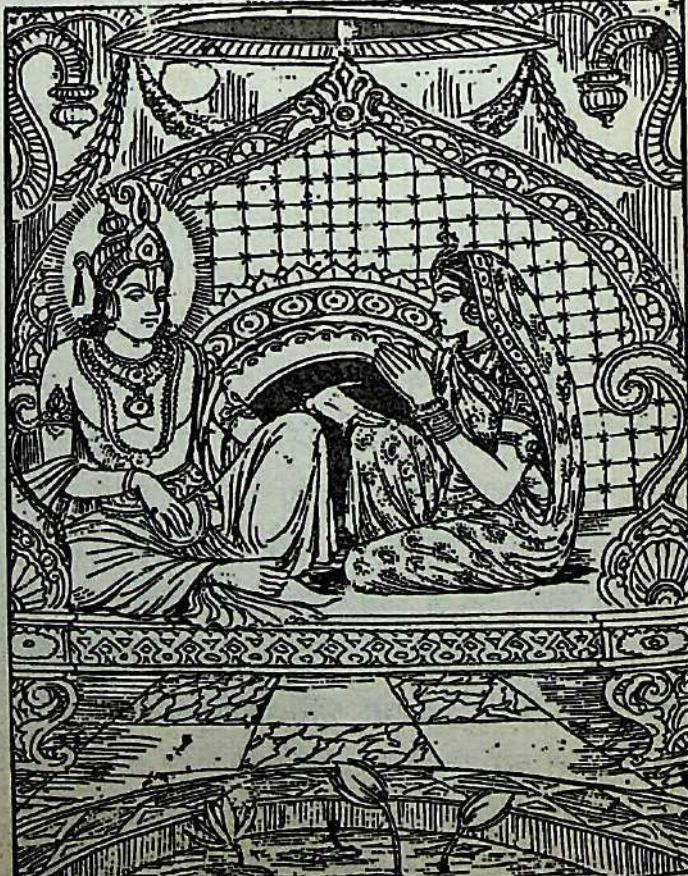


कार्तिक-ब्रतका माहात्म्य—गुणवतीको कार्तिक-ब्रतके पुण्यसे भगवान्की प्राप्ति

सूतजी कहते हैं—एक समयकी बात है, देवर्षि नारद कल्पवृक्षके दिव्य पुष्ट लेकर द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये आये। श्रीकृष्णने स्वागत-पूर्वक नारदजीका सत्कार करते हुए उन्हें पाद्य-अर्ध्य

निवेदन करनेके पश्चात् बैठनेको आसन दिया। नारदजीने वे दिव्य पुष्ट भगवान्को भेंट कर दिये। भगवान् ने अपनी सोलह हजार रानियोंमें उन फूलोंको बाँट दिया।

तदनन्तर एक दिन सत्यभामाने पूछा—‘प्राणनाथ !



मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा दान, तप अथवा ब्रत किया था, जिससे मैं मर्त्यलोकमें जन्म लेकर भी मर्त्यभावसे ऊपर उठ गयी, आपकी अद्दीङ्गिनी हुई।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिये ! एकाग्रचित्त होकर सुनो—तुम पूर्वजन्ममें जो कुछ थीं और जिस पुण्यकारक ब्रतका तुमने अनुष्ठान किया था, वह सब मैं बताता हूँ। सत्ययुगके अन्तमें मायापुरी (हरद्वार) के भीतर अत्रिकुलमें उत्पन्न एक ब्राह्मण रहते थे, जो देवशर्मा नामसे प्रसिद्ध थे। वे वेद-वेदाङ्गोंके पारंगत विद्वान्, अतिथिसेवी, अग्निहोत्रपरायण और सूर्यब्रतके पालनमें तत्पर रहनेवाले थे। प्रतिदिन सूर्यकी आराधना करनेके कारण वे साक्षात् दूसरे सूर्यकी भाँति तेजस्वी जान पड़ते थे। उनकी अवस्था अधिक हो चली थी। ब्राह्मणके कोई पुत्र नहीं था; केवल एक पुत्री थी, जिसका नाम गुणवती था। उन्होंने अपने चन्द्र नामक शिष्यके साथ उसका विवाह कर दिया। वे उस शिष्यको ही पुत्रकी भाँति मानते थे और वह जितेन्द्रिय शिष्य भी उन्हें पिताके ही तुल्य समझता था। एक दिन वे दोनों गुरु-शिष्य कुश और समिधा लानेके लिये गये और हिमालयके शाखाभूत पर्वतके बनमें इधर-उधर भ्रमण करने लगे; इतनेमें ही उन्होंने एक भयङ्कर राक्षसको अपनी ओर आते देखा। उनके सारे अङ्ग भयसे काँपने लगे। वे भागनेमें भी असमर्थ हो गये। तबतक उस कालरूपी राक्षसने उन दोनोंको मार डाला। उस क्षेत्रके प्रभावसे तथा स्वयं धर्मात्मा होनेके कारण उन दोनोंको मेरे पार्षदोंने वैकुण्ठ धाममें पहुँचा दिया। उन्होंने जो जीवनभर सूर्यपूजन आदि किया था, उस कर्मसे मैं उनके ऊपर बहुत संतुष्ट था। सूर्य, शिव, गणेश, विष्णु तथा शक्तिके उपासक भी मुझे ही प्राप्त होते हैं। जैसे वर्षाका जल सब ओरसे समुद्रमें ही जाता है, उसी प्रकार इन पाँचोंके उपासक मेरे ही पास आते हैं। मैं एक ही हूँ, तथापि लीलाके अनुसार भिन्न-भिन्न नाम धारण करके

पाँच रूपोंमें प्रकट हुआ हूँ। ठीक उसी तरह, जैसे कोई देवदत्त नामक एक ही व्यक्ति पुत्र-पिता आदि भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारा जाता है।*

तदनन्तर गुणवतीने जब राक्षसके हाथसे उन दोनोंके मारे जानेका हाल सुना, तब वह पिता और पतिके वियोग-दुःखसे पीड़ित होकर करुणस्वरमें विलाप करने लगी—‘हा नाथ ! हा तात ! आप दोनों मुझे अकेली छोड़कर कहाँ चले गये ? मैं अनाथ बालिका आपके बिना अब क्या करूँगी। अब कौन घरमें बैठी हुई मुझे कुशलहीन दुःखिनी झीका भोजन और वस्त्र आदिके द्वारा पालन करेगा।’ इस प्रकार बारंबार करुणाजनक विलाप करके वह बहुत देरके बाद चुप हुई। गुणवती शुभकर्म करनेवाली थी। उसने घरका सारा सामान बेंचकर अपनी शक्तिके अनुसार पिता और पतिका पारलौकिक कर्म किया। तत्पश्चात् वह उसी नगरमें निवास करने लगी। शान्तभावसे सत्य-शौच आदिके पालनमें तत्पर हो भगवान् विष्णुके भजनमें समय बिताने लगी। उसने अपने जीवनभर दो ब्रतोंका विधिपूर्वक पालन किया—एक तो एकादशीका उपवास और दूसरा कार्तिक मासका भलीभाँति सेवन। प्रिये ! ये दो ब्रंत मुझे बहुत ही प्रिय हैं। ये पुण्य उत्पन्न करनेवाले, पुत्र और सम्पत्तिके दाता तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। जो कार्तिकके महीनेमें सूर्यके तुला राशिपर रहते समय प्रातःकाल स्नान करते हैं, वे महापातकी होनेपर भी मुक्त हो जाते हैं। जो मनुष्य कार्तिकमें स्नान, जागरण, दीपदान और तुलसीवनका पालन करते हैं, वे साक्षात् भगवान् विष्णुके स्वरूप हैं। जो लोग श्रीविष्णुमन्दिरमें झांडू देते, स्वस्तिक आदि निवेदन करते और श्रीविष्णुकी पूजा करते रहते हैं, वे जीवन्मुक्त हैं। जो कार्तिकमें तीन दिन भी इस नियमका पालन करते हैं, वे देवताओंके लिये वन्दनीय हो जाते हैं। फिर जिन लोगोंने आजन्म इस कार्तिकब्रतका

* सौराश्च शैवा गणेशां वैष्णवाः शक्तिपूजकाः । मामेव प्राप्नुवन्तीह वर्षापः सागरं यथा ॥

एकोऽहं पञ्चधा जातः क्रीडया नामभिः किल । देवदत्तो यथा कश्चित्पुनाद्याह्वाननामभिः ॥ (९० । ६३-६४)

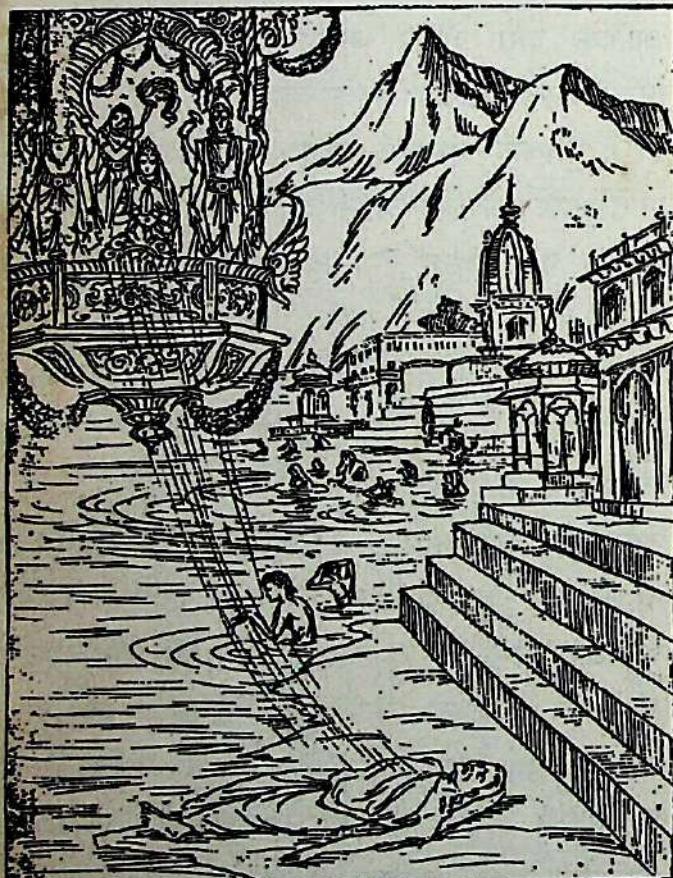
अनुष्ठान किया है, उनके लिये तो कहना ही क्या है।

इस प्रकार गुणवती प्रतिवर्ष कार्तिकका व्रत किया करती थी। वह श्रीविष्णुकी परिचर्यामें नित्य-निरन्तर भक्तिपूर्वक मन लगाये रहती थी। एक समय, जब कि जरावस्थासे उसके सारे अङ्ग दुर्बल हो गये थे और वह स्वयं भी ज्वरसे पीड़ित थी, किसी तरह धीरे-धीरे चलकर गङ्गाके तटपर स्नान करनेके लिये गयी। ज्यों ही उसने जलके भीतर पैर रखा, त्यों ही वह शीतसे पीड़ित हो काँपती हुई गिर पड़ी। उस घबराहटकी दशामें ही उसने देखा, आकाशसे विमान उतर रहा है, जो राश्न,

दिव्यरूप धारण करके उसपर बैठ गयी। उसके लिये चॅवर डुलाया जाने लगा। मेरे पार्षद उसे वैकुण्ठ ले चले। विमानपर बैठी हुई गुणवती प्रज्वलित अग्नि-शिखाके समान तेजस्विनी जान पड़ती थी, कार्तिकव्रतके पुण्यसे उसे मेरे निकट स्थान मिला।

तदनन्तर जब मैं ब्रह्मा आदि देवताओंकी प्रार्थनासे इस पृथ्वीपर आया, तब मेरे पार्षदगण भी मेरे साथ ही आये। भामिनि ! समस्त यादव मेरे पार्षदगण ही हैं। ये मेरे समान गुणोंसे शोभा पानेवाले और मेरे प्रियतम हैं। जो तुम्हारे पिता देवशर्मा थे, वे ही अब सत्राजित हुए हैं। शुभे ! चन्द्रशर्मा ही अक्नूर है और तुम गुणवती हो। कार्तिकव्रतके पुण्यसे तुमने मेरी प्रसन्नताको बहुत बढ़ाया है। पूर्वजन्ममें तुमने मेरे मन्दिरके द्वारपर जो तुलसीकी वाटिका लगा रखी थी, इसीसे तुम्हारे आँगनमें कल्पवृक्ष शोभा पा रहा है। पूर्वकालमें तुमने जो कार्तिकमें दीपदान किया था, उसीके प्रभावसे तुम्हारे घरमें यह स्थिर लक्ष्मी प्राप्त हुई है तथा तुमने जो अपने व्रत आदि सब कर्मोंको पतिस्वरूप श्रीविष्णुकी सेवामें निवेदन किया था, इसीलिये तुम मेरी पत्नी हुई हो। मृत्युपर्यन्त जो कार्तिकव्रतका अनुष्ठान किया है, उसके प्रभावसे तुम्हारा मुझसे कभी भी वियोग नहीं होगा। इस प्रकार जो मनुष्य कार्तिक मासमें व्रतपरायण होते हैं, वे मेरे समीप आते हैं, जिस प्रकार कि तुम मुझे प्रसन्नता देती हुई यहाँ आयी हो। केवल यज्ञ, दान, तप और व्रत करनेवाले मनुष्य कार्तिकव्रतके पुण्यकी एक कला भी नहीं पा सकते।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार जगत्के स्वामी भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे अपने पूर्वजन्मके पुण्यमय वैभवकी बात सुनकर उस समय महारानी सत्यभामाको बड़ा हर्ष हुआ।



चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले श्रीविष्णुरूपधारी पार्षदोंसे सुशोभित है और उसमें गरुड़चिह्नसे अङ्कित ध्वजा फहरा रही है। विमानके निकट आनेपर वह

**कार्तिककी श्रेष्ठताके प्रसङ्गमें शङ्खासुरके वध, वेदोंके उद्धार
तथा 'तीर्थराज' के उत्कर्षकी कथा**

सत्यभामाने पूछा—देवदेवेश्वर ! तिथियोंमें एकादशी और महीनोंमें कार्तिक मास आपको विशेष प्रिय क्यों हैं ? इसका कारण बताइये ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—सत्य ! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है । एकाग्रचित्त होकर सुनो । प्रिये ! पूर्वकालमें राजा पृथुने भी देवर्षि नारदसे ऐसा ही प्रश्न किया था । उस समय सर्वज्ञ मुनिने उन्हें कार्तिक मासकी



श्रेष्ठताका कारण बताया था ।

नारदजी बोले—पूर्वकालमें शङ्ख नामक एक असुर था, जो त्रिलोकीका नाश करनेमें समर्थ तथा महान् बल एवं पराक्रमसे युक्त था । वह समुद्रका पुत्र था । उस महान् असुरने समस्त देवताओंको परास्त करके खर्गसे बाहर कर दिया और इन्द्र आदि लोकपालोंके अधिकार छीन लिये । देवता मेरुगिरिकी दुर्गम कन्दराओंमें छिपकर रहने लगे । शत्रुके अधीन नहीं हुए । तब दैत्यने सोचा कि 'देवता वेदमन्त्रोंके

बलसे प्रबल प्रतीत होते हैं । यह बात मेरी समझमें आ गयी है, अतः मैं वेदोंका ही अपहरण करूँगा । इससे समस्त देवता निर्बल हो जायँगे ।' ऐसा निश्चय करके वह वेदोंको हर ले आया । इधर ब्रह्माजी पूजाकी सामग्री लेकर देवताओंके साथ वैकुण्ठलोकमें जा भगवान् विष्णुकी शरणमें गये । उन्होंने भगवान्को जगानेके लिये गीत गाये और बाजे बजाये । तब भगवान् विष्णु उनकी भक्तिसे संतुष्ट हो जाग उठे । देवताओंने उनका दर्शन किया । वे सहस्रों सूर्योंकि समान कान्तिमान् दिखायी देते थे । उस समय षोडशोपचारसे भगवान्की पूजा करके देवता उनके चरणोंमें पढ़ गये । तब भगवान् लक्ष्मीपतिने उनसे इस प्रकार कहा ।



श्रीविष्णु बोले—देवताओ ! तुम्हारे गीत, वाद्य आदि मङ्गलमय कार्योंसे संतुष्ट हो मैं वर देनेको उद्यत हूँ । तुम्हारी सभी मनोवाञ्छित कामनाओंको पूर्ण करूँगा । कार्तिकके शुक्लपक्षमें 'प्रबोधिनी' एकादशीके

दिन जब एक पहर रात बाकी रहे, उस समय गीत-वाद्य आदि मङ्गलमय विधानोंके द्वारा जो लोग तुम्हारे ही समाज मेरी आराधना करेंगे, वे मुझे प्रसन्न करनेके कारण मेरे समीप आ जायेंगे। शङ्खासुरके द्वारा हरे गये सम्पूर्ण वेद जलमें स्थित हैं। मैं सागरपुत्र शङ्खका वध करके उन्हें ले आऊँगा। आजसे लेकर सदा ही प्रतिवर्ष कार्तिक मासमें मन्त्र, बीज और यज्ञोंसे युक्त वेद जलमें विश्राम करेंगे। आजसे मैं भी इस महीनेमें जलके भीतर निवास करूँगा। तुमलोग भी मुनीश्वरोंको साथ लेकर मेरे साथ आओ। इस समय जो श्रेष्ठ द्विज प्रातःस्नान करते हैं, वे निश्चय ही सम्पूर्ण यज्ञोंका अवभूथस्नान कर चुके। जिन्होंने जीवनभर शास्त्रोक्त विधिसे कार्तिकके उत्तम व्रतका पालन किया हो, वे तुमलोगोंके भी माननीय हों। तुमने एकादशीको मुझे जगाया है; इसलिये यह तिथि मेरे लिये अत्यन्त प्रीतिदायिनी और माननीय होगी। कार्तिक मास और एकादशी तिथि—इन दो व्रतोंका यदि मनुष्य अनुष्ठान करें तो ये मेरे सांनिध्यकी प्राप्ति करानेवाले हैं। इनके समान दूसरा कोई साधन नहीं है।

नारदजी कहते हैं—यह कहकर भगवान् विष्णु

मछलीके समान रूप धारण करके आकाशसें विन्ध्य-पर्वत-निवासी कश्यप मुनिकी अञ्जलिमें गिरे। मुनिने करुणावश उस मत्स्यको अपने कमण्डलमें रख लिया; किन्तु वह उसमें अँट न सका। तब उन्होंने उसे कुएँमें ले जाकर डाल दिया। जब उसमें भी वह न आ सका, तब मुनिने उसे तालाबमें पहुँचा दिया; किन्तु वहाँ भी यही दशा हुई। इस प्रकार उसे अनेक स्थानोंमें रखते हुए अन्ततोगत्वा उन्होंने समुद्रमें डाल दिया। वहाँ भी बढ़कर वह विशालकाय हो गया। तंदनन्तर उन मत्स्यरूपधारी भगवान् विष्णुने शङ्खासुरका वध किया और उस शङ्खको अपने हाथमें लिये वे बदरीवनमें गये। वहाँ सम्पूर्ण ऋषियोंको बुलाकर भगवान् ने इस प्रकार आदेश दिया।

श्रीविष्णु बोले—महर्षियो ! जलके भीतर बिस्ते हुए वेदोंकी खोज करो और रहस्योंसहित उनका पता लगाकर शीघ्र ही ले आओ। तबतक मैं देवताओंके साथ प्रयागमें ठहरता हूँ।

तब तेज और बलसे सम्पन्न समस्त मुनियोंने यज्ञ और बीजसहित वेदमन्त्रोंका उद्घार किया। जिस वेदके जितने मन्त्रको जिस ऋषिने उपलब्ध किया, वही उतने



भागका तबसे ऋषि माना जाने लगा। तदनन्तर सब मुनि एकत्रित होकर प्रयागमें गये तथा ब्रह्माजीसहित भगवान् विष्णुको उन्होंने प्राप्त किये हुए वेद अर्पण कर दिये। यज्ञसहित वेदोंको पाकर ब्रह्माजीको बड़ा हर्ष हुआ तथा उन्होंने देवताओं और ऋषियोंके साथ प्रयागमें अश्वमेध यज्ञ किया। यज्ञकी समाप्ति होनेपर देवता, गर्थर्व, यक्ष, किन्नर तथा गुह्यकोंने पृथ्वीपर साष्टङ्ग प्रणाम करके यह प्रार्थना की।

देवता बोले—देवाधिदेव जगन्नाथ ! प्रभो !! हमारा निवेदन सुनिये। हमलोगोंके लिये यह बड़े हर्षका समय है, अतः आप हमें वरदान दें। रमापते ! इस स्थानपर ब्रह्माजीको खोये हुए वेदोंकी प्राप्ति हुई है तथा आपकी कृपासे हमें भी यज्ञभाग उपलब्ध हुआ है; अतः यह स्थान पृथ्वीपर सबसे अधिक श्रेष्ठ और पुण्यवर्धक हो। इतना ही नहीं, आपके प्रसादसे यह भोग और मोक्षका भी दाता हो। साथ ही यह समय भी महान् पुण्यदायक और ब्रह्महत्यारे आदिकी भी शुद्धि करनेवाला हो। इसमें दिया हुआ सब कुछ अक्षय हो। यही वर हमें दीजिये।

भगवान् विष्णुने कहा—देवताओ ! तुमने जो कुछ कहा है, उसमें मेरी भी सम्मति है; अतः तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो, यह स्थान आजसे 'ब्रह्मक्षेत्र' नाम धारण करे। सूर्यवंशमें उत्पन्न राजा भगीरथ यहाँ गङ्गाको ले आयेंगे और वह सूर्यकन्या यमुनाजीके साथ यहाँ मिलेगी। ब्रह्माजीसहित तुम सम्पूर्ण देवता भी मेरे साथ यहाँ निवास करो। आजसे यह तीर्थ 'तीर्थराज' के नामसे विख्यात होगा। यहाँ किये हुए दान, व्रत, तप, होम, जप और पूजा आदि कर्म अक्षय फलके दाता और सदा मेरी समीपताकी प्राप्ति करनेवाले हों। सात जन्मोंमें

किये हुए ब्रह्महत्या आदि पाप भी इस तीर्थका दर्शन करनेसे तत्काल नष्ट हो जायें। जो धीर पुरुष इस तीर्थमें मेरे समीप मृत्युको प्राप्त होंगे, वे मुझमें ही प्रवेश कर जायेंगे, उनका पुनर्जन्म नहीं होगा। जो यहाँ मेरे आगे पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्ध करेंगे, उनके समस्त पितर मेरे लोकमें चले जायेंगे। यह काल भी मनुष्योंके लिये महान् पुण्यमय तथा उत्तम फल प्रदान करनेवाला होगा। सूर्यके मकर राशिपर स्थित रहते हुए जो लोग यहाँ प्रातःकाल स्नान करेंगे, उनके लिये यह स्थान पापनाशक होगा। मकर राशिपर सूर्यके रहते समय माघमें प्रातःस्नान करनेवाले मनुष्योंके दर्शनमात्रसे सारे पाप उसी प्रकार भाग जाते हैं, जैसे सूर्योदयसे अन्धकार। माघमें जब सूर्य मकर राशिपर स्थित हों, उस समय यहाँ प्रातःस्नान करनेपर मैं मनुष्योंको क्रमशः सालोक्य, सामीप्य और सारूप्य—तीनों प्रकारकी मुक्ति देंगा। मुनीश्वरो ! तुम सब लोग मेरी बात सुनो। यद्यपि मैं सर्वत्र व्यापक हूँ, तो भी बदरीवनमें सदा विशेषरूपसे निवास करता हूँ; अन्यत्र दस वर्षोंतक तपस्या करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही वहाँ एक दिनकी तपस्यासे तुमलोग प्राप्त कर सकते हो। जो नरश्रेष्ठ उस स्थानका दर्शन करते हैं, वे सदाके लिये जीवन्मुक्त हैं। उनके शरीरमें पाप नहीं रहता।

नारदजी कहते हैं—देवदेव भगवान् विष्णु देवताओंसे इस प्रकार कहकर ब्रह्माजीके साथ वहीं अन्तर्धान हो गये तथा इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता भी अपने अंशोंसे वहाँ रहकर स्वरूपसे अन्तर्धान हो गये। जो शुद्ध चित्तवाला श्रेष्ठ पुरुष इस कथाको सुनता या सुनाता है, वह तीर्थराज प्रयाग और बदरीवनकी यात्रा करनेका फल प्राप्त कर लेता है।

————★————

कार्तिक मासमें स्नान और पूजनकी विधि

राजा पृथुने कहा—मुने ! आपने कार्तिक और माघके स्नानका महान् फल बतलाया; अब उनमें किये जानेवाले स्नानकी विधि और नियमोंका भी वर्णन कीजिये, साथ ही उनकी उद्यापन-विधिको भी ठीक-ठीक बताइये ।

नारदजी बोले—राजन् ! तुम भगवान् विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुए हो, तुम्हारे लिये कोई बात अज्ञात नहीं है । तथापि तुम पूछते हो, इसलिये मैं कार्तिकके परम उत्तम माहात्म्यका वर्णन करता हूँ; सुनो । आश्विन मासके शुक्रपक्षमें जो एकांदशी आती है, उसी दिन आलस्य छोड़कर कार्तिकके उत्तम व्रतोंका नियम ग्रहण करे । व्रत करनेवाला पुरुष पहरभर रात बाकी रहे, तभी उठे और जलसहित लोटा लेकर गाँवसे बाहर नैऋत्यकोणकी ओर जाय । दिन और सम्याके समय उत्तर दिशाकी ओर मुँह करके तथा रात हो तो दक्षिणकी ओर मुँह करके मल-मूत्रका त्याग करे । पहले जनेऊको दाहिने कानपर चढ़ा ले और भूमिको तिनकेसे ढककर अपने मस्तकको खखसे आच्छादित कर ले । शौचके समय मुखको यत्पूर्वक मूँदे रखे । न तो थूके और न मुँहसे ऊपरको साँस ही खींचें । मलत्यागके पश्चात् गुदाभाग तथा हाथको इस प्रकार धोये, जिससे मलका लेप और दुर्गच्छ दूर हो जाय । इस कार्यमें आलस्य नहीं करना चाहिये । पाँच बार गुदामें, दस बार बायें हाथमें तथा सात-सात बार दोनों हाथोंमें मिट्टी लगाकर धोये । फिर एक बार लिङ्गमें, तीन बार बायें हाथमें और दो-दो बार दोनों हाथोंमें मिट्टी लगाकर धोये । यह गृहस्थके लिये शौचकी विधि बतायी गयी । ब्रह्मचारीके लिये इससे दूना, वानप्रस्थके लिये तिगुना और संन्यासीके लिये चौगुना करनेका विधान है । रातको दिनकी अपेक्षा आधे शौच (मिट्टी लगाकर धोने) का नियम है । रास्ता चलनेवाले व्यक्तिके लिये, खींके लिये तथा शूद्रोंके लिये उससे भी आधे शौचका विधान है । शौचकर्मसे हीन पुरुषकी समस्त क्रियाएँ निष्फल होती हैं । जो अपने मुँहको

अच्छी तरह साफ नहीं रखता, उसके उच्चारण किये हुए मन्त्र फलदायक नहीं होते; इसलिये प्रयत्नपूर्वक दाँत और जीभकी शुद्धि करनी चाहिये । गृहस्थ पुरुष किसी दूधवाले वृक्षकी बारह अंगुलकी लकड़ी लेकर दाँतुन करे; किन्तु यदि घरमें पिताकी क्षयाह तिथि या व्रत हो तो दाँतुन न करे । दाँतुन करनेके पहले वनस्पति-देवतासे इस प्रकार प्रार्थना करे—

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ।
ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥

(१४ । ११)

‘हे वनस्पते ! आप मुझे आयु, बल, यश, तेज, संतति, पशु, धन, ब्रह्मज्ञान और स्मरणशक्ति प्रदान करें ।’

इस मन्त्रका उच्चारण करके दाँतुनसे दाँत साफ करना चाहिये । प्रतिपदा, अमावास्या, नवमी, षष्ठी, रविवार तथा चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणके दिन दाँतुन नहीं करना चाहिये । व्रत और श्राद्धके दिन भी लकड़ीकी दाँतुन करना मना है, उन दिनों जलके बारह कुल्ले करके मुख शुद्ध करनेका विधान है । कौटीदार वृक्ष, कपास, सिन्धुवार, ब्रह्मवृक्ष (पलाश), बरगद, एरण्ड (रेंड़) और दुर्गच्छयुक्त वृक्षोंकी लकड़ीको दाँतुनके काममें नहीं लेना चाहिये । फिर स्नान करनेके पश्चात् भक्तिपरायण एवं प्रसन्नचित्त होकर चन्दन, फूल और ताम्बूल आदि पूजाकी सामग्री ले भगवान् विष्णु अथवा शिवके मन्दिरमें जाय । वहाँ भगवान्को पृथक्-पृथक् पाद्य-अर्घ्य आदि उपचार अर्पण करके स्तुति करे तथा पुनः नमस्कार करके गीत आदि माझलिक उत्सवका प्रबन्ध करे । ताल, वेणु और मृदङ्ग आदि बाजोंके साथ भगवान्के स्नामने नृत्य और गान करनेवाले लोगोंका भी ताम्बूल आदिके द्वारा सत्कार करे । जो भगवान्के मन्दिरमें गान करते हैं, वे साक्षात् विष्णुरूप हैं । कलियुगमें किये हुए यज्ञ, दान और तप भक्तिसे युक्त होनेपर ही जगद्गुरु भगवान्को संतोष देनेवाले होते हैं ।

राजन् ! एक बार मैंने भगवान्‌से पूछा—‘देवेश्वर ! आप कहाँ निवास करते हैं ?’ तो वे मेरी भक्तिसे संतुष्ट होकर बोले—‘नारद ! न तो मैं वैकुण्ठमें निवास करता हूँ और न योगियोंके हृदयमें । मेरे भक्त जहाँ मेरा गुण-गान करते हैं, वहीं मैं भी रहता हूँ।’* यदि मनुष्य गन्ध, पुष्प आदिके द्वारा मेरे भक्तोंका पूजन करते हैं तो उससे मुझे जितनी अधिक प्रसन्नता होती है, उतनी स्वयं मेरी पूजा करनेसे भी नहीं होती । जो मूर्ख मानव मेरी पुराण-कथा और मेरे भक्तोंका गान सुनकर निन्दा करते हैं, वे मेरे द्वेषके पात्र होते हैं ।

शिरीष, (सिरस), उच्मत (धतुरा), गिरिजा (मातुलुङ्गी), मल्लिका (मालती), सेमल, मदार और कनेरके फूलोंसे तथा अक्षतोंके द्वारा श्रीविष्णुकी पूजा नहीं करनी चाहिये । जवा, कुन्द, सिरस, जूही, मालती और केवड़ेके फूलोंसे श्रीशङ्करजीका पूजन नहीं करना चाहिये । लक्ष्मी-प्राप्तिकी इच्छा रखनेवाला पुरुष तुलसीदलसे गणेशका, दूर्वादलसे दुर्गाका तथा अगस्त्यके फूलोंसे सूर्यदेवका पूजन न करे ।† इनके अतिरिक्त जो उत्तम पुष्प हैं, वे सदा सब देवताओंकी पूजाके लिये प्रशस्त माने गये हैं । इस प्रकार पूजा-विधि पूर्ण करके देवदेव भगवान्‌से क्षमा-प्रार्थना करे—

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर ।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥

(१४ । ३०)

‘देवेश्वर ! देव ! मेरे द्वारा किये गये आपके पूजनमें जो मन्त्र, विधि तथा भक्तिकी न्यूनता हुई हो, वह सब आपकी कृपासे पूर्ण हो जाय ।’

तदनन्तर प्रदक्षिणा करके दण्डवत् प्रणाम करे तथा पुनः भगवान्‌से त्रुटियोंके लिये क्षमा-याचना करते हुए गायन आदि समाप्त करे । जो इस कार्तिककी रात्रिमें

भगवान्‌विष्णु अथवा शिवकी भलीभाँति पूजा करते हैं, वे मनुष्य पापहीन हो अपने पूर्वजोंके साथ श्रीविष्णुके धाममें जाते हैं ।

नारदजी कहते हैं—जब दो घड़ी रात बाकी रहे, तब तिल, कुश, अक्षत, फूल और चन्दन आदि लेकर पवित्रतापूर्वक जलाशयके तटपर जाय । मनुष्योंका खुदवाया हुआ पोखरा हो अथवा कोई देवकुण्ड हो या नदी अथवा उसका संगम हो—इनमें उत्तरोत्तर दसगुने पुण्यकी प्राप्ति होती है तथा यदि तीर्थमें स्नान करे तो उसका अनन्त फल माना गया है । तत्पश्चात् भगवान्‌विष्णुका स्मरण करके स्नानका संकल्प करे तथा तीर्थ आदिके देवताओंको क्रमशः अर्घ्य आदि निवेदन करे । फिर भगवान्‌विष्णुको अर्घ्य देते हुए निष्प्राङ्कित मन्त्रका पाठ करे—

नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने ।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश गृहणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥

× × ×

कार्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन ।
प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह ॥
ध्यात्वाऽहं त्वां च देवेश जलेऽस्मिन् स्नातुमुद्यतः ।
तव प्रसादात्पापं मे दामोदर विनश्यतु ॥

(१५ । ४, ७, ८)

‘भगवान् पद्मनाभको नमस्कार है । जलमें शयन करनेवाले श्रीनारायणको नमस्कार है । हृषीकेश ! आपको बारंबार नमस्कार है । यह अर्घ्य ग्रहण कीजिये । जनार्दन ! देवेश ! लक्ष्मीसहित दामोदर ! मैं आपकी प्रसन्नताके लिये कार्तिकमें प्रातःस्नान करूँगा । देवेश्वर ! आपका ध्यान करके मैं इस जलमें स्नान करनेको उद्यत हूँ । दामोदर ! आपकी कृपासे मेरा पाप नष्ट हो जाय ।’

तत्पश्चात् राधासहित भगवान् श्रीकृष्णको निष्प्राङ्कित मन्त्रसे अर्घ्य दे—

* नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न वै । मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥ (१४ । २३)

† शिरीषोन्मत्तगिरिजामल्लिकाशालमलीभवैः । अर्कजैः कर्णिकारैश्च विष्णुर्नार्थस्तथाक्षतैः ॥

जपाकुन्दशिरीषैश्च यूथिकामालतीभवैः । केतकीभवपुष्पैश्च नैवार्थ्यः शङ्करस्तथा ॥

गणेशं तुलसीपत्रैदुर्गा नैव तु दूर्वया । मुनिपुष्पैस्तथा सूर्य लक्ष्मीकामो न चार्चयेत् ॥ (१४ । २६—२८)

नित्ये नैमित्तिके कृष्ण कार्तिके पापनाशने ।

गृहणार्थ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥

(९५।९)

‘श्रीराधासहित भगवान् श्रीकृष्ण ! नित्य और नैमित्तिक कर्मरूप इस पापनाशक कार्तिकस्नानके ब्रतके निमित्त मेरा दिया हुआ यह अर्थ्य स्वीकार करें ।’

इसके बाद ब्रत करनेवाला पुरुष भागीरथी, श्रीविष्णु, शिव और सूर्यका स्मरण करके नाभिके बराबर जलमें खड़ा हो विधिपूर्वक स्नान करे । गृहस्थ पुरुषको तिल और आँवलेका चूर्ण लगाकर स्नान करना चाहिये । बनवासी संन्यासी तुलसीके मूलकी मिट्टी लगाकर स्नान करे । सप्तमी, अमावास्या, नवमी, द्वितीया, दशमी और त्रयोदशीको आँवलेके फल और तिलके द्वारा स्नान करना निषिद्ध है । पहले मल-स्नान करे अर्थात् शरीरको खूब मल-मलकर उसकी मैल छुड़ाये । उसके बाद मन्त्र-स्नान करे । रुग्नी और शूद्रोंको वेदोत्तम मन्त्रोंसे स्नान नहीं करना चाहिये । उनके लिये पौराणिक मन्त्रोंका उपयोग बताया गया है ।

ब्रती पुरुष अपने हाथमें पवित्रक धारण करके निप्राङ्गित मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए स्नान करे—

त्रिधाभूदेवकार्यर्थं यः पुरा भक्तिभावितः ।
स विष्णुः सर्वपापघ्नः पुनातु कृपयात्र माम् ॥
विष्णोराजामनुप्राप्य कार्तिकब्रतकारणात् ।
क्षमन्तु देवास्ते सर्वे मां पुनन्तु सवासवाः ॥
वेदमन्त्राः सबीजाश्च सरहस्या मखान्विताः ।
कश्यपाद्याश्च मुनयो मां पुनन्तु सदैव ते ॥
गङ्गाद्याः सरितः सर्वस्तीर्थानि जलदा नदाः ।
ससप्तसागराः सर्वे मां पुनन्तु सदैव ते ॥
पतिव्रतास्त्वदित्यद्या यक्षाः सिद्धाः सपत्रगाः ।
ओषध्यः पर्वताश्रापि मां पुनन्तु त्रिलोकजाः ॥

(९५।१४—१८)

‘जो पूर्वकालमें भक्तिपूर्वक चिन्तन करनेपर देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये तीन स्वरूपोंमें प्रकट हुए तथा जो समस्त पापोंका नाश करनेवाले हैं, वे भगवान् विष्णु यहाँ कृपापूर्वक मुझे पवित्र करें ।

श्रीविष्णुकी आज्ञा प्राप्त करके कार्तिकका ब्रत करनेके कारण यदि मुझसे कोई त्रुटि हो जाय तो उसके लिये समस्त देवता मुझे क्षमा करें तथा इन्द्र आदि देवता मुझे पवित्र करें । बीज, रहस्य और यज्ञोंसहित वेदमन्त्र और कश्यप आदि मुनि मुझे सदा ही पवित्र करें । गङ्गा आदि सम्पूर्ण नदियाँ, तीर्थ, मेघ, नद और सात समुद्र—ये सभी मुझे सर्वदा पवित्र करें । अदिति आदि पतिव्रताएँ, यक्ष, सिद्ध, नाग तथा त्रिभुवनकी ओषधि और पर्वत भी मुझे पवित्र करें ।’

स्नानके पश्चात् विधिपूर्वक देवता, त्रृष्णि, मनुष्य (सनकादि) तथा पितरोंका तर्पण करे । कार्तिक मासमें पितृ-तर्पणके समय जितने तिलोंका उपयोग किया जाता है, उतने ही वर्षोंतक पितर स्वर्गलोकमें निवास करते हैं । तदनन्तर जलसे बाहर निकलकर ब्रती मनुष्य पवित्र वस्त्र धारण करे और प्रातःकालोचित नित्यकर्म पूरा करके श्रीहरिका पूजन करे । फिर भक्तिसे भगवान्‌में मन लगाकर तीर्थों और देवताओंका स्मरण करते हुए पुनः गन्ध, पुष्प और फलसे युक्त अर्थ्य निवेदन करे । अर्थका मन्त्र इस प्रकार है—

ब्रतिनः कार्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्यम् ।

गृहणार्थ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥

(९५।२३)

‘भगवन् ! मैं कार्तिक मासमें स्नानका ब्रत लेकर विधिपूर्वक स्नान कर चुका हूँ । मेरे दिये हुए इस अर्थ्यको आप श्रीराधिकारीके साथ स्वीकार करें ।’

इसके बाद वेदविद्याके पारंगत ब्राह्मणोंका गन्ध, पुष्प और ताम्बूलके द्वारा भक्तिपूर्वक पूजन करे और बारंबार उनके चरणोंमें मस्तक झुकावे । ब्राह्मणके दाहिने पैरमें सम्पूर्ण तीर्थ, मुखमें वेद और समस्त अङ्गोंमें देवता निवास करते हैं; अतः ब्राह्मणके पूजन करनेसे इन सबकी पूजा हो जाती है । इसके पश्चात् हरिप्रिया भगवती तुलसीकी पूजा करे । प्रयागमें स्नान करने, काशीमें मृत्यु होने और वेदोंके स्वाध्याय करनेसे जो फल प्राप्त होता है; वह सब श्रीतुलसीके पूजनसे मिल जाता है; अतः एकाग्रचित्त होकर निप्राङ्गित मन्त्रसे तुलसीकी प्रदक्षिणा और नमस्कार करे—

देवैस्त्वं निर्मिता पूर्वमर्चिताऽसि मुनीश्वरैः ।

नमो नमस्ते तुलसि पापं हर हरिप्रिये ॥

(१५।३०)

‘हरिप्रिया तुलसीदेवी ! पूर्वकालमें देवताओंने तुम्हें उत्पन्न किया और मुनीश्वरोंने तुम्हारी पूजा की । तुम्हें बारंबार नमस्कार है । मेरे सारे पाप हर लो ।’

तुलसी-पूजनके पश्चात् ब्रत करनेवाला भक्तिमान् पुरुष चित्तको एकाग्र करके भगवान् विष्णुकी पौराणिक कथा सुने तथा कथा-वाचक विद्वान् ब्राह्मण अथवा मुनिकी पूजा करे । जो मनुष्य भक्तियुक्त होकर पूर्वोक्त सम्पूर्ण विधियोंका भलीभाँति पालन करता है, वह अन्तमें भगवान् नारायणके परमधाममें जाता है ।

कार्तिक-ब्रतके नियम और उद्यापनकी विधि

नारदजी कहते हैं—राजन् ! कार्तिकका ब्रत करनेवाले पुरुषोंके लिये जो नियम बताये गये हैं, उनका मैं संक्षेपसे वर्णन करता हूँ । ध्यान देकर सुनो । अन्नदान देना, गौओंको ग्रास अर्पण करना, वैष्णव पुरुषोंके साथ वार्तालाप करना तथा दूसरेके दीपकको जंलाना या उकसाना—इन सब कार्योंसे मनीषी पुरुष धर्मकी प्राप्ति बतलाते हैं । बुद्धिमान् पुरुष दूसरेके अन्न, दूसरेकी शश्या, दूसरेकी निन्दा और दूसरेकी खींका सदा ही परित्याग करे तथा कार्तिकमें तो इन्हें त्यागनेकी विशेषरूपसे चेष्टा करे । उड़द, मधु, सौवीरक तथा राजमाष (किराव) आदि अन्न कार्तिकका ब्रत करनेवाले मनुष्यको नहीं खाने चाहिये । दाल, तिलका तेल, भाव-दूषित तथा शब्द-दूषित अन्नका भी ब्रती मनुष्य परित्याग करे । कार्तिकका ब्रत करनेवाला पुरुष देवता, वेद, द्विज, गुरु, गौ, ब्रती, खीं, राजा तथा महापुरुषोंकी निन्दा छोड़ दे । बकरी, गाय और भैंसके दूधको छोड़कर अन्य सभी पशुओंका दूध मांसके समान वर्जित है । ब्राह्मणोंके खरीदे हुए सभी प्रकारके रस, ताँबेके पात्रमें रखा हुआ गायका दूध, दही और घी, गढ़ेका पानी और केवल अपने लिये बनाया हुआ भोजन—इन सबको विद्वान् पुरुषोंने आमिषके तुल्य माना है । ब्रती मनुष्योंको सदा ही ब्रह्मचर्यका पालन, भूमिपर शयन, पत्तलमें भोजन और दिनके चौथे पहरमें एक बार अन्न ग्रहण करना चाहिये । कार्तिकका ब्रत करनेवाला मानव व्याज, लहसुन, हींग, छत्राक (गोबर-छत्ता) गाजर, नालिक (भस्सींड), मूली और साग खाना छोड़ दे । लौकी, भाँटा

(बैगन), कोहड़ा, भतुआ, लसोड़ा और कैथ भी त्याग दे । ब्रती पुरुष रजस्वलाका स्पर्श न करे; म्लेच्छ, पतित, ब्रतहीन, ब्राह्मणद्वारा ही तथा वेदके अनधिकारी पुरुषोंसे कभी वार्तालाप न करे । इन लोगोंने जिस अन्नको देख लिया हो, उस अन्नको भी न खाय; कौओंका जूठा किया हुआ, सूतकयुक्त घरका बना हुआ, दो बार पकाया तथा जला हुआ अन्न भी वैष्णवब्रतका पालन करनेवाले पुरुषोंके लिये अखाद्य है । जो कार्तिकमें तेल लगाना, खाटपर सोना, दूसरेका अन्न लेना और काँसके बर्तनमें भोजन करना छोड़ देता है, उसीका ब्रत परिपूर्ण होता है । ब्रती पुरुष प्रत्येक ब्रतमें सदा ही पूर्वोक्त निषिद्ध वस्तुओंका त्याग करे तथा अपनी शक्तिके अनुसार भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये कृच्छ्र आदि ब्रतोंका अनुष्ठान करता रहे । गृहस्थ पुरुष रविवारके दिन सदा ही आँवलेके फलका त्याग करे ।

इसी प्रकार माघमें भी ब्रती पुरुष उक्त नियमोंका पालन करे और श्रीहरिके समीप शास्त्रविहित जागरण भी करे । यथोक्त नियमोंके पालनमें लगे हुए कार्तिकब्रत करनेवाले मनुष्यको देखकर यमदूत उसी प्रकार भागते हैं, जैसे सिंहसे पीड़ित हाथी । भगवान् विष्णुके इस ब्रतको सौ यज्ञोंकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ जानना चाहिये; क्योंकि यज्ञ करनेवाला पुरुष स्वर्गलोकको पाता है और कार्तिकका ब्रत करनेवाला मनुष्य वैकुण्ठधामको । इस पृथ्वीपर भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले जितने भी क्षेत्र हैं, वे सभी कार्तिकका ब्रत करनेवाले पुरुषके शरीरमें निवास करते हैं । मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा

होनेवाला जो कुछ भी दुष्कर्म या दुःखप्र होता है, वह कार्तिक-ब्रतमें लगे हुए पुरुषको देखकर तत्काल नष्ट हो जाता है। इन्ह आदि देवता भगवान् विष्णुकी आज्ञासे प्रेरित होकर कार्तिकका ब्रत करनेवाले पुरुषकी निरन्तर रक्षा करते रहते हैं—ठीक उसी तरह, जैसे सेवक राजाकी रक्षा करते हैं। जहाँ सबके द्वारा सम्मानित वैष्णव-ब्रतका अनुष्ठान करनेवाला पुरुष नित्य निवास करता है, वहाँ ग्रह, भूत, पिशाच आदि नहीं रहते।

राजन् ! अब मैं कार्तिक-ब्रतके अनुष्ठानमें लगे हुए पुरुषके लिये उत्तम उद्यापन-विधिका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ। तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। ब्रती मनुष्य कार्तिक शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको ब्रतकी पूर्ति तथा भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये उद्यापन करे। तुलसीजीके ऊपर एक सुन्दर मण्डप बनाये, जिसमें चार दरवाजे बने हों; उस मण्डपमें सुन्दर बंदनवार लगाकर उसे पुष्टमय चँवरसे सुशोभित करे। चारों दरवाजोंपर पृथक्-पृथक् मिट्टीके चार द्वारपाल—पुण्यशील, सुशील, जय और विजयकी स्थापना करके उन सबका पूजन करे। तुलसीके मूलभागमें वेदीपर सर्वतोभद्र मण्डल बनाये, जो चार रंगोंसे रञ्जित होकर सुन्दर शोभासम्पन्न और अत्यन्त मनोहर प्रतीत होता हो। सर्वतोभद्रके ऊपर पञ्चरत्नयुक्त कलशकी स्थापना करे। उसके ऊपर नारियलका महान् फल रख दें। इस प्रकार कलश स्थापित करके उसके ऊपर समुद्रकन्या लक्ष्मीजीके साथ शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले पीताम्बरधारी देवेश्वर श्रीविष्णुकी पूजा करे। सर्वतोभद्रके मण्डलमें इन्ह आदि लोकपालोंका भी पूजन करना चाहिये। भगवान् द्वादशीको शयनसे उठे, त्रयोदशीको देवताओंने उनका दर्शन किया और चतुर्दशीको सबने उनकी पूजा की; इसीलिये इस समय भी उसी तिथिको इनकी पूजा की जाती है। उस दिन शान्त एवं शुद्धचित्त होकर भक्तिपूर्वक उपवास करना चाहिये तथा आचार्यकी आज्ञासे देवदेवेश्वर श्रीविष्णुकी सुवर्णमयी प्रतिमाका पोडशोपचारद्वारा नाना प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थ प्रस्तुत करते हुए पूजन करना चाहिये। रात्रिमें गीत और

वाद्य आदि माझलिक उत्सवोंके साथ भगवान्के समीप जागरण करना चाहिये। जो भगवान् विष्णुके समीप जागरणकालमें भक्तिपूर्वक गान करते हैं, वे सौ जन्मोंकी पापराशिसे मुक्त हो जाते हैं। भगवान् विष्णुके निमित्त जागरणकालमें गीत-वाद्य करनेवालों तथा सहस्र गोदान करनेवालोंको भी समान फलकी ही प्राप्ति बतलायी गयी है। जो रात्रिमें वासुदेवके समक्ष जागरण करते समय भगवान् विष्णुके चरित्रोंका पाठ करके वैष्णव पुरुषोंका मनोरञ्जन करता है तथा मनमानी बातें नहीं करता, उसे प्रतिदिन कोटि तीर्थोंकि सेवनके समान पुण्य प्राप्त होता है।

रात्रि-जागरणके पश्चात् पूर्णिमाको प्रातःकाल अपनी शक्तिके अनुसार तीस या एक सपलीक ब्राह्मणको भोजनके लिये निमन्त्रित करे। उस दिन किया हुआ दान, होम और जप अक्षय फल देनेवाला माना गया है; अतः ब्रती पुरुष खीर आदिके द्वारा ब्राह्मणोंको भलीभाँति भोजन कराये। ‘अतो देवाः’ आदि दो मन्त्रोंसे देवदेव भगवान् विष्णु तथा अन्य देवताओंकी प्रसन्नताके लिये पृथक्-पृथक् तिल और खीरकी आहुति छोड़े। फिर यथाशक्ति दक्षिणा दे उन्हें प्रणाम करे। इसके बाद भगवान् विष्णु, देवगण तथा तुलसीका पुनः पूजन करे। कपिला गायकी विधिपूर्वक पूजा करे और ब्रतका उपदेश करनेवाले सपलीक आचार्यका भी वस्त्र तथा आभूषणों आदिके द्वारा पूजन करे। अन्तमें सब ब्राह्मणोंसे क्षमा-प्रार्थना करे—‘विप्रवरो ! आपलोगोंकी कृपासे देवेश्वर भगवान् विष्णु मुझपर सदा प्रसन्न रहें। मैंने गत सात जन्मोंमें जो पाप किये हों, वे सब इस ब्रतके प्रभावसे नष्ट हो जायें। प्रतिदिन भगवान्के पूजनसे मेरे सम्पूर्ण मनोरथ सफल हों तथा इस देहके अन्त होनेपर मैं अत्यन्त दुर्लभ वैकुण्ठधामको प्राप्त करूँ।’

इस प्रकार क्षमायाचना करके ब्राह्मणोंको प्रसन्न करनेके पश्चात् उन्हें विदा करे और गौसहित भगवान् विष्णुकी सुवर्णमयी प्रतिमा आचार्यको दान कर दे। तत्पश्चात् भक्त पुरुष सुहदों और गुरुजनोंके साथ स्वयं भी भोजन करे। कार्तिक हो या माघ, उसके लिये ऐसी ही विधि बतायी गयी है। जो मनुष्य इस प्रकार कार्तिकके

उत्तम ब्रतका पालन करता है, वह निष्पाप एवं मुक्त होकर भगवान् विष्णुकी समीपता प्राप्त करता है। सम्पूर्ण ब्रतों, तीर्थों और दानोंसे जो फल मिलता है, वही इस कार्तिक-ब्रतका विधिपूर्वक पालन करनेसे करोड़गुना होकर मिलता है। जो कार्तिक-ब्रतका अनुष्ठान करते हुए भगवान् विष्णुकी भक्तिमें तत्पर होते हैं, वे धन्य हैं, वे सदा पूज्य हैं तथा उन्हें यहाँ सब प्रकारके शुभफलोंका उदय होता है। देहमें स्थित हुए पाप उस मनुष्यके भयसे काँप उठते हैं और आपसमें कहने लगते हैं—‘अरे ! यह तो कार्तिकका ब्रत करने लगा, अब हम कहाँ जायँगे।’ जो कार्तिक-ब्रतके इन नियमोंको भक्तिपूर्वक सुनता तथा वैष्णव पुरुषके आगे इनका वर्णन करता है, वे दोनों ही उत्तम ब्रत करनेका फल पाते हैं और उनका दर्शन करनेसे मनुष्योंके पापोंका नाश हो जाता है।

नारदजी कहते हैं—राजन् ! कार्तिक-ब्रतके उद्यापनमें तुलसीके मूलप्रदेशमें भगवान् विष्णुकी पूजा की जाती है; क्योंकि तुलसी उनके लिये अत्यन्त प्रीतिदायिनी मानी गयी है। जिसके घरमें तुलसीका बगीचा लगा होता है, उसका वह घर तीर्थस्वरूप है। वहाँ यमराजके दूत नहीं जाते। तुलसीवन सब पापोंको हरनेवाला, पवित्र तथा मनोवाञ्छित भोगोंको देनेवाला है। जो श्रेष्ठ मानव तुलसीका वृक्ष लगाते हैं, वे कभी यमराजको नहीं देखते। नर्मदाका दर्शन, गङ्गाका स्नान और तुलसीवनके पास रहना—ये तीनों एक समान माने गये हैं। रोपने, रक्षा करने, सींचने तथा दर्शन और स्पर्श करनेसे तुलसी मन, वाणी और शरीरद्वारा किये हुए समस्त पापोंको भस्म कर डालती है। जो तुलसीकी मञ्जरियोंसे भगवान् विष्णु और शिवकी पूजा करता है, वह कभी गर्भमें नहीं आता तथा निश्चय ही मोक्षका भागी होता है। पुष्कर आदि तीर्थ, गङ्गा आदि नदियाँ तथा वासुदेव आदि देवता—ये सभी तुलसीदलमें निवास करते हैं। नृपश्रेष्ठ ! जो तुलसीकी मञ्जरीसे संयुक्त होकर प्राणोंका परित्याग करता है, उसे श्रीविष्णुका सायुज्य प्राप्त होता है—यह सत्य है, सत्य है। जो

शरीरमें तुलसीकी मिट्टी लगाकर मृत्युको प्राप्त होता है, वह सैकड़ों पापोंसे युक्त हो तो भी उसकी ओर साक्षात् यमराज भी नहीं देख सकते। जो मनुष्य तुलसीकाष्ठका चन्दन लगाता है, उसके शरीरको पाप नहीं छू सकते। जहाँ-जहाँ तुलसीवनकी छाया हो, वहाँ श्राद्ध करना चाहिये; क्योंकि वहाँ पितरोंके निमित्त दिया हुआ दान अक्षय होता है।

नृपश्रेष्ठ ! जो आँवलेकी छायामें पिण्डदान करता है, उसके नरकमें पड़े हुए पितर भी मुक्त हो जाते हैं। जो मस्तकपर, हाथमें, मुखमें तथा शरीरके अन्य किसी अवयवमें आँवलेका फल धारण करता है, उसे साक्षात् श्रीहरिका स्वरूप समझना चाहिये। आँवला, तुलसी और द्वारकाकी मिट्टी (गोपीचन्दन) —ये जिसके शरीरमें स्थित हों, वह मनुष्य सदा जीवन्मुक्त कहलाता है। जो मनुष्य आँवलेके फल और तुलसीदलसे मिश्रित जलके द्वारा स्नान करता है, उसके लिये गङ्गास्नानका फल बताया गया है। जो आँवलेके पत्ते और फलोंसे देवताकी पूजा करता है, वह भाँति-भाँतिके सुवर्णमय पुष्पोंसे पूजा करनेका फल पाता है। कार्तिकमें जब सूर्य तुला राशिपर स्थित होते हैं, उस समय समस्त तीर्थ, मुनि, देवता और यज्ञ—ये सभी आँवलेके वृक्षका आश्रय लेकर रहते हैं। जो द्वादशीको तुलसीदल और कार्तिकमें आँवलेका पत्ता तोड़ता है, वह अत्यन्त निन्दित नरकोंमें पड़ता है। जो कार्तिकमें आँवलेकी छायामें बैठकर भोजन करता है, उसका वर्षभरका अन्नसंसर्ग-जनित दोष दूर हो जाता है। जो मनुष्य कार्तिकमें आँवलेकी जड़में भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, उसके द्वारा सदा सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें श्रीविष्णुका पूजन सम्पन्न हो जाता है। जैसे भगवान् विष्णुकी महिमाका पूरा-पूरा वर्णन असम्भव है, उसी प्रकार आँवले और तुलसीके माहात्म्यका भी वर्णन नहीं हो सकता। जो आँवले और तुलसीकी उत्पत्ति-कथाको भक्तिपूर्वक सुनता और सुनाता है, वह पापरहित हो अपने पूर्वजोंके साथ श्रेष्ठ विमानपर बैठकर स्वर्गलोकमें जाता है।

कार्तिक-ब्रतके पुण्य-दानसे एक राक्षसीका उद्धार

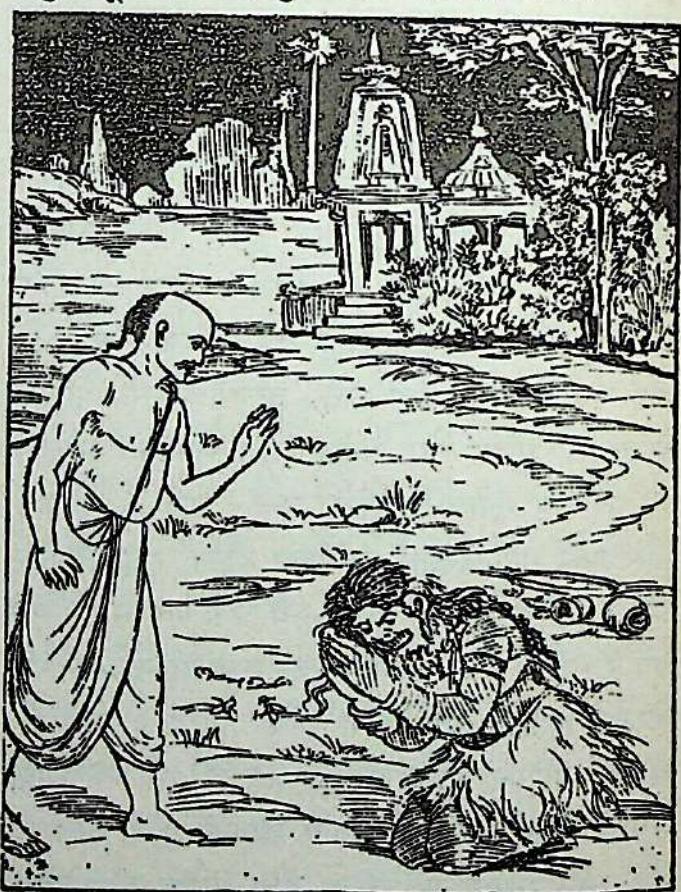
राजा पृथुने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! कार्तिकका ब्रत करनेवाले पुरुषके लिये जिस महान् फलकी प्राप्ति बतायी गयी है, उसका वर्णन कीजिये । किसने इस ब्रतका अनुष्ठान किया था ?

नारदजी बोले—राजन् ! पूर्वकालकी बात है, सहा पर्वतपर करवीरपुरमें धर्मदत्त नामके एक धर्मज्ञ ब्राह्मण रहते थे, जो भगवान् विष्णुका ब्रत करनेवाले तथा भलीभाँति श्रीविष्णु-पूजनमें सर्वदा तत्पर रहनेवाले थे । वे द्वादशाक्षर मन्त्रका जप किया करते थे । अतिथियोंका सत्कार उन्हें विशेष प्रिय था । एक दिन कार्तिक मासमें श्रीहरिके समीप जागरण करनेके लिये वे भगवान्‌के मन्दिरकी ओर चले । उस समय एक पहर रात बाकी थी । भगवान्‌के पूजनकी सामग्री साथ लिये जाते हुए ब्राह्मणने मार्गमें देखा, एक राक्षसी आ रही है ।



उसकी आवाज बड़ी डरावनी थी । टेढ़ी-मेढ़ी दाढ़ें, लपलपाती हुई जीभ, धौंसे हुए लाल-लाल नेत्र, नग्न शरीर, लंबे-लंबे ओठ और घर्ष शब्द—यही उसकी

हुलिया थी । उसे देखकर ब्राह्मण देवता भयसे थर्रा उठे । सारा शरीर काँपने लगा । उन्होंने साहस करके पूजाकी सामग्री तथा जलसे ही उस राक्षसीके ऊपर रोषपूर्वक प्रहार किया । हरिनामका स्मरण करके तुलसीदलमिश्रित जलसे उसको मारा था, इसलिये उसका सारा पातक नष्ट हो गया । अब उसे अपने पूर्वजन्मके कर्मोंकि परिणाम-स्वरूप प्राप्त हुई दुर्दशाका स्मरण हो आया । उसने ब्राह्मणको दण्डवत् प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—‘ब्रह्मन् ! मैं पूर्वजन्मके कर्मोंकि कुपरिणामवश इस दशाको पहुँची हूँ । अब कैसे मुझे उत्तम गति प्राप्त होगी ?’



राक्षसीको अपने आगे प्रणाम करते तथा पूर्वजन्मके किये हुए कर्मोंका वर्णन करते देख ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ । वे उससे इस प्रकार बोले—‘किस कर्मके फलसे तुम इस दशाको पहुँची हो ? कहाँसे आयी हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? तथा तुम्हारा आचार-व्यवहार कैसा है ? ये सारी बातें मुझे बताओ ।’

कलहा बोली—ब्रह्मन् ! मेरे पूर्वजन्मकी बात है,

सौराष्ट्र नगरमें भिक्षु नामके एक ब्राह्मण रहते थे। मैं उन्होंकी पत्नी थी। मेरा नाम कलहा था। मैं बड़े भयंकर स्वभावकी खीं थी। मैंने वचनसे भी कभी अपने पतिका भला नहीं किया। उन्हें कभी मीठा भोजन नहीं परोसा। मैं सदा उनकी आशाका उल्लङ्घन किया करती थी। कलह मुझे विशेष प्रिय था। वे ब्राह्मण मुझसे सदा उद्धिग्र रहा करते थे। अन्ततोगत्वा मेरे पतिने दूसरी खींसे विवाह करनेका विचार कर लिया। तब मैंने विष खाकर अपने प्राण त्याग दिये। फिर यमराजके दूत आये और मुझे बाँधकर पीटते हुए यमलोकमें ले गये। यमराजने मुझे उपस्थित देख चित्रगुप्तसे पूछा—‘चित्रगुप्त ! देखो तो सही, इसने कैसा कर्म किया है ? इसे शुभकर्मका फल मिलेगा या अशुभकर्मका ?’

इसकी प्रवृत्ति रही है; इसलिये यह शूकरीकी योनिमें जन्म ले विष्ठाका भोजन करती हुई समय व्यतीत करे। जिस बर्तनमें भोजन बनाया जाता है, उसीमें यह हमेशा खाया करती थी; अतः उस दोषके प्रभावसे यह अपनी ही संतानका भक्षण करनेवाली बिल्ली हो। तथा अपने स्वामीको निमित्त बनाकर इसने आत्मघात किया है, अतः यह अत्यन्त निन्दनीय खीं कुछ कालतक प्रेत-शरीरमें भी निवास करे। दूतोंके साथ इसको यहाँसे मरुप्रदेशमें भेज देना चाहिये। वहाँ चिरकालतक यह प्रेतका शरीर धारण करके रहे। इसके बाद यह पापिनी तीन योनियोंका भी कष्ट भोगेगी।



कलहा कहती है—विप्रवर ! मैं वही पापिनी कलहा हूँ, प्रेतके शरीरमें आये मुझे पाँच सौ वर्ष व्यतीत हो गये। मैं सदा ही अपने कर्मसे दुःखित तथा भूख-प्याससे पीड़ित रहा करती हूँ। एक दिन भूखसे पीड़ित होकर मैंने एक बनियेके शरीरमें प्रवेश किया और उसके साथ दक्षिण देशमें कृष्णा और वेणीके सङ्गमपर आयी। आनेपर ज्यों ही सङ्गमके किनारे खड़ी हुई, त्यों ही उस बनियेके शरीरसे भगवान् शिव और विष्णुके पर्वद निकले और उन्होंने मुझे बलपूर्वक दूर भगा दिया। द्विजश्रेष्ठ ! तबसे मैं भूखका कष्ट सहन करती हुई इधर-उधर घूम रही थी। इतनेमें ही आपके ऊपर मेरी दृष्टि पड़ी। आपके हाथसे तुलसीमिश्रित जलका संसर्ग पाकर अब मेरे पाप नष्ट हो गये। विप्रवर ! मुझपर कृपा कीजिये और बताइये, मैं इस प्रेत-शरीरसे और भविष्यमें प्राप्त होनेवाली भयंकर तीन योनियोंसे किस प्रकार मुक्त होऊँगी ?

नारदजी कहते हैं—कलहाके ये वचन सुनकर द्विजश्रेष्ठ धर्मदत्तको उसके कर्मोंके परिणामका विचार करके बड़ा विस्मय और दुःख हुआ। उसकी ग्लानि देखकर उनका हृदय करुणासे द्रवित हो उठा। वे बहुत देरतक सोच-विचारकर खेदके साथ बोले—

धर्मदत्तने कहा—तीर्थ, दान और ब्रत आदि शुभ साधनोंके द्वारा पाप नष्ट होते हैं; किन्तु तुम इस समय प्रेतके शरीरमें स्थित हो, अतः उन शुभ कर्मोंमें तुम्हारा

चित्रगुप्तने कहा—धर्मराज ! इसने तो कोई भी शुभकर्म नहीं किया है। यह स्वयं मिठाइयाँ उड़ाती थी और अपने स्वामीको उसमेंसे कुछ भी नहीं देती थी। अतः बल्लुली (चमगादर) की योनिमें जन्म लेकर यह अपनी विष्ठा खाती हुई जीवन धारण करे। इसने सदा अपने स्वामीसे द्वेष किया है तथा सर्वदा कलहमें ही

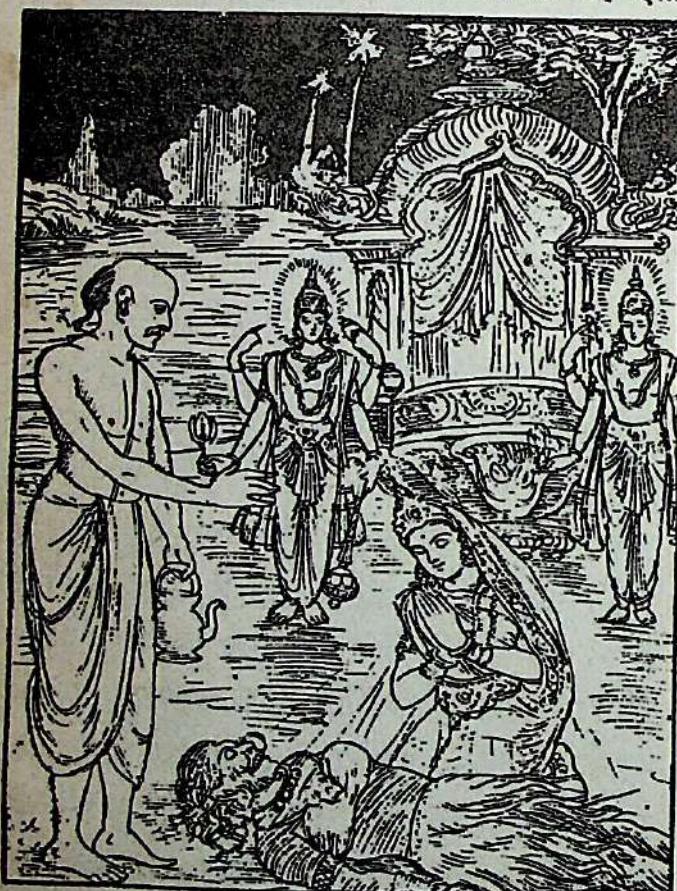
अधिकार नहीं है। तथापि तुम्हारी ग्लानि देखकर मेरे मनमें बड़ा दुःख हो रहा है। तुम दुःखिनी हो, तुम्हारा उद्धार किये बिना मेरे चित्तको शान्ति नहीं मिलेगी; अतः मैंने जन्मसे लेकर आजतक जो कार्तिक-ब्रतका अनुष्ठान किया है, उसका आधा पुण्य लेकर तुम उत्तम गतिको प्राप्त होओ।

यों कहकर धर्मदत्तने द्वादशाक्षर मन्त्रका श्रवण कराते हुए तुलसीमिश्रित जलसे ज्यों ही उसका अभिषेक किया, त्यों ही वह प्रेत-शरीरसे मुक्त हो दिव्यरूपधारिणी देवी हो गयी। धधकती हुई आगंकी ज्वालाके समान तेजस्विनी दिखायी देने लगी। लावण्यसे तो वह ऐसी

वह श्रीविष्णुके समान रूप धारण करनेवाले पार्षदोंसे मुक्त था। पास आनेपर विमानके द्वारपर खड़े हुए पुण्यशील और सुशील नामक पार्षदोंने उस देवीको विमानपर चढ़ा लिया। उस समय उस विमानको देखकर धर्मदत्तको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने श्रीविष्णुरूपधारी पार्षदोंका दर्शन करके उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। ब्राह्मणको प्रणाम करते देख पुण्यशील और सुशीलने उन्हें उठाया और उनकी प्रशंसा करते हुए यह धर्मयुक्त वचन कहा।

दोनों पार्षद बोले—द्विजश्रेष्ठ ! तुम्हें धन्यवाद है। क्योंकि तुम सदा भगवान् विष्णुकी आराधनामें संलग्न रहते हो। दीनोंपर दया करनेका तुम्हारा स्वभाव है। तुम धर्मात्मा और श्रीविष्णुब्रतका अनुष्ठान करनेवाले हो। तुमने बचपनसे लेकर अबतक जो कल्याणमय कार्तिकका ब्रत किया है, उसके आधेका दान करके दूना पुण्य प्राप्त कर लिया है। तुम बड़े दयालु हो, तुम्हारे द्वारा दान किये हुए कार्तिक-ब्रतके अङ्गभूत तुलसीपूजन आदि शुभ कर्मोंके फलसे यह स्त्री आज भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें जाओगे और उन्हींके समान रूप धारण करके सदा उनके समीप निवास करोगे। धर्मदत्त ! जिन लोगोंने तुम्हारी ही भाँति श्रीविष्णुकी भक्तिपूर्वक आराधना की है, वे धन्य और कृतकृत्य हैं; तथा संसारमें उन्हींका जन्म लेना सार्थक है। जिन्होंने पूर्वकालमें राजा उत्तानपादके पुत्र ध्रुवको ध्रुवपदपर स्थापित किया था, उन श्रीविष्णुकी यदि भलीभाँति आराधना की जाय तो वे प्राणियोंको क्या नहीं दे डालते। भगवान्के नामोंका स्मरण करने मात्रसे देहधारी जीव सद्गतिको प्राप्त हो जाते हैं। पूर्वकालमें जब गजराजको ग्राहने पकड़ लिया था, उस समय उसने श्रीहरिके नामस्मरणसे ही संकटसे छुटकारा पाकर भगवान्की समीपता प्राप्त की थी और वही अब भगवान्का 'जय' नामसे प्रसिद्ध पार्षद है।

तुमने भी श्रीहरिकी आराधना की है, अतः वे तुम्हें अपने समीप अवश्य स्थान देंगे।



जान पड़ती थी, मानो साक्षात् लक्ष्मी हों। तदनन्तर उसने भूमिपर मस्तक टेककर ब्राह्मणदेवताको प्रणाम किया और आनन्दविभोर हो गद्गदवाणीमें कहा—‘द्विजश्रेष्ठ ! आपकी कृपासे मैं नरकसे छुटकारा पा गयी। मैं पापके समुद्रमें ढूब रही थी, आप मेरे लिये नैकाके समान हो गये।’

वह इस प्रकार ब्राह्मणदेवसे वार्तालाप कर ही रही थी कि आकाशसे एक तेजस्वी विमान उत्तरता दिखायी दिया।

कार्तिक-माहात्म्यके प्रसङ्गमें राजा चोल और विष्णुदासकी कथा

नारदजी कहते हैं—इस प्रकार विष्णुपार्षदोंके वचन सुनकर धर्मदत्तको बड़ा आश्वर्य हुआ, वे उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करके बोले—‘प्रायः सभी लोग भक्तोंका कष्ट दूर करनेवाले श्रीविष्णुकी यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थसेवन और तपस्याओंके द्वारा विधिपूर्वक आराधना करते हैं; उन समस्त साधनोंमें कौन-सा ऐसा साधन है, जो श्रीविष्णुको प्रीतिकारक तथा उनके सामीयकी प्राप्ति करानेवाला है? किस साधनका अनुष्ठान करनेसे उपर्युक्त सभी साधनोंका अनुष्ठान स्वतः हो जाता है?

दोनों पार्षदोंने कहा—ब्रह्मन्! तुमने बहुत उत्तम बात पूछी है; अब एकाग्रचित्त होकर सुनो, हम इतिहाससहित प्राचीन वृत्तान्तका वर्णन करते हैं। पहले काञ्छीपुरीमें चोल नामक एक चक्रवर्ती राजा हो गये हैं; उनके अधीन जितने देश थे वे भी चोल नामसे ही विख्यात हुए। राजा चोल जब इस भूमण्डलका शासन करते थे, उस समय कोई भी मनुष्य दरिद्र, दुःखी, पापमें मन लगानेवाला अथवा रोगी नहीं था। उन्होंने इतने यज्ञ किये थे, जिनकी कोई गणना नहीं हो सकती। उनके यज्ञोंके सुवर्णमय एवं शोभाशाली यूपोंसे भरे हुए ताप्रपर्णी नदीके दोनों किनारे चैत्ररथ वनके समान सुशोभित होते थे। एक समयकी बात है, राजा चोल ‘अनन्तशयन’ नामक तीर्थमें गये, जहाँ जगदीश्वर श्रीविष्णु योगनिद्राका आश्रय ले सो रहे थे। वहाँ लक्ष्मीरमण भगवान् श्रीविष्णुके दिव्य विग्रहकी राजाने विधिपूर्वक पूजा की। मणि, मोती तथा सुवर्णके बने हुए सुन्दर फूलोंसे पूजन करके उन्होंने भगवान्को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। प्रणाम करके वे ज्यों ही बैठे, उसी समय उनकी दृष्टि भगवान्के पास आते हुए एक ब्राह्मणपर पड़ी, जो उन्होंकी काञ्छीनगरीके निवासी थे। उनका नाम विष्णुदास था। वे भगवान्की पूजाके लिये अपने हाथमें तुलसीदल और जल लिये हुए थे। निकट आनेपर उन ब्रह्मणिने विष्णुसूक्तका पाठ करते हुए देवदेव भगवान्को स्नान कराया और तुलसीकी मञ्जरी तथा पत्तोंसे विधिवत्

पूजा की। राजा चोलने जो पहले रलोंसे भगवान्की पूजा की थी, वह सब तुलसी-पूजासे ढक गयी। यह देख राजा कुपित होकर बोले—‘विष्णुदास! मैंने मणियों



तथा सुवर्णसे भगवान्की पूजा की थी, वह कितनी शोभा पा रही थी! किन्तु तुमने तुलसीदल चढ़ाकर सब ढक दी। बताओ, ऐसा क्यों किया? मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, तुम बड़े मूर्ख हो; भगवान् विष्णुकी भक्तिको बिलकुल नहीं जानते। तभी तो तुम अत्यन्त सुन्दर सजी-सजायी पूजाको पत्तोंसे ढके जा रहे हो। तुम्हारे इस बर्तावपर मुझे बड़ा आश्वर्य हो रहा है।’

विष्णुदास बोले—राजन्! आपको भक्तिका कुछ भी पता नहीं है, केवल राजलक्ष्मीके कारण आप घमंड कर रहे हैं। बताइये तो, आजसे पहले आपने कितने वैष्णव ब्रतोंका पालन किया है?

राजाने कहा—ब्राह्मण! यदि तुम विष्णुभक्तिसे अत्यन्त गर्वमें आकर ऐसी बात करते हो तो बताओ, तुममें कितनी भक्ति है? तुम तो दरिद्र हो, निर्धन हो।

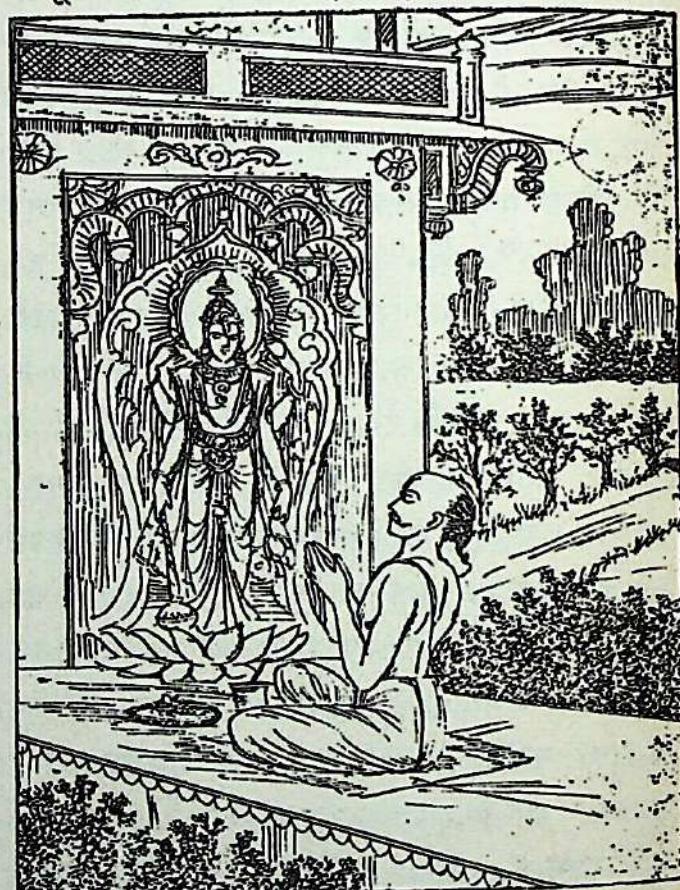
तुमने श्रीविष्णुको संतुष्ट करनेवाले यज्ञ और दान आदि कभी नहीं किये हैं तथा पहले कहीं कोई देवालय भी नहीं बनवाया है। ऐसी दशामें भी तुम्हें अपनी भक्तिका इतना घमंड है! अच्छा, तो आज यहाँ जितने भी श्रेष्ठ ब्राह्मण उपस्थित हैं, वे सभी कान खोलकर मेरी बात सुन लें। देखना है, मैं पहले भगवान् विष्णुका दर्शन पाता हूँ या यह; इससे लोगोंको स्वयं ही ज्ञात हो जायगा कि हम दोनोंमेंसे किसमें कितनी भक्ति है।

दोनों पार्षद बोले—ब्रह्मन्! यह कहकर राजा चोल अपने राजभवनको चले गये और उन्होंने महर्षि मुद्गलको आचार्य बनाकर वैष्णव-यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया, जिसमें बहुत-से ऋषियोंका समुदाय



एकत्रित हुआ। बहुत-सा अन्न खर्च किया गया और प्रचुर दक्षिणा बाँटी गयी। जैसे पूर्वकालमें गयाक्षेत्रके भीतर ब्रह्माजीने समृद्धिदाती यज्ञका अनुष्ठान किया था, उसी प्रकार राजा चोलने भी महान् यज्ञ आरम्भ किया। उधर विष्णुदास भी वहीं भगवान्‌के मन्दिरमें ठहर गये और श्रीविष्णुको सन्तुष्ट करनेवाले शास्त्रोक्त नियमोंका भलीभाँति पालन करते हुए सदा ही व्रतका अनुष्ठान

करने लगे। माघ और कार्तिकके व्रत, तुलसीके बगीचेका भलीभाँति पालन, एकादशीका व्रत, द्वादशाक्षर मन्त्रका जप तथा गीत-नृत्य आदि माझलिक उत्सवोंके साथ षोडशोपचारद्वारा प्रतिदिन श्रीविष्णुकी पूजा—यही उनकी जीवनचर्या थी। वे इन्हीं व्रतोंका पालन करते थे। चलते, खाते और सोते समय भी उन्हें निरन्तर श्रीविष्णुका स्मरण बना रहता था। वे समदर्शी थे और सम्पूर्ण प्राणियोंमें भगवान् विष्णुको स्थित देखते थे।

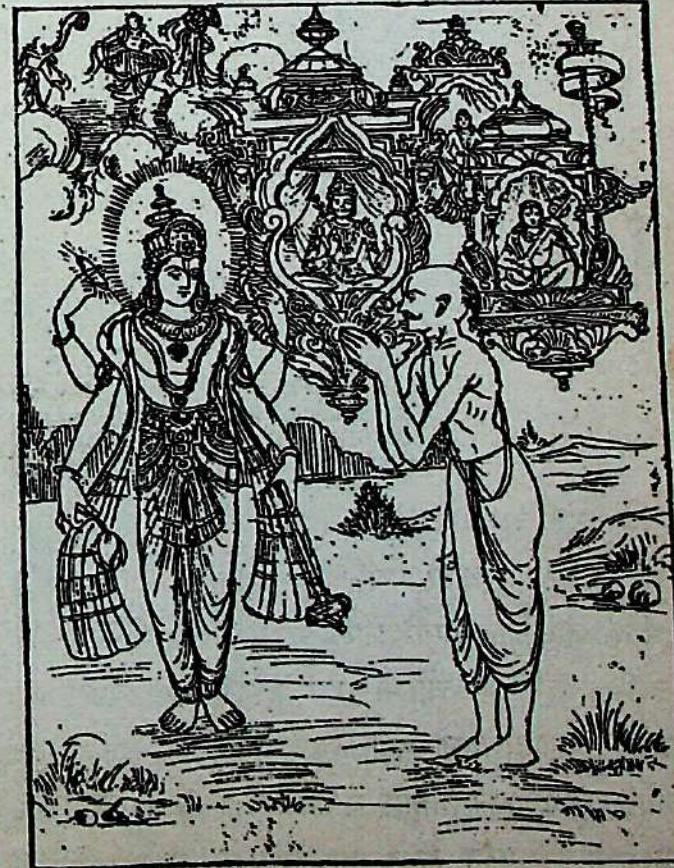


उन्होंने भगवान् विष्णुके संतोषके लिये उद्यापन-विधिसहित माघ और कार्तिकके विशेष-विशेष नियमोंका भी सर्वदा पालन किया। इस प्रकार राजा चोल और विष्णुदास दोनों ही भगवान् विष्णुकी आराधना करने लगे। दोनों ही अपने-अपने व्रतमें स्थित रहते थे, दोनोंकी ही इन्द्रियाँ और दोनोंके ही कर्म भगवान्‌में ही केन्द्रित थे।

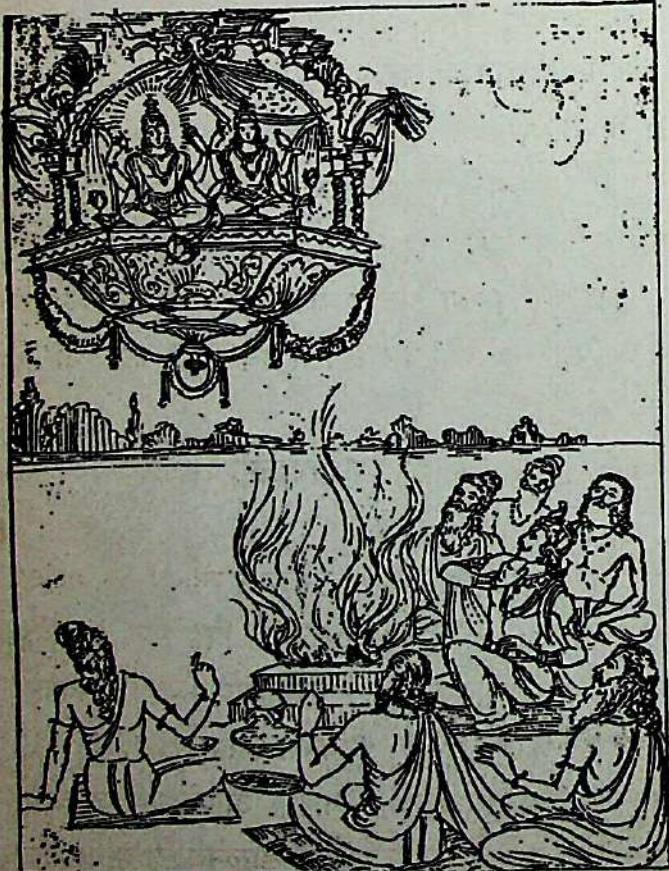
एक दिनकी बात है, विष्णुदासने नित्यकर्म करनेके पश्चात् भोजन तैयार किया; किन्तु उसे किसीने चुरा लिया। चुरानेवालेपर किसीकी दृष्टि नहीं पड़ी। विष्णुदासने देखा, भोजन गायब है; फिर भी उन्होंने

दुबारा भोजन नहीं बनाया; क्योंकि ऐसा करनेपर सायंकालकी पूजाके लिये अवकाश नहीं मिलता, अतः प्रतिदिनके नियमके भंग हो जानेका भय था। दूसरे दिन उसी समयपर भोजन बनाकर वे ज्यों ही भगवान् विष्णुको भोग लगानेके लिये गये, त्यों ही कोई आकर फिर सारा भोजन हड्डप ले गया। इस प्रकार लगातार सात दिनोंतक कोई आ-आकर उनके भोजनका अपहरण करता रहा। इससे विष्णुदासको बड़ा विस्मय हुआ। वे मन-ही-मन इस प्रकार विचार करने लगे—‘अहो ! यह कौन प्रतिदिन आकर मेरी रसोई चुरा ले जाता है ? मैं क्षेत्र-संन्यास ले चुका हूँ, अतः अब किसी तरह इस स्थानका परित्याग नहीं कर सकता। यदि दुबारा बनाकर भोजन करूँ तो सायंकालकी यह पूजा कैसे छोड़ दूँ। कोई-सा भी पाक बनाकर मैं तुरंत भोजन तो करूँगा ही नहीं; क्योंकि जबतक सारी सामग्री भगवान् विष्णुको निवेदन न कर लूँ तबतक मैं भोजन नहीं करता। प्रतिदिन उपवास करनेसे मैं इस व्रतकी समाप्तिक जीवित कैसे रह सकता हूँ। अच्छा, आज मैं रसोईकी भलीभाँति रक्षा करूँगा।’

यों सोचकर भोजन बनानेके पश्चात् वे वहीं कहीं छिपकर खड़े हो गये। इतनेमें ही एक चाण्डाल दिखायी दिया, जो रसोईका अन्न हड्डप ले जानेको तैयार खड़ा था। भूखके मारे उसका सारा शरीर दुर्बल हो रहा था, मुखपर दीनता छा रही थी, शरीरमें हाड़ और चामके सिवा और कुछ बाकी नहीं बचा था। उसे देखकर श्रेष्ठ ब्राह्मण विष्णुदासका हृदय करुणासे व्यथित हो उठा। उन्होंने भोजन लेकर जाते हुए चाण्डालपर दृष्टि डाली और कहा—‘धैया ! जरा ठहरो, ठहरो। क्यों रुखा-सूखा खाते हो। यह धी तो ले लो।’ इस तरह बोलते हुए विप्रवर विष्णुदासको आते देख चाण्डाल बड़े वेगसे भागा और भयसे मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। चाण्डालको भयभीत और मूर्च्छित देख द्विजश्रेष्ठ विष्णुदास वेगसे चलकर उसके पास पहुँचे और करुणावश अपने वस्त्रके किनारेसे उसको हवा करने लगे। तदनन्तर जब वह उठकर खड़ा हुआ तो विष्णुदासने देखा—वह चाण्डाल नहीं, साक्षात् भगवान् नारायण ही शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये सामने विराजमान हैं। कटिमें पीताम्बर, चार भुजाएँ, हृदयमें श्रीवत्सका चिह्न तथा मस्तकपर किरीट



शोभा पा रहे हैं। अल्लसीके फूलकी भाँति श्यामसुन्दर शरीर और कौस्तुभमणिसे जगमगाते हुए वक्षःस्थलकी अपूर्व शोभा हो रही है। अपने प्रभुको प्रत्यक्ष देखकर द्विजश्रेष्ठ विष्णुदास सात्त्विक^१ भावोंके वशीभूत हो गये। वे स्तुति और नमस्कार करनेमें भी समर्थ न हो सके। उस समय वहाँ इन्द्र आदि देवता भी आ पहुँचे। गन्धर्व और अप्सराएँ गाने और नाचने लगीं। वह स्थान सैकड़ों विमानोंसे भर गया और देवर्षियोंके समुदायसे सुशोभित होने लगा। चारों ओर गीत और वाद्योंकी ध्वनि छा गयी। तब भगवान् विष्णुने सात्त्विक ब्रतका पालन करनेवाले अपने भक्त विष्णुदासको छातीसे लगा लिया और उन्हें अपने-ही-जैसा रूप देकर वे वैकुण्ठधामको ले चले। उस समय यज्ञमें दीक्षित हुए राजा चोलने देखा, विष्णुदास एक सुन्दर विमानपर बैठकर भगवान् विष्णुके समीप जा रहे हैं। विष्णुदासको वैकुण्ठधाममें जाते देख राजाने तुरंत ही अपने गुरु महर्षि मुद्रालको



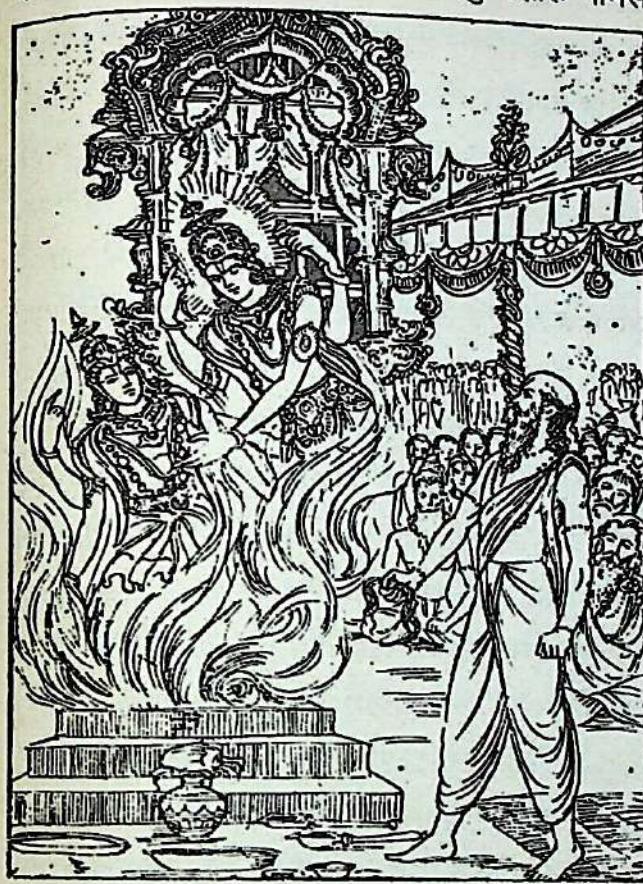
बुलाया और इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

राजा बोले——जिसके साथ लाग-डाँट होनेके कारण मैंने यह यज्ञ-दान आदि कर्मका अनुष्ठान किया है, वह ब्राह्मण आज भगवान् विष्णुका रूप धारण करके मुझसे पहले ही वैकुण्ठधाममें जा रहा है। मैंने इस वैष्णवयागमें भलीभाँति दीक्षित होकर अग्रिमें हवन किया और दान आदिके द्वारा ब्राह्मणोंका मनोरथ पूर्ण किया; तथापि अभीतक भगवान् मुझपर प्रसन्न नहीं हुए और इस ब्राह्मणको केवल भक्तिके ही कारण श्रीहरिने प्रत्यक्ष दर्शन दिया है। अतः जान पड़ता है, भगवान् विष्णु केवल दान और यज्ञोंसे प्रसन्न नहीं होते। उन प्रभुका दर्शन करनेमें भक्ति ही प्रधान कारण है।

दोनों पार्षद कहते हैं——यों कहकर राजाने अपने भानजेको राज्यसिंहासनपर अभिषिक्त कर दिया। वे बचपनसे ही यज्ञकी दीक्षा लेकर उसीमें संलग्न रहते थे, इसलिये उन्हें कोई पुत्र नहीं हुआ। यही कारण है कि उस देशमें अबतक भानजे ही सदा राज्यके उत्तराधिकारी होते हैं। वे सब-के-सब राजा चोलके द्वारा स्थापित आचारका ही पालन करते हैं। भानजेको राज्य देनेके पश्चात् राजा यज्ञशालामें गये और यज्ञकुण्डके सामने खड़े होकर श्रीविष्णुको सम्बोधित करते हुए तीन बार उच्चस्वरसे निम्राङ्कित वचन बोले—‘भगवान् विष्णु ! आप मुझे मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा स्थिर भक्ति प्रदान कीजिये।’ यों कहकर वे सबके देखते-देखते अग्रिमें कूद पड़े। उस समय मुद्राल मुनिने क्रोधमें आकर अपनी शिखा उखाड़ डाली। तभीसे आजतक उस गोत्रमें उत्पन्न होनेवाले समस्त मुद्राल ब्राह्मण बिना शिखाके ही रहते हैं। राजा ज्यों ही अग्रिकुण्डमें कूदे, उसी समय भक्तवत्सल भगवान् विष्णु प्रकट हो गये और उन्होंने राजाको छातीसे लगाकर एक श्रेष्ठ विमानपर बिठाया; फिर अपने ही समान रूप देकर उन देवेश्वरने देवताओंसहित वैकुण्ठ-धामको प्रस्थान किया। उक्त

१—प्रेमकी प्रगाढ़ावस्थामें होनेवाले आठ प्रकारके अङ्ग-विकारोंको, जो सत्त्वगुणकी प्रेरणासे प्रकट होते हैं, सात्त्विक भाव कहते हैं। उनके नाम ये हैं—स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभङ्ग, कम्प, विवर्णता, आँसू और प्रलय।

दोनों भक्तोंमें जो विष्णुदास थे, वे तो पुण्यशील नामसे



प्रसिद्ध भगवान्‌के पार्षद हुए तथा जो राजा चोल थे, उनका नाम सुशील हुआ। हम वे ही दोनों हैं। लक्ष्मीजीके प्रियतम श्रीहरिने हमें अपने समान रूप देकर अपना द्वारपाल बना लिया है।

इसलिये धर्मज्ञ ब्राह्मण ! तुम भी सदा भगवान्‌ विष्णुके व्रतमें स्थित रहो। मात्सर्य और दम्भका परित्याग

करके सर्वत्र समान दृष्टि रखो। तुला, मकर और मेषकी संक्रान्तिमें सदा प्रातःस्नान किया करो। एकादशीके व्रतमें लगे रहो और तुलसीबनकी रक्षा करते रहो। ब्राह्मणों, गौओं तथा वैष्णवोंकी सदा ही सेवा करो। मसूर, काँजी और बैंगन खाना छोड़ दो। धर्मदत्त ! ऐसा करनेसे तुम भी शरीरका अन्त होनेपर श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त करोगे। जैसे हमलोगोंने भगवान्‌की भक्तिसे ही उन्हें पाया है, उसी प्रकार तुम भी उन्हें प्राप्त कर लोगे। तुमने जन्मसे लेकर अबतक जो श्रीविष्णुको संतुष्ट करनेवाला यह व्रत किया है, इससे यज्ञ, दान और तीर्थ भी बड़े नहीं हैं। विप्रवर ! तुम धन्य हो; क्योंकि तुमने जगद्गुरु भगवान्‌ श्रीविष्णुको प्रसन्न करनेवाले इस व्रतका अनुष्ठान किया है; जिसके एक भागका पुण्य पाकर ही प्रेतयोनिमें पड़ी हुई कलहा मुक्त हो गयी। अब हमलोग इसे भगवान्‌विष्णुके लोकमें ले जा रहे हैं।

नारदजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार विमानपर बैठे हुए विष्णुके दूतोंने धर्मदत्तको उपदेश देकर कलहाके साथ वैकुण्ठधामकी यात्रा की। तत्पश्चात् धर्मदत्त भी पूर्ण विश्वासके साथ उस व्रतमें लगे रहे और शरीरका अन्त होनेपर अपनी दोनों पलियोंके साथ वे भगवान्‌के परमधामको चले गये। जो पुरुष इस प्राचीन इतिहासको सुनता और सुनाता है, वह जगद्गुरु भगवान्‌की कृपासे उनका सान्निध्य प्राप्त करनेवाली उत्तम गति पाता है।



पुण्यात्माओंके संसर्गसे पुण्यकी प्राप्तिके प्रसंगमें धनेश्वर ब्राह्मणकी कथा

भगवान्‌ श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिये ! यह कथा सुनकर राजा पृथुके मनमें बड़ा आश्र्य हुआ। उन्होंने भक्तिपूर्वक देवर्षि नारदका पूजन करनेके पश्चात् उन्हें विदा किया। इसलिये माघस्नान, कार्तिकस्नान तथा एकादशी—ये तीनों व्रत मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। वनस्पतियोंमें तुलसी, महीनोंमें कार्तिक, तिथियोंमें एकादशी तथा पुण्य-क्षेत्रोंमें द्वारकापुरी मुझे विशेष प्रिय

है।* जो अपनी इन्द्रियोंको संयममें रखकर इन सबका सेवन करता है, वह मुझे बहुत ही प्रिय होता है। यज्ञ आदिके द्वारा भी कोई मेरा ऐसा प्रिय नहीं हो सकता, जैसा कि पूर्वोक्त चारोंके सेवनसे होता है।

सत्यभामा बोली—नाथ ! आपने मुझे जो कथा सुनायी है, वह बड़े ही आश्र्यमें डालनेवाली है; क्योंकि कलहा दूसरेके दिये हुए पुण्यसे ही मुक्ति पा गयी। इस

* वनस्पतीनां तुलसी मासानां कार्तिकः प्रियः। एकादशी तिथीनां च क्षेत्राणां द्वारका मम ॥ (११४ । ३)

कार्तिक मासका ऐसा प्रधाव है और यह आपको इतना प्रिय है कि इसमें किये हुए स्नान-दानसे कलहाके पतिद्वेष आदि पाप भी नष्ट हो गये। प्रभो ! जो दूसरेका किया हुआ पुण्य है, वह उसके देनेसे तो मिल जाता है; किन्तु बिना दिया हुआ पुण्य मनुष्य किस मार्गसे पा सकता है ?

भगवान् श्रीकृष्णने कहा— प्रिये ! सत्ययुग, त्रेता और द्वापरमें देश, ग्राम और कुल भी मनुष्यके किये हुए पुण्य और पापके भागी होते हैं; परन्तु कलियुगमें केवल कर्ताको ही पुण्य और पापका फल भोगना पड़ता है। पढ़ानेसे, यज्ञ करनेसे अथवा एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करनेसे भी मनुष्य दूसरोंके पुण्य और पापका चौथाई भाग परोक्षरूपसे पा लेता है। एक आसनपर बैठने, एक सवारीपर चलने, श्वासका स्पर्श होने और परस्पर अङ्ग सट जानेसे भी निश्चय ही पुण्य-पापके छठे अंशका फलभागी होना पड़ता है। स्पर्श करनेसे, बातचीत करनेसे तथा दूसरेकी स्तुति करनेसे भी मानव पुण्य-पापके दशमांशको ग्रहण करता है। देखनेसे, नाम सुननेसे तथा मनके द्वारा चिन्तन करनेसे दूसरेके पुण्य-पापका शतांश भाग प्राप्त होता है। जो दूसरेकी निन्दा करता, चुगली खाता और उसे धिक्कार देता है, वह उसके किये हुए पातकको स्वयं लेकर बदलेमें अपने पुण्यको देता है।* एक पद्धतिमें बैठकर भोजन करनेवाले लोगोंमेंसे जो किसीको परोसनेमें छोड़ देता है, उसके पुण्यका छठा भाग उस छोड़े हुए व्यक्तिको मिल जाता है। जो स्नान और सन्ध्या आदि करते समय किसीको छूता या उससे बातचीत करता है, उसे अपने कर्मजनित पुण्यके छठे अंशको उस व्यक्तिके लिये निश्चय ही देना पड़ता है। † जो धर्मके उद्देश्यसे दूसरे मनुष्यसे धनकी याचना करता है, उसके पुण्य-कर्मके फलको धन देनेवाला व्यक्ति भी पाता है। जो दूसरेका धन चुराकर पुण्य-कर्म करता है, उसका फल धनीको ही

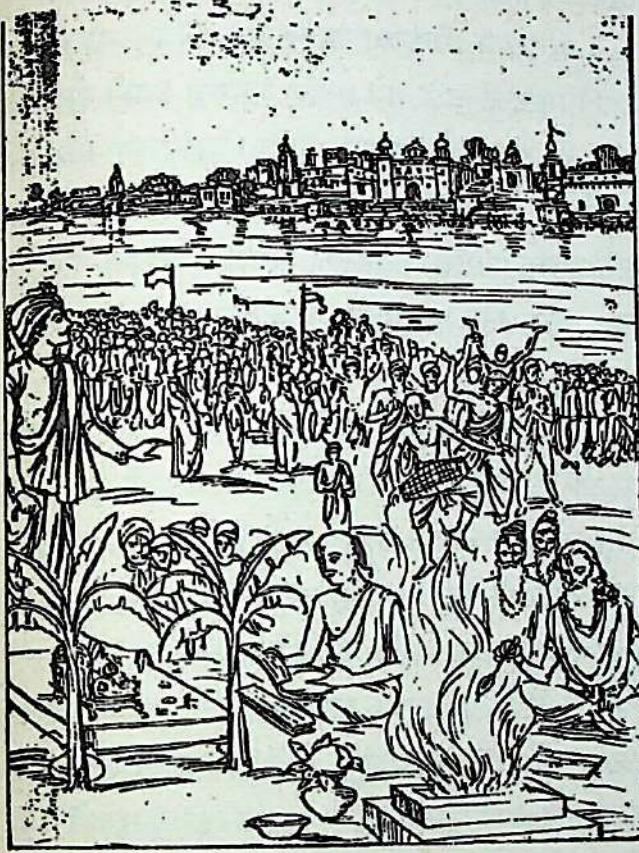
मिलता है, कर्म करनेवालेको नहीं। जो मनुष्य दूसरेका ऋण चुकाये बिना ही मर जाता है, उसके पुण्यको धनी मनुष्य अपने धनके अनुसार बाँट लेता है। कर्म करनेकी सलाह देनेवाला, अनुमोदन करनेवाला, सामग्री जुटानेवाला तथा बलसे सहायता करनेवाला पुरुष भी पुण्य-पापके छठे अंशको पा लेता है। राजा अपनी प्रजासे, गुरु शिष्यसे, पति अपनी पत्नीसे तथा पिता अपने पुत्रसे उसके पुण्य-पापका छठा अंश प्राप्त करता है। स्त्री भी यदि सदा अपने पतिके मनके अनुसार चले और सदा उसे संतोष देनेवाली हो तो वह पतिके पुण्यका आधा भाग प्राप्त करती है। स्वयं धन देकर अपने नौकर या पुत्रके अतिरिक्त किसी भी दूसरेके हाथसे दान करानेवाले पुरुषके पुण्य-कर्मके छठे भागको कर्ता ले लेता है। वृत्ति देनेवाला पुरुष वृत्तिभोगीके पुण्यका छठा अंश ले लेता है; किन्तु यदि उसके बदलेमें उसने अपनी या दूसरेकी सेवा न करायी हो, तभी उसे लेनेका अधिकारी होता है। इस प्रकार दूसरोंके किये हुए पुण्य और पाप बिना दिये भी सदा आते रहते हैं। इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास है, जो बहुत ही उत्तम और पुण्यमयी बुद्धि प्रदान करनेवाला है, उसे सुनो ।

पूर्वकालकी बात है, अवन्तीपुरीमें धनेश्वर नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह ब्राह्मणोचित कर्मसे भ्रष्ट, पापपरायण और खोटी बुद्धिवाला था, रस, कम्बल और चमड़ा आदि बेचकर तथा झूठ बोलकर वह जीविका चलाता था। उसका मन चोरी, वेश्यागमन, मदिरापान और जुए आदिमें सदा आसक्त रहता था। एक बार वह खरीद-बिक्रीके कामसे देश-देशान्तरमें भ्रमण करता हुआ माहिष्मतीपुरीमें जा पहुँचा, जिसकी चहारदीवारीसे सटकर बहनेवाली पापनाशिनी नर्मदा सदा सुशोभित होती रहती है। वहाँ कार्तिकका ब्रत करनेवाले बहुत-से मनुष्य अनेक गाँवोंसे स्नान करनेके लिये आये थे। धनेश्वरने उन सबको देखा। कितने ही ब्राह्मण स्नान

* परस्य निन्दां पैशुन्यं धिक्कारं च करोति यः। तत्कृतं पातकं प्राप्य स्वपुण्यं प्रददाति सः ॥ (११४ । १७)

† स्नानसन्ध्यादिकं कुर्वन् यः स्पृशेद्वा प्रभाषते। स कर्मपुण्यषष्ठांशं दद्यात्तस्मै सुनिश्चितम् ॥ (११४ । २१)

करके यज्ञ तथा देव-पूजनमें लगे थे। कुछ लोग पुण्योंका पाठ करते और कुछ लोग सुनते थे। कितने



ही भक्त नाच, गान, दान और वाद्यके द्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुतिमें संलग्न थे। धनेश्वर प्रतिदिन घूम-घूमकर वैष्णवोंके दर्शन, स्पर्श तथा उनसे वार्तालाप करता था। इससे उसे श्रीविष्णुके नाम सुननेका शुभ अवसर प्राप्त होता था। इस प्रकार वह एक मासतक वहाँ टिका रहा। कार्तिक-ब्रतके उद्यापनमें भक्त पुरुषोंने जो श्रीहरिके समीप जागरण किया, उसको भी उसने देखा। उसके बाद पूर्णिमाको ब्रत करनेवाले मनुष्योंने जो ब्राह्मणों और गौओंका पूजन आदि किया तथा दक्षिणा और भोजन आदि दिये, उन सबका भी उसने अवलोकन किया। तत्पश्चात् सूर्यास्तके समय श्रीशङ्करजीकी प्रसन्नताके लिये जो दीपोत्सर्गकी विधि की गयी, उसपर भी धनेश्वरकी दृष्टि पड़ी। उस तिथिको भगवान् शङ्करने तीनों पुरोंका दाह किया था, इसीलिये भक्तपुरुष उस दिन दीपोत्सर्गका महान् उत्सव किया करते हैं। जो मुझमें और शिवजीमें भेद-बुद्धि करता है, उसके सारे पुण्य-कर्म निष्फल हो

जाते हैं—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। धनेश्वर नर्मदाके तटपर नृत्य आदि देखता हुआ घूम रहा था। इतनेमें ही एक काले साँपने उसे काट लिया। वह व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसे गिरा देख बहुत-से मनुष्योंने दयावश उसको चारों ओरसे घेर लिया और तुलसीमिश्रित जलके द्वारा उसके मुखपर छीटि देना आरम्भ किया। देहत्यागके पश्चात् धनेश्वरको यमराजके दूतोंने बाँधा और क्रोधपूर्वक कोड़ोंसे पीटते हुए वे उसे संयमनीपुरीको ले गये। चित्रगुप्तने धनेश्वरको देखकर उसे बहुत फटकारा और उसने बचपनसे लेकर मृत्युपर्यन्त जितने दुष्कर्म किये थे, वे सब उन्होंने यमराजको बताये।

चित्रगुप्त बोले—प्रभो ! बचपनसे लेकर मृत्युपर्यन्त इसका कोई पुण्य नहीं दिखायी देता। यह दुष्ट केवल पापका मूर्तिमान् स्वरूप दीख पड़ता है, अतः इसे कल्पभर नरकमें पकाया जाय।

यमराज बोले—प्रेतराज ! केवल पापोंपर ही दृष्टि रखनेवाले इस दुष्टको मुद्गरोंसे पीटते हुए ले जाओ और तुरंत ही कुम्भीपाकमें डाल दो।

यमराजकी आज्ञा पाकर प्रेतराज पापी धनेश्वरको ले चला। मुद्गरोंकी मारसे उसका मस्तक विदीर्ण हो गया था। कुम्भीपाकमें तेलके खौलनेका खलखल शब्द हो रहा था। प्रेतराजने उसे तुरंत ही उसमें डाल दिया। वह ज्यों ही कुम्भीपाकमें गिरा, त्यों ही उसका तेल ठंडा हो गया—ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकालमें भक्तप्रवर प्रह्लादको डालनेसे दैत्योंकी जलायी हुई आग बुझ गयी थी। यह महान् आश्वर्यकी बात देखकर प्रेतराजको बड़ा विस्मय हुआ। उसने बड़े वेगसे आकर यह सारा हाल यमराजको कह सुनाया। प्रेतराजकी कही हुई कौतूहल-पूर्ण बात सुनकर यमने कहा—‘आह यह कैसी बात है !’ फिर उसे साथ ले वे उस स्थानपर आये और उस घटनापर विचार करने लगे। इतनेमें ही देवर्षि नारद हँसते हुए बड़ी उतावलीके साथ वहाँ आये। यमराजने भलीभाँति उनका पूजन किया। उनसे मिलकर देवर्षि

नारदजीने इस प्रकार कहा ।



नारदजी बोले—सूर्यनन्दन ! यह नरक भोगनेके योग्य नहीं है; क्योंकि इसके द्वारा ऐसा कर्म बन गया है, जो नरकका नाश करनेवाला है। जो पुरुष पुण्य-कर्म करनेवाले लोगोंका दर्शन, सर्व और उनके साथ वार्तालाप करता है, वह उनके पुण्यका छठा अंश प्राप्त कर लेता है। यह तो एक मासतक श्रीहरिके कार्तिक-ब्रतका अनुष्ठान करनेवाले असंख्य मनुष्योंके सम्पर्कमें रहा है; अतः उन सबके पुण्यांशका भागी हुआ है। उनकी सेवा करनेके कारण इसे सम्पूर्ण ब्रतका पुण्य प्राप्त हुआ है, अतः इसके कार्तिक-ब्रतसे उत्पन्न होनेवाले पुण्योंकी कोई गिनती नहीं है। कार्तिक-ब्रत करनेवाले पुरुषोंके बड़े-से-बड़े पातकोंका भी भक्तवत्सल श्रीविष्णु पूर्णतया नाश कर डालते हैं। इतना ही नहीं, अन्तकालमें वैष्णव पुरुषोंने तुलसीमिश्रित नर्मदाके जलसे इसको नहलाया है। और श्रीविष्णुके नामका भी श्रवण कराया है; इसलिये इसके सारे पाप नष्ट हो गये हैं। अब धनेश्वर उत्तम गति प्राप्त करनेका अधिकारी हो गया है। यह वैष्णव पुरुषोंका कृपापात्र है, अतः इसे नरकमें न

पकाओ। इसको अनिच्छासे पुण्य प्राप्त हुआ है; इसलिये यह यक्षयोनिमें रहे और सम्पूर्ण नरकोंके दर्शन मात्रसे अपने पापोंका भोग पूरा कर ले।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिये ! यों कहकर देवर्षि नारदजी चले गये। फिर यमराज अपने सेवकके द्वारा उस ब्राह्मणको सम्पूर्ण नरकोंका दर्शन करानेके लिये वहाँसे ले गये। इसके बाद यमकी आज्ञाका पालन करनेवाला प्रेतराज धनेश्वरको सम्पूर्ण नरकोंके पास ले गया और उनका अवलोकन कराता हुआ इस प्रकार कहने लगा।

प्रेतराजने कहा—धनेश्वर ! महान् भय देनेवाले इन घोर नरकोंकी ओर दृष्टि डालो। इनमें पापी पुरुष सदा यमराजके सेवकोंद्वारा पकाये जाते हैं। यह जो भयानक नरक दिखायी देता है, इसका नाम तमबालुक है। इसमें ये पापाचारी जीव अपनी देह दग्ध होनेके कारण क्रन्दन कर रहे हैं। जो मनुष्य बलिवैश्वदेवके अन्तमें भूखसे दुर्बल हो घरपर आये हुए अतिथियोंका सत्कार नहीं करते, वे अपने पापकर्मके कारण इस नरकमें कष्ट भोगते हैं। जो गुरु, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, देवता तथा मूर्धाभिषिक्त राजाओंको लात मारते हैं, वे ही पापी यहाँ दृष्टिगोचर हो रहे हैं। यहाँ तपी हुई बालूपर चलनेके कारण इनके पैर जल गये हैं। इस नरकके छः अवान्तर भेद हैं। नाना प्रकारके पापोंके कारण इसमें आना पड़ता है। इसी प्रकार यह दूसरा महान् नरक अन्धतामिन्द्र कहलाता है। देखो, यहाँ सुईके समान मुँहवाले कीड़ोंके द्वारा पापियोंके शरीर विदीर्ण हो रहे हैं। यह नरक भयानक मुखवाले अनेक प्रकारके कीटोंसे ठसाठस भरा हुआ है। यह तीसरा क्रकच नामक नरक है। यह भी बड़ा भयानक दिखायी देता है। इसमें ये पापी मनुष्य आरेसे चरि जानेका कष्ट भोगते हैं। असिपत्रवन आदि भेदोंसे यह नरक छः प्रकारका बताया गया है। जो दूसरोंका पली और पुत्र आदिसे तथा अन्यान्य प्रियजनोंसे विछोह कराते हैं, वे ही लोग यहाँ कष्ट भोगते हैं। तलवारके समान पत्तोंसे इनके अङ्ग छिन्न-भिन्न हो रहे हैं और इसी भयसे ये इधर-उधर भाग रहे हैं। देखो, ये

पापी कितने कष्ट भोगते हैं और किस प्रकार इधर-उधर क्रद्दन करते फिरते हैं। यह चौथा नरक तो और भी भयानक है। इसका नाम अर्गला है। देखो, यमराजके दूत नाना प्रकारके पाशोंसे बाँधकर इन पापियोंको मुद्गर आदिसे पीट रहे हैं और ये जोर-जोरसे चीख रहे हैं। जो साधु पुरुषों और ब्राह्मण आदिको गला पकड़कर या और किसी उपायसे कहीं आने-जानेसे रोकते हैं, वे पापी यमराजके सेवकोंद्वारा यहाँ यातनामें डाले जाते हैं। वध और भेदन आदिके द्वारा इस नरकके भी छः भेद हैं। अब पाँचवें नरकपर दृष्टिपात करो। इसका नाम कूटशाल्मलि है। यहाँ जो ये सेमल आदिके वृक्ष खड़े हैं, ये सभी जलते हुए अङ्गरेके समान हैं। इसमें पापियोंको यातना दी जाती है। परायी स्त्री और पराये धनका अपहरण करनेवाले तथा दूसरोंसे द्रोह करनेवाले पापी सदा ही यहाँ कष्ट भोगते हैं। यह छठा नरक और भी अद्भुत है। इसे रक्तपूय कहते हैं—इसमें रक्त और पीब भरा रहता है। इसकी ओर देखो तो सही, इसमें कितने ही पापी मनुष्य नीचे मुँह करके लटकाये गये हैं और भयानक कष्ट भोग रहे हैं। ये सब अभक्ष्य-भक्षण और निन्दा करनेवाले तथा चुगली खानेवाले हैं। कोई ढूब रहे हैं, कोई मारे जा रहे हैं। ये सब-के-सब डरावनी आवाजके साथ चीख

रहे हैं। इस नरकके भी विग्रह आदि छः भेद हैं। धनेश्वर ! अब इधर दृष्टि डालो। यह भयङ्कर दिखायी देनेवाला सातवाँ नरक कुम्भिपाक है। यह तेल आदि द्रव्योंके भेदसे छः प्रकारका है। यमराजके दूत महापातकी पुरुषोंको इसीमें डालकर औटाते हैं और वे पापी इसमें अनेक हजार वर्षोंतक ढूबते-उतराते रहते हैं। देखो, वे भयानक नरक सब मिलाकर बयालीस हैं। बिना इच्छाके किया हुआ पातक शुष्क कहलाता है और इच्छापूर्वक किये हुए पातकको आर्द्र कहा गया है। आर्द्र और शुष्क आदि भेदोंसे प्रत्येक नरक दो प्रकारका है। इस प्रकार ये नरक पृथक्-पृथक् चौरासीकी संख्यामें स्थित हैं। प्रकीर्ण, अपाइत्तेय, मलिनीकरण, जातिभ्रंशकर, उपपातक, अतिपातक और महापातक—ये सात प्रकारके पातक माने गये हैं। इनके कारण पापी पुरुष उपर्युक्त सात नरकोंमें क्रमशः यातना भोगते हैं। तुम्हें कार्तिक-ब्रत करनेवाले पुरुषोंका संसर्ग प्राप्त हो चुका था; इसलिये अधिक पुण्यराशिका सञ्चय हो जानेसे नरकोंके कष्टसे छुटकारा मिल गया।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—सत्यभामा ! इस प्रकार प्रेतराज धनेश्वरको नरकोंका दर्शन कराकर उसे यक्षलोकमें ले गया तथा वहाँ जाकर वह यक्ष हुआ।

अशक्तावस्थामें कार्तिक-ब्रतके निर्वाहिका उपाय

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! भगवान् वासुदेव अपनी प्रियतमा सत्यभामाको यह कथा सुनाकर सायंकालका सन्ध्योपासन करनेके लिये अपनी माता देवकीके भवनमें चले गये। इस पापनाशक कार्तिक मासका ऐसा ही प्रभाव बतलाया गया है। यह भगवान् विष्णुको सदा ही प्रिय है तथा भोग और मोक्षरूपी फल प्रदान करनेवाला है। रातमें भगवान् विष्णुके समीप जागना, प्रातःकाल स्नान करना, तुलसीकी सेवामें संलग्न रहना, उद्यापन करना और दीप-दान देना—ये कार्तिक

मासके पाँच नियम हैं।* इन पाँचों नियमोंके पालनसे कार्तिकका ब्रत करनेवाला पुरुष पूर्ण फलका भागी होता है। वह फल भोग और मोक्ष देनेवाला बताया गया है।

ऋषि बोले—रोमहर्षणकुमार सूतजी ! आपने इतिहाससहित कार्तिक मासकी विधिका भलीभाँति वर्णन किया। यह भगवान् विष्णुको प्रिय लगनेवाला तथा अत्यन्त उत्तम फल देनेवाला है। इसका प्रभाव बड़ा ही आश्वर्यजनक है। इसलिये इसका अनुष्ठान अवश्य

* हरिजागरणं प्रातःस्नानं तुलसिसेवनम् । उद्यापनं दीपदानं ब्रतान्येतानि कार्तिके ॥ (११७ । ३)

करना चाहिये । परन्तु यदि कोई व्रत करनेवाला पुरुष संकटमें पड़ जाय या दुर्गम वनमें स्थित हो अथवा रोगोंसे पीड़ित हो तो उसे इस कल्याणमय कार्तिक-व्रतका अनुष्ठान कैसे करना चाहिये ?

सूतजीने कहा—महर्षियो ! ऐसे मनुष्यको भगवान् विष्णु अथवा शिवके मन्दिरमें केवल जागरण करना चाहिये । विष्णु और शिवके मन्दिर न मिलें तो किसी भी मन्दिरमें वह जागरण कर सकता है । यदि कोई दुर्गम वनमें स्थित हो अथवा आपत्तिमें फँस जाय तो वह अश्वस्थ वृक्षकी जड़के पास अथवा तुलसीके वृक्षोंके बीच बैठकर जागरण करे । जो पुरुष भगवान् विष्णुके समीप बैठकर श्रीविष्णुके नाम तथा चरित्रोंका गान करता है, उसे सहस्र गो-दानोंका फल मिलता है । बाजा बजानेवाला पुरुष वाजपेय यज्ञका फल पाता है और भगवान्के पास नृत्य करनेवाला पुरुष सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त करता है । जो उक्त नियमोंका पालन करनेवाले मनुष्योंको धन देता है, उसे यह सब पुण्य प्राप्त होता है । उक्त नियमोंका पालन करनेवाले पुरुषोंके दर्शन और नाम सुननेसे भी उनके पुण्यका छठा अंश प्राप्त होता है । जो आपत्तिमें फँस जानेके कारण नहानेके लिये जल न पा सके अथवा जो रोगी होनेके कारण स्नान न कर सके, वह भगवान् विष्णुका नाम लेकर मार्जन कर ले । जो कार्तिक-व्रतके पालनमें प्रवृत्त

होकर भी उसका उद्यापन करनेमें समर्थ न हो, उसे चाहिये कि अपने व्रतकी पूर्तिके लिये यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराये । ब्राह्मण इस पृथ्वीपर अव्यक्तरूप श्रीविष्णुके व्यक्त स्वरूप हैं । उनके सन्तुष्ट होनेपर भगवान् सदा सन्तुष्ट होते हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है । जो स्वयं दीपदान करनेमें असमर्थ हो, वह दूसरोंका दीप जलाये अथवा हवा आदिसे उन दीपोंकी यज्ञपूर्वक रक्षा करे । तुलसी-वृक्षके अभावमें वैष्णव ब्राह्मणका पूजन करे; क्योंकि भगवान् विष्णु अपने भक्तोंके हृदयमें सदा ही विराजमान रहते हैं । अथवा सब साधनोंके अभावमें व्रत करनेवाला पुरुष व्रतकी पूर्तिके लिये ब्राह्मणों, गौओं तथा पीपल और वटके वृक्षोंकी सेवा करे ।

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! आपने पीपल और वटको गौ तथा ब्राह्मणके समान कैसे बता दिया ? वे दोनों अन्य सब वृक्षोंकी अपेक्षा अधिक पूज्य क्यों माने गये ?

सूतजी बोले—महर्षियो ! पीपलके रूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु ही विराजते हैं । इसी प्रकार वट भगवान् शङ्करका और पलाश ब्रह्माजीका स्वरूप है । इन तीनोंका दर्शन, पूजन और सेवन पापहारी माना गया है । दुःख, आपत्ति, व्याधि और दुष्टोंके नाशमें भी उसको कारण बताया गया है ।

कार्तिक मासका माहात्म्य और उसमें पालन करने योग्य नियम

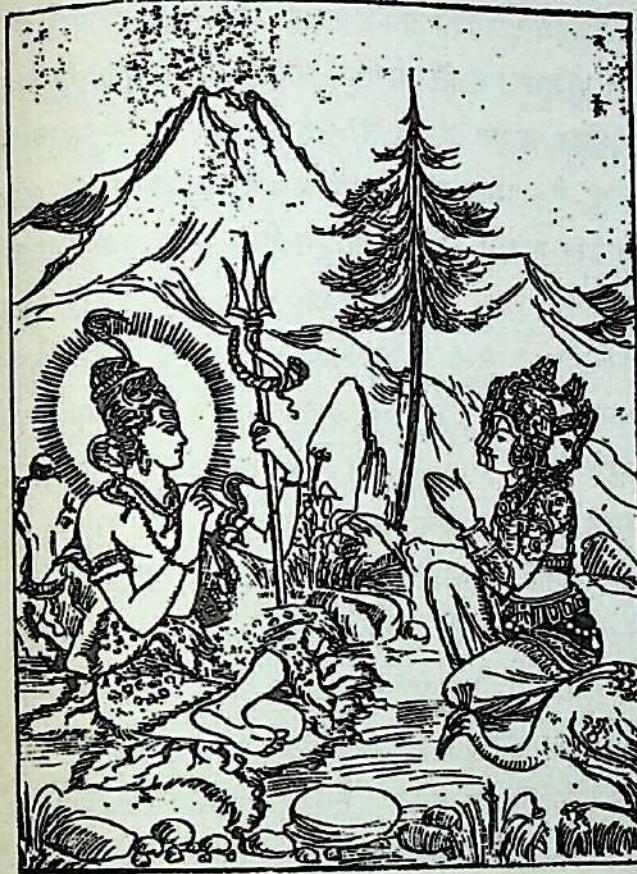
सत्यभामाने कहा—प्रभो ! कार्तिक मास सब मासोंमें श्रेष्ठ माना गया है । मैंने उसके माहात्म्यको विस्तारपूर्वक नहीं सुना । कृपया उसीका वर्णन कीजिये ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—सत्यभामे ! तुमने बड़ी उत्तम बात पूछी है । पूर्वकालमें महात्मा सूतने शौनक मुनिसे आदरपूर्वक कार्तिक-व्रतका वर्णन किया था । वही प्रसन्न मैं तुम्हें सुनाता हूँ ।

सूतजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ शौनकजी ! पूर्वकालमें कार्तिकेयजीके पूछनेपर महादेवजीने जिसका वर्णन किया था, उसको आप श्रवण कीजिये ।

कार्तिकेयजी बोले—पिताजी ! आप वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं । मुझे कार्तिक मासके स्नानकी विधि बताइये, जिससे मनुष्य दुःखरूपी समुद्रसे पार हो जाते हैं । साथ ही तीर्थके जलका माहात्म्य और माघस्नानका फल भी बताइये ।

महादेवजीने कहा—एक ओर सम्पूर्ण तीर्थ, समस्त दान, दक्षिणाओंसहित यज्ञ, पुष्कर, कुरुक्षेत्र,



हिमालय, अक्षूरतीर्थ, काशी और शूकरक्षेत्रमें निवास तथा दूसरी ओर केवल कार्तिक मास हो, तो वही भगवान् केशवको सर्वदा प्रिय है। जिसके हाथ, पैर, वाणी और मन वशमें हों तथा जिसमें विद्या, तप और कीर्ति विद्यमान हों, वही तीर्थके पूर्ण फलको प्राप्त करता है। श्रद्धारहित, नास्तिक, संशयालु और कोरी तर्कबुद्धिका सहारा लेनेवाले मनुष्य तीर्थसेवनके फलभागी नहीं होते। जो ब्राह्मण सबोरे उठकर सदा प्रातःस्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो परमात्माको प्राप्त होता है। घडानन ! स्नानका महत्व जानेवाले पुरुषोंने चार प्रकारके स्नान बतलाये हैं—वायव्य, वारुण, ब्राह्मा और दिव्य।

यह सुनकर सत्यभामा बोली—प्रभो ! मुझे चारों स्नानोंके लक्षण बतलाइये।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिये ! गोधूलिद्वारा किया हुआ स्नान वायव्य कहलाता है, सागर आदि जलशायोंमें किये हुए स्नानको वारुण कहते हैं, 'आपो हि ष्ठा मयो' आदि ब्राह्मण-मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक जो मार्जन किया जाता है, उसका नाम ब्राह्म है तथा बरसते हुए मेघके जल और सूर्यकी किरणोंसे शरीरकी शुद्धि करना दिव्य स्नान माना गया है। सब प्रकारके स्नानोंमें वारुण-स्नान श्रेष्ठ है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान करें। परन्तु शूद्र और स्त्रियोंके लिये बिना मन्त्रके ही स्नानका विधान है। बालक, युवा, वृद्ध, पुरुष, स्त्री और नपुंसक—सब लोग कार्तिक और माघमें प्रातःस्नानकी प्रशंसा करते हैं। कार्तिकमें प्रातःकाल स्नान करनेवाले लोग मनोवाञ्छित फल प्राप्त करते हैं।

कार्तिकेयजी बोले—पिताजी ! अन्य धर्मोंका भी वर्णन कीजिये, जिनका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य अपने समस्त पाप धोकर देवता बन जाता है।

महादेवजीने कहा—बेटा ! कार्तिक मासको उपस्थित देख जो मनुष्य दूसरेका अन्न त्याग देता है, वह प्रतिदिन कृच्छ्रतका फल प्राप्त करता है। कार्तिकमें तेल, मधु, काँसेके बर्तनमें भोजन और मैथुनका विशेषरूपसे परित्याग करना चाहिये। एक बार भी मांस भक्षण करनेसे मनुष्य राक्षसकी योनिमें जन्म पाता है और साठ हजार वर्षोंतक विष्ट्रामें डालकर सड़ाया जाता है। उससे छुटकारा पानेपर वह पापी विष्ट्रा खानेवाला ग्राम-शूकर होता है। कार्तिक मासमें शास्त्रविहित भोजनका नियम करनेपर अवश्य ही मोक्ष प्राप्त होता है। भगवान् विष्णुका परमधाम ही मोक्ष है। कार्तिकके समान कोई मास नहीं है, श्रीविष्णुसे बढ़कर कोई देवता नहीं है, वेदके तुल्य कोई शास्त्र नहीं है, गङ्गाके समान कोई तीर्थ नहीं है, सत्यके समान सदाचार, सत्ययुगके समान युग, रसनाके तुल्य तृप्तिका साधन, दानके सदृश सुख, धर्मके समान मित्र और नेत्रके समान कोई ज्योति नहीं है।*

* । प्रवृत्तानां तु भक्षाणां कार्तिके नियमे कृते ॥

अवश्यं प्राप्यते मोक्षो विष्णोस्तत्परमं पदम् । न कार्तिकसमो मासो न देवः केशवात्परः ॥

स्नान करनेवाले पुरुषोंके लिये समुद्रगामिनी पवित्र नदी प्रायः दुर्लभ होती है। कुलके अनुरूप उत्तम शीलवाली कन्या, कुलीन और शीलवान् दम्पति, जन्मदायिनी माता, विशेषतः पिता, साधु पुरुषोंके सम्मानका अवसर, धार्मिक पुत्र, द्वारकाका निवास, भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन, गोमतीका स्नान और कार्तिकका व्रत—ये सब मनुष्यके लिये प्रायः दुर्लभ हैं। चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणकालमें ब्राह्मणोंको पृथ्वी दान करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह कार्तिकमें भूमिपर शयन करनेवाले पुरुषको स्वतः प्राप्त हो जाता है। ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन कराये, चन्दन आदिसे उनकी पूजा करे। कम्बल, नाना प्रकारके रत्न और वस्त्र दान करे। ओढ़नेके साथ ही बिछौना भी दे। तुम्हें कार्तिक मासमें जूते और छातेका भी दान करना चाहिये। कार्तिक मासमें जो मनुष्य प्रतिदिन पत्तलमें भोजन करता है, वह चौदह इन्द्रोंकी आयुर्पर्यन्त कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता। उसे सम्पूर्ण कामनाओं तथा समस्त तीर्थोंका फल प्राप्त होता है। पलाशके पत्तेपर भोजन करनेसे मनुष्य कभी नरक नहीं देखता; किन्तु वह पलाशके बिचले पत्रका अवश्य त्याग कर दे।

कार्तिकमें तिलका दान, नदीका स्नान, सदा साधु-पुरुषोंका सेवन और पलाशके पत्तोंमें भोजन सदा मोक्ष देनेवाला है। कार्तिकके महीनेमें मौन-ब्रतका पालन, पलाशके पत्तोंमें भोजन, तिलमिश्रित जलसे स्नान, निरन्तर क्षमाका आश्रय और पृथ्वीपर शयन करनेवाला पुरुष युग-युगके उपार्जित पापोंका नाश कर डालता है। जो कार्तिक मासमें भगवान् विष्णुके सामने उषाकालतक जागरण करता है, उसे सहस्र गोदानोंका फल मिलता है।

पितृ-पक्षमें अन्नदान करनेसे तथा ज्येष्ठ और आषाढ़ मासमें जल देनेसे मनुष्योंको जो फल मिलता है, वह कार्तिकमें दूसरोंका दीपक जलाने मात्रसे प्राप्त हो जाता है। जो बुद्धिमान् कार्तिकमें मन, वाणी और क्रियाद्वारा पुष्कर तीर्थका स्मरण करता है, उसे लाखों-करोड़ोंगुना पुण्य होता है। माघ मासमें प्रयाग, कार्तिकमें पुष्कर और वैशाख मासमें अवन्तीपुरी (उज्जैन) —ये एक युगतक उपार्जित किये हुए पापोंका नाश कर डालते हैं। कार्तिकीय ! संसारमें विशेषतः कलियुगमें वे ही मनुष्य धन्य हैं, जो सदा पितरोंके उद्धारके लिये श्रीहरिका सेवन करते हैं। बेटा ! बहुत-से पिण्ड देने और गयामें श्राद्ध आदि करनेकी क्या आवश्यकता है। वे मनुष्य तो हरिभजनके ही प्रभावसे पितरोंका नरकसे उद्धार कर देते हैं। यदि पितरोंके उद्देश्यसे दूध आदिके द्वारा भगवान् विष्णुको स्नान कराया जाय तो वे पितर स्वर्गमें पहुँचकर कोटि कल्पोंतक देवताओंके साथ निवास करते हैं। जो कमलके एक फूलसे भी देवेश्वर भगवान् लक्ष्मीपतिका पूजन करता है, वह एक करोड़ वर्षतकके पापोंका नाश कर देता है। देवताओंके स्वामी भगवान् विष्णु कमलके एक पुष्पसे भी पूजित और अभिवन्दित होनेपर एक हजार सात सौ अपराध क्षमा कर देते हैं। घडानन ! जो मुखमें, मस्तकपर तथा शरीरमें भगवान्की प्रसादभूता तुलसीको प्रसन्नतापूर्वक धारण करता है, उसे कलियुग नहीं छूता। भगवान् विष्णुको निवेदन किये हुए प्रसादसे जिसके शरीरका स्पर्श होता है, उसके पाप और व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं। शङ्खका जल, श्रीहरिको भक्तिपूर्वक अर्पण किया हुआ नैवेद्य, चरणोदक, चन्दन तथा प्रसादस्वरूप धूप—ये ब्रह्महत्याका भी पाप दूर करनेवाले हैं।



न वेदसदृशं शास्त्रं न तीर्थं गङ्ग्या समम् ॥ न सत्येन समं वृत्तं न कृतेन समं युगम् ॥

न तृप्ती रसनातुल्या न दानसदृशं सुखम् ॥ न धर्मसदृशं मित्रं न ज्योतिश्कुषा समम् ॥ (१२० । २२—२५)

**प्रसङ्गतः माधस्नानकी महिमा, शूकरक्षेत्रका माहात्म्य तथा
मासोपवास-ब्रतकी विधिका वर्णन**

महादेवजी कहते हैं—भक्तप्रवर कार्तिकेय ! अब माधस्नानका माहात्म्य सुनो । महामते ! इस संसारमें तुम्हरे समान विष्णु-भक्त पुरुष नहीं हैं । चक्रतीर्थमें श्रीहरिका और मथुरामें श्रीकृष्णका दर्शन करनेसे मनुष्यको जो फल मिलता है, वही माध-मासमें केवल स्नान करनेसे मिल जाता है । जो जितेन्द्रिय, शान्तचित्त और सदाचारयुक्त होकर माध मासमें स्नान करता है, वह फिर कभी संसार-बन्धनमें नहीं पड़ता ।

इतनी कथा सुनाकर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—सत्यभामा ! अब मैं तुम्हरे सामने शूकरक्षेत्रके माहात्म्यका वर्णन करूँगा, जिसके विज्ञानमात्रसे मेरा सान्निध्य प्राप्त होता है । पाँच योजन विस्तृत शूकरक्षेत्र मेरा मन्दिर (निवासस्थान) है । देवि ! जो इसमें निवास करता है, वह गदहा हो तो भी चतुर्भुज स्वरूपको प्राप्त होता है । तीन हजार तीन सौ तीन हाथ मेरे मन्दिरका परिमाण माना गया है । देवि ! जो अन्य स्थानोंमें साठ हजार वर्षोंतक तपस्या करता है, वह मनुष्य शूकरक्षेत्रमें आधे पहरतक तप करनेपर ही उतनी तपस्याका फल प्राप्त कर लेता है । कुरुक्षेत्रके सन्निहति^१ नामक तीर्थमें सूर्यग्रहणके समय तुला-पुरुषके दानसे जो फल बताया गया है, वह काशीमें दसगुना, त्रिवेणीमें सौगुना और गङ्गा-सागर-संगममें सहस्रगुना कहा गया है; किन्तु मेरे निवासभूत शूकरक्षेत्रमें उसका फल अनन्तगुना समझना चाहिये । भामिनि ! अन्य तीर्थोंमें उत्तम विधानके साथ जो लाखों दान दिये जाते हैं, शूकरक्षेत्रमें एक ही दानसे उनके समान फल प्राप्त हो जाता है । शूक्र, क्षेत्र, त्रिवेणी और गङ्गा-सागर-संगममें एक बार ही स्नान करनेसे मनुष्यकी ब्रह्महत्या दूर हो जाती है । पूर्वकालमें राजा अलर्कने शूकरक्षेत्रका माहात्म्य श्रवण करके सातों

द्वीपोंसहित पृथ्वीका राज्य प्राप्त किया था ।

कार्तिकेयने कहा—भगवन् ! मैं ब्रतोंमें उत्तम मासोपवास-ब्रतका वर्णन सुनना चाहता हूँ । साथ ही उसकी विधि एवं यथोचित फलको भी श्रवण करना चाहता हूँ ।

महादेवजी बोले—बेटा ! तुम्हारा विचार बड़ा उत्तम है । तुमने जो कुछ पूछा है, वह सब बताता हूँ । जैसे देवताओंमें भगवान् विष्णु, तपनेवालोंमें सूर्य, पर्वतोंमें मेरु, पक्षियोंमें गरुड़, तीर्थोंमें गङ्गा तथा प्रजाओंमें वैश्य श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सब ब्रतोंमें मासोपवास-ब्रत श्रेष्ठ माना गया है । सम्पूर्ण ब्रतोंसे, समस्त तीर्थोंसे तथा सब प्रकारके दानोंसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह सब मासोपवास करनेवालेको मिल जाता है । वैष्णवयज्ञके उद्देश्यसे भगवान् जनार्दनकी पूजा करनेके पश्चात् गुरुकी आज्ञा लेकर मासोपवास-ब्रत करना चाहिये । शास्त्रोक्त जितने भी वैष्णवब्रत हैं, उन सबको तथा द्वादशीके पवित्र ब्रतको करनेके पश्चात् मासोपवास-ब्रत करना उचित है । अतिकृच्छा घराक और चान्द्रायण-ब्रतोंका अनुष्ठान करके गुरु और ब्राह्मणकी आज्ञासे मासोपवास-ब्रत करे । आश्विन मासके शुक्लपक्षकी एकादशीको उपवास करके तीस दिनोंके लिये इस ब्रतको ग्रहण करे । जो मनुष्य भगवान् वासुदेवकी पूजा करके कार्तिक मासभर उपवास करता है, वह मोक्षफलका भागी होता है । भगवान्के मन्दिरमें जाकर तीनों समय भक्तिपूर्वक सुन्दर मालंगी, नील-कमल, पद्म, सुगन्धित कमल, केशर, खस्स, कफूर, उत्तम चन्दन, नैवेद्य और धूप-दीप आदिसे श्रीजनार्दनका पूजन करे । मन, वाणी और क्रियाद्वारा श्रीगरुडध्वजकी आराधनामें लगा रहे । स्त्री, पुरुष, विधवा—जो कोई भी

१—महाभारत युद्धका स्थान ही 'सन्निहति' कहलाता है । इसीको कहीं-कहीं 'विनशन-तीर्थ' भी कहा गया है ।

इस ब्रतको करे, पूर्ण भक्तिके साथ इन्द्रियोंको काबूमें रखते हुए दिन-रात श्रीविष्णुके नामोंका कीर्तन करता रहे। भक्तिपूर्वक श्रीविष्णुकी स्तुति करे। झूठ न बोले। सम्पूर्ण जीवोंपर दया करे। अन्तःकरणकी वृत्तियोंको अशान्त न होने दे। हिंसा त्याग दे। सोया हो या बैठा, श्रीवासुदेवका कीर्तन किया करे। अन्नका स्मरण, अवलोकन, सूँघना, खाद लेना, चर्चा करना तथा ग्रासको मुँहमें लेना—ये सभी निषिद्ध हैं। ब्रतमें स्थित मनुष्य शरीरमें उबटन लगाना, सिरमें तेलकी मालिश कराना, पान खाना और चन्दन लगाना छोड़ दे तथा अन्यान्य निषिद्ध वस्तुओंका भी त्याग करे। ब्रत करनेवाला पुरुष शास्त्रविशद्ध कर्म करनेवाले व्यक्तिका स्पर्श न करे। उससे वार्तालाप भी न करे। पुरुष, सौभाग्यवती स्त्री अथवा विधिवा नारी शास्त्रोक्त विधिसे एक मासतक उपवास करके भगवान् वासुदेवका पूजन करे। यह ब्रत गिने-गिनाये तीस दिनोंका होता है, इससे अधिक या कम दिनोंका नहीं। मनको संयममें रखनेवाला जितेन्द्रिय पुरुष एक मासतक

उपवासके नियमको पूरा करके द्वादशी तिथिको भगवान् गरुडध्वजका पूजन करे। फूल, माल, गन्ध, धूप, चन्दन, वस्त्र, आभूषण और वाद्य आदिके द्वारा भगवान् विष्णुको संतुष्ट करे। चन्दनमिश्रित तीर्थके जलसे भक्तिपूर्वक भगवान्को स्नान कराये। फिर उनके अङ्गोंमें चन्दनका लेप करके गन्ध और पुष्पोंसे शृङ्खार करे। फिर वस्त्र आदिका दान करके उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन कराये, उन्हें दक्षिणा दे और प्रणाम करके उनसे त्रुटियोंके लिये क्षमा-याचना करे। इस प्रकार मासोपवासपूर्वक जनार्दनकी पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे मनुष्य श्रीविष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। मण्डपमें उपस्थित ब्राह्मणोंसे बारंबार इस प्रकार कहना चाहिये—‘द्विजवरो! इस ब्रतमें जो कोई भी कार्य मन्त्रहीन, क्रियाहीन और सब प्रकारके साधनों एवं विधियोंसे हीन हुआ हो, वह सब आपलोगोंके वचन और प्रसादसे परिपूर्ण हो जाय।’ कार्तिकेय! इस प्रकार मैंने तुमसे मासोपवासकी विधिका यथावत् वर्णन किया है।



शालग्रामशिलाके पूजनका महात्म्य

कार्तिकेयने कहा—भगवन्! आप योगियोंमें श्रेष्ठ हैं। मैंने आपके मुखसे सब धर्मोंका श्रवण किया। प्रभो! अब शालग्राम-पूजनकी विधिका विस्तारके साथ वर्णन कीजिये।

महादेवजी बोले—महामते! तुमने बहुत उत्तम बात पूछी है। वत्स! तुम जो कुछ पूछ रहे हो, उसका उत्तर देता हूँ; सुनो। शालग्रामशिलामें सदा चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकी लीन रहती है। जो शालग्रामशिलाका दर्शन करता, उसे मस्तक झुकाता, स्नान करता और पूजन करता है, वह कोटि यज्ञोंके समान पुण्य तथा कोटि गोदानोंका फल पाता है। बेटा! जो पुरुष सर्वदा भगवान् विष्णुकी शालग्रामशिलाका चरणामृत पान करता है, उसने गर्भवासके भयङ्कर कष्टका नाश कर दिया। जो सदा भोगोंमें आसक्त और भक्तिभावसे हीन है, वह भी शालग्रामशिलाका पूजन

करके भगवत्सरूप हो जाता है। शालग्रामशिलाका स्मरण, कीर्तन, ध्यान, पूजन और नमस्कार करनेपर कोटि-कोटि ब्रह्महत्याओंका पाप नष्ट हो जाता है। शालग्रामशिलाका दर्शन करनेसे अनेक पाप दूर हो जाते हैं। जो मनुष्य प्रतिदिन शालग्रामशिलाकी पूजा करता है, उसे न तो यमराजका भय होता है और न मरने या जन्म लेनेका ही। जिन मनुष्योंने भक्तिभावसे शालग्रामको नमस्कार मात्र कर लिया, उनको तथा मेरे भक्तोंको फिर मनुष्य-योनिकी प्राप्ति कैसे हो सकती है। वे तो मुक्तिके अधिकारी हैं। जो मेरी भक्तिके घमंडमें आकर मेरे प्रभु भगवान् वासुदेवको नमस्कार नहीं करते, वे पापसे मोहित हैं; उन्हें मेरा भक्त नहीं समझना चाहिये।

करोड़ों कमल-पुष्पोंसे मेरी पूजा करनेपर जो फल होता है, वही शालग्रामशिलाके पूजनसे कोटिगुना होकर मिलता है, जिन लोगोंने मर्यालोकमें आकर शालग्राम-

शिलाका पूजन नहीं किया, उन्होंने न तो कभी मेरा पूजन किया और न नमस्कार ही किया। जो शालग्रामशिलाके अग्रभागमें मेरा पूजन करता है, उसने मानो लगातार इक्कीस युगोंतक मेरी पूजा कर ली। जो मेरा भक्त होकर वैष्णव पुरुषका पूजन नहीं करता वह मुझसे द्वेष रखनेवाला है। उसे तबतकके लिये नरकमें रहना पड़ता है, जबतक कि चौदह इन्द्रोंकी आयु समाप्त नहीं हो जाती।

जिसके घरमें कोई वानप्रस्थी, वैष्णव अथवा संन्यासी दो घड़ी भी विश्राम करता है, उसके पितामह आठ युगोंतक अमृत भोजन करते हैं। शालग्रामशिलासे प्रकट हुए लिङ्गोंका एक बार भी पूजन करनेपर मनुष्य योग और सांख्यसे रहित होनेपर भी मुक्त हो जाते हैं। मेरे कोटि-कोटि लिङ्गोंका दर्शन, पूजन और स्तवन करनेसे जो फल मिलता है, वह एक ही शालग्रामशिलाके पूजनसे ग्रास हो जाता है।

जो वैष्णव प्रतिदिन बारह शालग्रामशिलाओंका पूजन करता है, उसके पुण्यका वर्णन सुनो। गङ्गाजीके तटपर करोड़ों शिवलिङ्गोंका पूजन करनेसे तथा लगातार आठ युगोंतक काशीपुरीमें रहनेसे जो पुण्य होता है, वह उस वैष्णवको एक ही दिनमें प्राप्त हो जाता है। अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता—जो वैष्णव मनुष्य शालग्रामशिलाका पूजन करता है, उसके पुण्यकी गणना करनेमें मैं तथा ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं; इसलिये बेटा! मेरे भक्तोंको उचित है कि वे मेरी प्रसन्नताके लिये भक्तिपूर्वक शालग्रामशिलाका भी पूजन करें। जहाँ शालग्रामशिला-रूपी भगवान् केशव विराजमान हैं, वहाँ सम्पूर्ण देवता, असुर, यक्ष तथा चौदहों भुवन मौजूद हैं। अन्य देवताओंका करोड़ों बार कीर्तन करनेसे जो फल होता है, वह भगवान् केशवका एक बार कीर्तन करनेसे ही मिल जाता है। अतः कलियुगमें श्रीहरिका कीर्तन ही सर्वोत्तम पुण्य है।* श्रीहरिका चरणोदक पान करनेसे ही समस्त पापोंका प्रायश्चित्त हो जाता है। फिर उनके लिये दान, उपवास और चान्द्रायण-व्रत करनेकी क्या आवश्यकता है।

बेटा स्कन्द! अन्य सभी शुभकर्मेकि फलोंका माप है; किन्तु शालग्रामशिलाके पूजनसे जो फल मिलता है, उसका कोई माप नहीं। जो विष्णुभक्त ब्राह्मणको शालग्रामशिलाका दान करता है, उसने मानो सौ यज्ञों-द्वारा भगवान्का यजन कर लिया। जो शालग्रामशिलाके जलसे अपना अधिषेक करता है, उसने सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर लिया और समस्त यज्ञोंकी दीक्षा ले ली। जो प्रतिदिन भक्तिपूर्वक एक-एक सेर तिलका दान करता है, वह शालग्रामशिलाके पूजन-मात्रसे उस फलको प्राप्त कर लेता है। शालग्रामशिलाको अर्पण किया हुआ थोड़ा-सा पत्र, पुष्प, फल, जल, मूल और दूर्वादल भी मेरु पर्वतके समान महान् फल देनेवाला होता है।

जहाँ शालग्रामशिला होती है, वहाँ भगवान् श्रीहरि विराजमान रहते हैं। वहाँ किया हुआ स्नान और दान काशीसे सौगुना अधिक फल देनेवाला है। प्रयाग, कुरुक्षेत्र, पुष्कर और नैमिषारण्य—ये सभी तीर्थ वहाँ मौजूद रहते हैं; अतः वहाँ उन तीर्थोंकी अपेक्षा कोटिगुना अधिक पुण्य होता है। काशीमें मिलनेवाला मोक्षरूपी महान् फल भी वहाँ सुलभ होता है। जहाँ शालग्राम-शिलासे प्रकट होनेवाले भगवान् शालग्राम तथा द्वारकासे प्रकट होनेवाले भगवान् गोमतीचक्र हों तथा जहाँ इन दोनोंका संगम हो गया हो वहाँ निःसन्देह मोक्षकी प्राप्ति होती है। शालग्रामशिलाके पूजनमें मन्त्र, जप, भावना, स्तुति अथवा किसी विशेष प्रकारके आचारका बन्धन नहीं है। शालग्रामशिलाके समुख विशेषतः कार्तिक मासमें आदरपूर्वक स्वस्तिकका चिह्न बनाकर मनुष्य अपनी सात पीढ़ियोंको पवित्र कर देता है। जो भगवान् केशवके समक्ष मिठी अथवा गेरू आदिसे छोटा-सा भी मण्डल (चौक) बनाता है, वह कोटि कल्पोंतक दिव्यलोकमें निवास करता है। श्रीहरिके मन्दिरको सजानेसे अगम्यागमन तथा अभक्ष्यभक्षण-जैसे पाप भी नष्ट हो जाते हैं। जो नारी प्रतिदिन भगवान् विष्णुके सामने चौक पूरती है, वह सात जन्मोंतक कभी विधवा नहीं होती।

* सुराणां कीर्तनैः सर्वैः कोटिभिश्च फलं कृतम्। तत्फलं कीर्तनादेव केशवे सुकृतं कलै॥ (१२२। ३६-३७)

भगवत्पूजन, दीपदान, यमतर्पण, दीपावली-कृत्य, गोवर्धन-पूजा और यमद्वितीयाके दिन करने योग्य कृत्योंका वर्णन

महादेवजी कहते हैं—जो प्रतिदिन मालतीसे भगवान् गरुड़ध्वजका पूजन करता है, वह जन्मके दुःखों और बुद्धिमें रोगोंसे छुटकारा पाकर मुक्त हो जाता है। जिसने कार्तिकमें मालतीकी मालासे भगवान् विष्णुकी पूजा की है, उसके पापोंको भगवान् श्रीकृष्ण धो डालते हैं। चन्दन, कपूर, अरगजा, केशर, केवड़ा और दीपदान भगवान् केशवको सदा ही प्रिय हैं। कमलका पुष्प, तुलसीदल, मालती, अगस्त्यका फूल और दीपदान—ये पाँच वस्तुएँ कार्तिकमें भगवान्के लिये परम प्रिय मानी गयी हैं। कार्तिकेय ! केवड़ेके फूलोंसे भगवान् हृषीकेशका पूजन करके मनुष्य उनके परम पवित्र एवं कल्याणमय धामको प्राप्त होता है। जो अगस्त्यके फूलोंसे जनार्दनका पूजन करता है, उसके दर्शनसे नरककी आग बुझ जाती है। जैसे कौस्तुभमणि और वनमालासे भगवान्को प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार कार्तिकमें तुलसीदलसे वे अधिक संतुष्ट होते हैं।

कार्तिकेय ! अब कार्तिकमें दिये जानेवाले दीपका माहात्म्य सुनो। मनुष्यके पितर अन्य पितृगणोंके साथ सदा इस बातकी अभिलाषा करते हैं कि क्या हमारे कुलमें भी कोई ऐसा उत्तम पितृभक्त पुत्र उत्पन्न होगा, जो कार्तिकमें दीपदान करके श्रीकेशवको संतुष्ट कर सके। रुक्त ! कार्तिकमें धी अथवा तिलके तेलसे जिसका दीपक जलता रहता है, उसे अश्वमेध यज्ञसे क्या लेना है। जिसने कार्तिकमें भगवान् केशवके समक्ष दीपदान किया है, उसने सम्पूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान कर लिया और समस्त तीर्थोंमें गोता लगा लिया। बेटा ! विशेषतः कृष्णपक्षमें पाँच दिन बड़े पवित्र हैं। (कार्तिक कृष्णा १३ से कार्तिक शुक्ल २ तक) उनमें जो कुछ भी दान किया जाता है, वह सब अक्षय एवं सम्पूर्ण कामनाओंको

पूर्ण करनेवाला होता है। लीलावती वेश्या दूसरेके रखे हुए दीपको ही जलाकर शुद्ध हो अक्षय स्वर्गको चली गयी। इसलिये रात्रिमें सूर्यास्त हो जानेपर घरमें, गोशालामें, देववृक्षके नीचे तथा मन्दिरोंमें दीपक जलाकर रखना चाहिये। देवताओंके मन्दिरोंमें, श्मशानोंमें और नदियोंके टटपर भी अपने कल्याणके लिये धृत आदिसे पाँच दिनोंतक दीपक जलाने चाहिये। ऐसा करनेसे जिनके श्राद्ध और तर्पण नहीं हुए हैं, वे पापी पितर भी दीपदानके पुण्यसे परम मोक्षको प्राप्त हो जाते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—भामिनि ! कार्तिकके कृष्णपक्षकी त्रयोदशीको घरसे बाहर यमराजके लिये दीप देना चाहिये। इससे दुर्मृत्युका नाश होता है। दीप देते समय इस प्रकार कहना चाहिये—‘मृत्यु’, पाशधारी काल और अपनी पत्नीके साथ सूर्यनन्दन यमराज त्रयोदशीको दीप देनेसे प्रसन्न हों।’* कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीको चन्द्रोदयके समय नरकसे डरनेवाले मनुष्योंको अवश्य स्नान करना चाहिये। जो चतुर्दशीको प्रातःकाल स्नान करता है, उसे यमलोकका दर्शन नहीं करना पड़ता। अपामार्ग (ओंगा या चिचड़ा), तुम्बी (लौकी), प्रपुत्राट (चकवड़) और कट्टफल (कायफल) — इनको स्नानके बीचमें मस्तकपर घुमाना चाहिये। इससे नरकके भयका नाश होता है। उस समय इस प्रकार प्रार्थना करे—‘हे अपामार्ग ! मैं हराईके ढेले, कौटे और पत्तोंसहित तुम्हें बार-बार मस्तकपर घुमा रहा हूँ। मेरे पाप हर लो।’† यों कहकर अपामार्ग और चकवड़को मस्तकपर घुमाये। तत्पश्चात् यमराजके नामोंका उच्चारण करके तर्पण करे। वे नाम-मन्त्र इस प्रकार हैं—यमाय नमः, धर्मराजाय नमः, मृत्युवे नमः, अन्तकाय नमः, वैवस्वताय नमः, कालाय

* मृत्युना पाशहस्तेन कालेन भार्या सह। त्रयोदश्यां दीपदानात्पूर्यजः प्रीयतामिति ॥ (१२४ । ५)

† सीतालोष्टसमायुक्तः सकण्टकदलग्नितः। हर पापमपामार्ग ब्राह्म्यमाणः पुनः पुनः ॥ (१२४ । ११)

नमः, सर्वभूतक्षयाय नमः, औदुम्बराय नमः, दश्माय
नमः, नीलाय नमः, परमेष्ठिने नमः, वृकोदराय नमः,
चित्राय नमः, चित्रगुप्ताय नमः।

देवताओंका पूजन करके दीपदान करना चाहिये। इसके बाद रात्रिके आरम्भमें भिन्न-भिन्न स्थानोंपर मनोहर दीप देने चाहिये। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदिके मन्दिरोंमें, गुप्त गृहोंमें, देववृक्षोंके नीचे, सभाभवनमें, नदियोंके किनारे, चहारदीवारीपर, बगीचेमें, बावलीके तटपर, गली-कूचोंमें, गृहोद्यानमें तथा एकान्त अश्वशालाओं एवं गजशालाओंमें भी दीप जलाने चाहिये। इस प्रकार रात व्यतीत होनेपर अमावास्याको प्रातःकाल स्नान करे और भक्तिपूर्वक देवताओं तथा पितरोंका पूजन और उन्हें प्रणाम करके पार्वण श्राद्ध करे; फिर दही, दूध, धी आदि नाना प्रकारके भोज्य पदार्थों-द्वारा ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उनसे क्षमा-प्रार्थना करे। तदनन्तर भगवान्‌के जागनेसे पहले स्त्रियोंके द्वारा लक्ष्मीजीको जगाये। जो प्रबोधकाल (ब्राह्ममुहूर्त)में लक्ष्मीजीको जगाकर उनका पूजन करता है, उसे धन-सम्पत्तिकी कमी नहीं होती। तत्पश्चात् प्रातःकाल (कार्तिकशुक्ला प्रतिपदाको) गोवर्धनका पूजन करना चाहिये। उस समय गौओं तथा बैलोंको आभूषणोंसे सजाना चाहिये। उस दिन उनसे सवारीका काम नहीं लेना चाहिये तथा गायोंको दुहना भी नहीं चाहिये। पूजनके पश्चात् गोवर्धनसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

गोवर्धन धराधार गोकुलत्राणकारक ॥
विष्णुबाहुकृतोच्छ्राय गवां कोटिप्रदो भव ।
या लक्ष्मीलोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता ॥
घृतं वहति यज्ञार्थं मम पापं व्यपोहतु ।
अग्रतः सन्तु मे गावो गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥

(१२४। ३१—३३)

'पृथ्वीको धारण करनेवाले गोवर्धन ! आप गोकुलके रक्षक हैं। भगवान् श्रीकृष्णने आपको अपनी भुजाओंपर उठाया था। आप मुझे कोटि-कोटि गौएँ प्रदान करें। लोकपालोंकी जो लक्ष्मी धेनुरूपमें स्थित हैं और यज्ञके लिये घृत प्रदान करती है, वह मेरे पापको दूर करे। मेरे आगे गौएँ रहें, मेरे पीछे भी गौएँ रहें, मेरे हृदयमें गौओंका निवास हो तथा मैं भी गौओंके बीचमें निवास करूँ ।'

कार्तिक शुक्लपक्षकी द्वितीयाको पूर्वाह्नमें यमकी पूजा करे। यमुनामें स्नान करके मनुष्य यमलोकको नहीं देखता। कार्तिक शुक्ला द्वितीयाको पूर्वकालमें यमुनाने यमराजको अपने घरपर सत्कारपूर्वक भोजन कराया था। उस दिन नारकी जीवोंको यातनासे छुटकारा मिला और उन्हें तृप्त किया गया। वे पाप-मुक्त होकर सब बन्धनोंसे छुटकारा पा गये और सब-के-सब यहाँ अपनी इच्छाके अनुसार संतोषपूर्वक रहे। उन सबने मिलकर एक महान् उत्सव मनाया, जो यमलोकके राज्यको सुख पहुँचानेवाला था। इसीलिये यह तिथि तीनों लोकोंमें यमद्वितीयाके नामसे विश्वात हुई; अतः विद्वान् पुरुषोंको उस दिन अपने घर भोजन नहीं करना चाहिये। वे बहिनके घर जाकर उसीके हाथसे मिले हुए अन्नको, जो पुष्टिपूर्वक है, स्वेहपूर्वक भोजन करें तथा जितनी बहिनें हों, उन सबको पूजा और सत्कारके साथ विधिपूर्वक सुवर्ण, आभूषण एवं वस्त्र दें। सगी बहिनके हाथका अन्न भोजन करना उत्तम माना गया है। उसके अभावमें किसी भी बहिनके हाथका अन्न भोजन करना चाहिये। वह बलको बढ़ानेवाला है। जो लोग उस दिन सुवासिनी बहिनोंको वस्त्र-दान आदिसे सन्तुष्ट करते हैं, उन्हें एक सालतक कलह एवं शत्रुके भयका सामना नहीं करना पड़ता। यह प्रसङ्ग धन, यश, आयु, धर्म, काम एवं अर्थकी सिद्धि करनेवाला है।

प्रबोधिनी एकादशी और उसके जागरणका महत्व तथा भीष्मपञ्चक-ब्रतकी विधि एवं महिमा

महादेवजी कहते हैं—सुरश्रेष्ठ कार्तिकेय ! अब प्रबोधिनी एकादशीका माहात्म्य सुनो । यह पापका नाशक, पुण्यकी वृद्धि करनेवाला तथा तत्त्वचिन्तनपरायण पुरुषोंको मोक्ष देनेवाला है । समुद्रसे लेकर सरोवरोंतक जितने तीर्थ हैं, वे भी तभीतक गरजते हैं जबतक कि कार्तिकमें श्रीहरिकी प्रबोधिनी तिथि नहीं आती । प्रबोधिनीको एक ही उपवाससे सहस्र अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञोंका फल मिल जाता है । इस चराचर त्रिलोकीमें जो वस्तु अत्यन्त दुर्लभ मानी गयी है, उसे भी माँगनेपर हरिबोधिनी एकादशी प्रदान करती है । यदि हरिबोधिनी एकादशीको उपवास किया जाय तो वह अनायास ही ऐश्वर्य, सन्तान, ज्ञान, राज्य और सुख-सम्पत्ति प्रदान करती है । मनुष्यके किये हुए मेरुपर्वतके समान बड़े-बड़े पापोंको भी हरिबोधिनी एकादशी एक ही उपवाससे भस्म कर डालती है । जो प्रबोधिनी एकादशीको स्वभावसे ही विधिपूर्वक उपवास करता है, वह शास्त्रोक्त फलका भागी होता है । प्रबोधिनी एकादशीको रात्रिमें जागरण करनेसे पहलेके हजारों जन्मोंकी की हुई पापराशि रूढ़िके ढेरकी भाँति भस्म हो जाती है ।

रात्रिमें जागरण करते समय भगवत्सम्बन्धी गीत, वाद्य, नृत्य और पुराणोंके पाठकी भी व्यवस्था करनी चाहिये । धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, गन्ध, चन्दन, फल और अर्घ्य आदिसे भगवान्की पूजा करनी चाहिये । मनमें श्रद्धा रखकर दान देना और इन्द्रियोंको संयममें रखना चाहिये । सत्यभाषण, निद्राका अभाव, प्रसन्नता, शुभकर्ममें प्रवृत्ति, मनमें आश्रम्य और उत्साह, आलस्य आदिका त्याग, भगवान्की परिक्रमा तथा नमस्कार—इन बातोंका यत्नपूर्वक पालन करना चाहिये । महाभाग ! प्रत्येक पहरमें उत्साह और उमड़के साथ भक्तिपूर्वक भगवान्की आरती उतारनी चाहिये । जो पुरुष भगवान्के समीप एकाग्रचित्त होकर उपर्युक्त गुणोंसे युक्त जागरण करता है, वह पुनः इस पृथ्वीपर जन्म नहीं लेता । जो धनकी कृपणता छोड़कर इस प्रकार भक्तिभावसे

एकादशीको जागरण करता है, वह परमात्मामें लीन हो जाता है । जो कार्तिकमें पुरुषसूत्रके द्वारा प्रतिदिन श्रीहरिका पूजन करता है, उसके द्वारा करोड़ों वर्षोंतक भगवान्की पूजा सम्पन्न हो जाती है । जो मनुष्य पाञ्चरात्रमें बतायी हुई यथार्थ विधिके अनुसार कार्तिकमें भगवान्का पूजन करता है, वह मोक्षका भागी होता है । जो कार्तिकमें 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्रके द्वारा श्रीहरिकी अर्चना करता है, वह नरकके दुःखोंसे छुटकारा पाकर अनामय पदको प्राप्त होता है । जो कार्तिकमें श्रीविष्णुसहस्रनाम तथा गजेन्द्र-मोक्षका पाठ करता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता । उसके कुलमें जो सैकड़ों, हजारों पुरुष उत्पन्न हो चुके हैं, वे सभी श्रीविष्णुधामको प्राप्त होते हैं । अतः एकादशीको जागरण अवश्य करना चाहिये । जो कार्तिकमें रात्रिके पिछले पहरमें भगवान्के सामने स्तोत्रगान करता है, वह अपने पितरोंके साथ श्वेतद्वीपमें निवास करता है । जो मनुष्य कार्तिक-शुक्लपक्षमें एकादशीका ब्रत पूर्ण करके प्रातःकाल सुन्दर कलश दान करता है, वह श्रीहरिके परमधामको प्राप्त होता है ।

ब्रतधारियोंमें श्रेष्ठ कार्तिकेय ! अब मैं तुम्हें महान् पुण्यदायक ब्रत बताता हूँ । यह ब्रत कार्तिकके अन्तिम पाँच दिनोंमें किया जाता है । इसे भीष्मजीने भगवान् वासुदेवसे प्राप्त किया था, इसलिये यह ब्रत भीष्मपञ्चक नामसे प्रसिद्ध है । भगवान् केशवके सिवा दूसरा कौन ऐसा है, जो इस ब्रतके गुणोंका यथावत् वर्णन कर सके । वसिष्ठ, भूगु और गर्ग आदि मुनीश्वरोंने सत्ययुगके आदिमें कार्तिकके शुक्लपक्षमें इस पुरातन धर्मका अनुष्ठान किया था । राजा अम्बरीषने भी त्रेता आदि युगोंमें इस ब्रतका पालन किया था । ब्राह्मणोंने ब्रह्मचर्यपालन, जप तथा हवन कर्म आदिके द्वारा और क्षत्रियों एवं वैश्योंने सत्य-शौच आदिके पालनपूर्वक इस ब्रतका अनुष्ठान किया है । सत्यहीन मूढ़ मनुष्योंके लिये इस ब्रतका अनुष्ठान असम्भव है । जो इस ब्रतको पूर्ण कर लेता है, उसने मानो सब कुछ कर लिया ।

कार्तिकके शुक्रपक्षमें एकादशीको विधिपूर्वक स्नान करके पाँच दिनोंका ब्रत ग्रहण करे। ब्रती पुरुष प्रातः-स्नानके बाद मध्याह्नके समय भी नदी, झरने या पोखरेपर जाकर शरीरमें गोबर लगाकर विशेषरूपसे स्नान करे। फिर चावल, जौ और तिलोंके द्वारा क्रमशः देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करे। मौनभावसे स्नान करके धुले हुए वस्त्र पहन दृढ़तापूर्वक ब्रतका पालन करे। ब्राह्मणको पञ्चरत्न दान दे। लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुका प्रतिदिन पूजन करे। इस पञ्चकब्रतके अनुष्ठानसे मनुष्य वर्षभरके सम्पूर्ण ब्रतोंका फल प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य निप्राङ्गित मन्त्रोंसे भीष्मको जलदान देता और अर्ध्यके द्वारा उनका पूजन (सत्कार) करता है, वह मोक्षका भागी होता है। मन्त्र इस प्रकार है—

वैयाघ्रपद्मगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च ।
अनपत्याय भीष्माय उदकं भीष्वर्मणे ॥
वसुनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च ।
अर्ध्यं ददामि भीष्माय आजन्मब्रह्मचारिणे ॥

(१२५।४३-४४)

‘जिनका गोत्र वैयाघ्रपद्म और प्रवर सांकृत्य है, उन सन्तानरहित राजर्षि भीष्मके लिये यह जल समर्पित है। जो वसुओंके अवतार तथा राजा शन्तनुके पुत्र है, उन आजन्म ब्रह्मचारी भीष्मको मैं अर्ध्य दे रहा हूँ।’

तत्पश्चात् सब पापोंका हरण करनेवाले श्रीहरिका पूजन करे। उसके बाद प्रयत्नपूर्वक भीष्मपञ्चक-ब्रतका पालन करना चाहिये। भगवान्‌को भक्तिपूर्वक जलसे स्नान कराये। फिर मधु, दूध, धी, पञ्चगव्य, गन्ध और चन्दनमिश्रित जलसे उनका अभिषेक करे। तदनन्तर सुगम्भित चन्दन और केशरमें कपूर और खस मिलाकर भगवान्‌के श्रीविग्रहपर उसका लेप करे। फिर गन्ध और धूपके साथ सुन्दर फूलोंसे श्रीहरिकी पूजा करे तथा उनकी प्रसन्नताके लिये भक्तिपूर्वक धी मिलाया हुआ गूगल जलाये। लगातार पाँच दिनोंतक भगवान्‌के समीप दिन-रात दीपक जलाये रखे। देवाधिदेव श्रीविष्णुको नैवेद्यके रूपमें उत्तम अन्न निवेदन करे। इस प्रकार भगवान्‌का स्मरण और उन्हें प्रणाम करके उनकी अर्चना

करे। फिर ‘ॐ नमो वासुदेवाय’ इस मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे तथा उस षड्क्षर मन्त्रके अन्तमें ‘स्वाहा’ पद जोड़कर उसके उच्चारणपूर्वक घृतमिश्रित तिल, चावल और जौ आदिसे अग्निमें हवन करे। सायंकालमें सम्बोधासना करके भगवान् गरुड़ध्वजको प्रणाम करे और पूर्ववत् षड्क्षर मन्त्रका जप करके ब्रत-पालनपूर्वक पृथ्वीपर शयन करे। इन सब विधियोंका पाँच दिनोंतक पालन करते रहना चाहिये।

एकादशीको सनातन भगवान् हृषीकेशका पूजन करके थोड़ा-सा गोबर खाकर उपवास करे। फिर द्वादशीको ब्रती पुरुष भूमिपर बैठकर मन्त्रोचारणके साथ गोमूत्र पान करे। त्रयोदशीको दूध पीकर रहे। चतुर्दशीको दही भोजन करे। इस प्रकार शरीरकी शुद्धिके लिये चार दिनोंका लङ्घन करके पाँचवें दिन स्नानके पश्चात् विधिपूर्वक भगवान् केशवकी पूजा करे और भक्तिके साथ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे। पापबुद्धिका परित्याग करके बुद्धिमान् पुरुष ब्रह्मचर्यका पालन करे। शाकाहारसे अथवा मुनियोंके अन्न (तित्रीके चावल) से इस प्रकार निर्वाह करते हुए मनुष्य श्रीकृष्णके पूजनमें संलग्न रहे। उसके बाद रात्रिमें पहले पञ्चगव्य पान करके पीछे अन्न भोजन करे। इस प्रकार भलीभांति ब्रतकी पूर्ति करनेसे मनुष्य शास्रोक्त फलका भागी होता है। इस भीष्म-ब्रतका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य परमपदको प्राप्त करता है। स्त्रियोंको भी अपने स्वामीकी आज्ञा लेकर इस धर्मवर्धक ब्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। विधवाएँ भी मोक्ष-सुखकी वृद्धि, सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति तथा पुण्यकी प्राप्तिके लिये इस ब्रतका पालन करें। भगवान् विष्णुके चिन्तनमें लगे रहकर प्रतिदिन बलिवैश्वदेव भी करना चाहिये। यह आरोग्य और पुत्र प्रदान करनेवाला तथा महापातकोंका नाश करनेवाला है। एकादशीसे लेकर पूर्णिमातकका जो ब्रत है, वह इस पृथ्वीपर भीष्मपञ्चकके नामसे विख्यात है। भोजनपरायण पुरुषके लिये इस ब्रतका निषेध है। इस ब्रतका पालन करनेपर भगवान् विष्णु शुभ फल प्रदान करते हैं।

महादेवजी कहते हैं—यह मोक्षदायक शास्त्र अनधिकारी पुरुषोंके सामने प्रकाशित करनेयोग्य नहीं है। जो मनुष्य इसका श्रवण करता है, वह मोक्षको प्राप्त होता है। कार्तिकेय ! इस ब्रतको यत्पूर्वक गुप्त रखना चाहिये। जो त्यागी मनुष्य हैं, वे भी यदि इस ब्रतका अनुष्ठान करें तो उनके पुण्यको बतलानेमें मैं असमर्थ हूँ। इस प्रकार कार्तिक मासका जो कुछ भी फल है, वह सब मैंने बतला दिया।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—देवदेव भगवान् शङ्करने पुत्रकी मङ्गल-कामनासे यह ब्रत उसे बताया था। पिताके वचन सुनकर कार्तिकेय आनन्दमग्र हो गये। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस कार्तिकमाहात्म्यका पाठ करता, सुनता और सुनकर हृदयमें धारण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है। इस माहात्म्यका श्रवण करनेमात्रसे ही धन, धान्य, यज्ञ, पुत्र, आयु और आरोग्यकी प्राप्ति हो जाती है।



भक्तिका स्वरूप, शालग्रामशिलाकी महिमा तथा वैष्णवपुरुषोंका माहात्म्य

श्रीपार्वतीजीने पूछा—प्रभो ! विश्वेश्वर ! श्रेष्ठ भक्तिका क्या स्वरूप है, जिसके जाननेमात्रसे मनुष्योंको सुख प्राप्त होता है ?

महादेवजी बोले—देवि ! भक्ति तीन प्रकारकी बतायी गयी है—सात्त्विकी, राजसी और तामसी। इनमें सात्त्विकी उत्तम, राजसी मध्यम और तामसी कनिष्ठ है। मोक्षरूप फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको श्रीहरिकी उत्तम भक्ति करनी चाहिये। अहङ्कारको लेकर या दूसरोंको दिखानेके लिये अथवा र्द्युर्घावश या दूसरोंका संहार करनेकी इच्छासे जो किसी देवताकी भक्ति की जाती है, वह तामसी बतायी गयी है। जो विषयोंकी इच्छा रखकर अथवा यश और ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये भगवान्की पूजा करता है, उसकी भक्ति राजसी मानी गयी है। ज्ञान-परायण ब्राह्मणोंको कर्म-बन्धनका नाश करनेके लिये श्रीविष्णुके प्रति आत्मसमर्पणकी बुद्धि करनी चाहिये। यही सात्त्विकी भक्ति है। अतः देवि ! सदा सब प्रकारसे श्रीहरिका सेवन करना चाहिये। तामसभावसे ताप्स, राजससे राजस और सात्त्विकसे सात्त्विक गति प्राप्त होती है। भगवान् गोविन्दमें भक्ति रखनेवाले पुरुषोंको समस्त देवता प्रसन्नतापूर्वक शान्ति देते हैं, ब्रह्मा आदि देवेश्वर उनका मङ्गल करते हैं और

प्रधान-प्रधान मुनीश्वर उन्हें कल्याण प्रदान करते हैं। जो भगवान् गोविन्दमें भक्ति रखते हैं, उनके लिये भूत-पिशाचोंसहित समस्त ग्रह शुभ हो जाते हैं। ब्रह्मा आदि देवता उनपर प्रसन्न होते हैं तथा उनके घरोंमें लक्ष्मी सदा स्थिर रहती है। भगवान् गोविन्दमें भक्ति रखनेवाले मानवोंके शरीरमें सदा गङ्गा, गथा, नैमिषारण्य, काशी, प्रयाग और कुरुक्षेत्र आदि तीर्थ निवास करते हैं।*

इस प्रकार विद्वान् पुरुष भगवती लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुकी आराधना करे। जो ऐसा करता है, वह ब्राह्मण सदा कृतकृत्य होता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। पार्वती ! क्षत्रिय वैश्य अथवा शूद्र ही क्यों न हो—जो भगवान् विष्णुकी विशेषरूपसे भक्ति करता है, वह निस्सन्देह मुक्त हो जाता है।†

पार्वतीजीने पूछा—सुरेश्वर ! इस पृथ्वीपर शालग्रामशिलाकी विशुद्ध मूर्तियाँ बहुत-सी हैं, उनमेंसे कितनी मूर्तियोंको पूजनमें ग्रहण करना चाहिये।

महादेवजी बोले—देवि ! जहाँ शालग्राम-शिलाकी कल्याणमयी मूर्ति सदा विराजमान रहती है, उस घरको वेदोंमें सब तीर्थोंसे श्रेष्ठ बताया गया है। ब्राह्मणोंको पाँच, क्षत्रियोंको चार, वैश्योंको तीन और शूद्रोंको एक ही शालग्राममूर्तिका यत्पूर्वक पूजन करना

* गङ्गगयानैमिषपुष्करणि काशी प्रयागः कुरुजाङ्गलानि । तिष्ठन्ति देहे कृतभक्तिपूर्वं गोविन्दभक्ति वहतां नराणाम् ॥ (१२६ । १७)

† क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो वा शूद्रो वा सुरसत्तमे । भक्ति कुर्वन् विशेषेण मुक्ति याति न संशयः ॥ (१२६ । १९)

चाहिये। ऐसा करनेसे वे इस लोकमें समस्त भोगोंका उपभोग करके अन्तमें भगवान् विष्णुके सनातन धामको जाते हैं। यह शालग्रामशिला भगवान्की सबसे बड़ी मूर्ति है, जो पूजन करनेपर सदा पापोंका अपहरण करनेवाली और मोक्षरूप फल देनेवाली है। जहाँ शालग्रामशिला विराजती है, वहाँ गङ्गा, यमुना, गोदावरी और सरस्वती—सभी तीर्थ निवास करते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अतः मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको इसका भलीभाँति पूजन करना चाहिये। देवेश्वरि! जो भक्तिभावसे जनार्दनका पूजन करते हैं, उनके दर्शनमात्रसे ब्रह्महत्यारा भी शुद्ध हो जाता है। पितर सदा यही बातचीत किया करते हैं कि हमारे कुलमें वैष्णव पुत्र उत्पन्न हों, जो हमारा उद्धार करके हमें विष्णुधाममें पहुँचा सकें। वही दिवस धन्य है, जिसमें भगवान् विष्णुका पूजन किया जाय और उसी पुरुषकी माता, बन्धु-बान्धव तथा पिता धन्य हैं, जो श्रीविष्णुकी अर्चना करता है। जो लोग भगवान् विष्णुकी भक्तिमें तत्पर रहते हैं, उन सबको परम धन्य समझना चाहिये।* वैष्णव पुरुषोंके दर्शनमात्रसे जितने भी उपपातक और महापातक हैं, उन सबका नाश हो जाता है। भगवान् विष्णुकी पूजामें संलग्न रहनेवाले मनुष्य अग्रिकी भाँति तेजस्वी प्रतीत होते हैं। वे मेघोंके आवरणसे उन्मुक्त चन्द्रमाकी भाँति सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। वैष्णवोंके पूजनसे बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। आर्द्र (स्वेच्छासे किया हुआ पाप), शुष्क (अनिच्छासे किया हुआ पाप), लघु और स्थूल, मन, वाणी तथा शरीरद्वारा किया हुआ, प्रमादसे होनेवाला तथा जानकर और अनजानमें

किया हुआ जो पाप है, वह सब वैष्णवोंके साथ वार्तालाप करनेसे नष्ट हो जाता है। साधु पुरुषोंके दर्शनसे पापहीन पुरुष स्वर्गको जाते हैं और पापिष्ठ मनुष्य पापसे रहित—शुद्ध हो जाते हैं। यह बिलकुल सत्य बात है। भगवान् विष्णुका भक्त पवित्रको भी पवित्र बनानेवाला तथा संसाररूपी कीचड़के दागको धो डालनेमें दक्ष होता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।†

जो विष्णुभक्त प्रतिदिन भगवान् मधुसूदनका स्मरण करते हैं, उन्हें विष्णुमय समझना चाहिये। उनके विष्णुरूप होनेमें तनिक भी सन्देह नहीं है। भगवान्के श्रीविग्रहका वर्ण नूतन मेघोंकी नील घटाके समान श्याम एवं सुन्दर है। नेत्र कमलके समान विकसित एवं विशाल हैं। वे अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए हैं। शरीरपर पीताम्बर शोभा पा रहा है। वक्षःस्थल कौस्तुभमणिसे देदीप्यमान है। श्रीहरि गलेमें बनमाला धारण किये हुए हैं। कुण्डलोंकी दिव्य ज्योतिसे उनके कपोल और मुखकी कान्ति बहुत बढ़ गयी है। किरीटसे मस्तक सुशोभित है। कलाइयोंमें कंगन, बाँहोंमें भुजबंद और चरणोंमें नूपुर शोभा दे रहे हैं। मुख-कमल प्रसन्नतासे खिला हुआ है। चार भुजाएँ हैं और साथमें भगवती लक्ष्मीजी विराजमान हैं। पार्वती! जो ब्राह्मण भक्तिभावसे युक्त हो इस प्रकार श्रीविष्णुका ध्यान करते हैं, वे साक्षात् विष्णुके स्वरूप हैं। वे ही वास्तवमें वैष्णव हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। देवेश्वरि! उनका दर्शनमात्र करनेसे, उनमें भक्ति रखनेसे, उन्हें भोजन करानेसे तथा उनकी पूजा करनेसे निश्चय ही वैकुण्ठधामकी प्राप्ति होती है।‡



* पितरः संवदन्येतत्कुलेऽस्माकं तु वैष्णवाः ॥

ये स्युस्तेऽस्मान्समुद्धृत्य नयने विष्णुमन्दिरम्। स एव दिवसो धन्यो धन्या माताऽथ बान्धवाः ॥

पिता तस्य च वै धन्यो यस्तु विष्णुं समर्चयेत्। सर्वे धन्यतमा ज्ञेया विष्णुभक्तिपरायणाः ॥ (१२७। १४—१६)

† संसारकर्दमालेपप्रक्षालनविशारदः ॥ पावनः पावनानां च विष्णुभक्तो न संशयः । (१२७। २१-२२)

‡ तेषां दर्शनमात्रेण भक्त्या वा भोजनेन वा। पूजनेन च देवेशि वैकुण्ठं लभते श्रुवम् ॥ (१२७। २८)

भगवत्स्मरणका प्रकार, भक्तिकी महत्ता, भगवत्तत्त्वका ज्ञान, प्रारब्धकर्मकी प्रबलता तथा भक्तियोगका उत्कर्ष

श्रीपार्वतीजीने पूछा— प्रभो ! अविनाशी भगवान् वासुदेवका स्मरण कैसे करना चाहिये ?

श्रीमहादेवजी बोले— देवेश्वरि ! मैं वास्तविकरूपसे भगवान्के स्वरूपका साक्षात्कार करके निरन्तर उनका स्मरण करता रहता हूँ। जैसे प्यासा मनुष्य बड़ी व्याकुलताके साथ पानीकी याद करता है, उसी प्रकार मैं भी आकुल होकर श्रीविष्णुका स्मरण करता हूँ। जिस प्रकार सर्दीका सताया हुआ संसार अग्रिका स्मरण करता है, वैसे ही देवता, पितर, ऋषि और मनुष्य निरन्तर भगवान् विष्णुका चिन्तन करते रहते हैं। जैसे पतित्रता नारी सदा पतिकी याद किया करती है, भयसे आतुर मनुष्य किसी निर्भय आश्रयको खोजता फिरता है, धनका लोधी जैसे धनका चिन्तन करता है और पुत्रकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य जैसे पुत्रके लिये लालायित रहता है, उसी प्रकार मैं भी श्रीविष्णुका स्मरण करता हूँ। जैसे हंस मानसरोवरको, ऋषि भगवान्के स्मरणको, वैष्णव भक्तिको, पशु हरी-हरी घासको और साधु पुरुष धर्मको चाहते हैं, वैसे ही मैं श्रीविष्णुका चिन्तन करता हूँ।* जैसे समस्त प्राणियोंको आत्माका आश्रयभूत शरीर प्रिय है, जिस प्रकार जीव अधिक आयुकी अभिलाषा रखते हैं, जैसे श्रमर पुष्पको, चक्रवाक सूर्यको और परमात्माके प्रेमीजन भक्तिको चाहते हैं, उसी प्रकार मैं भी

श्रीविष्णुका स्मरण करता हूँ। जैसे अन्धकारसे घबराये हुए लोग दीपक चाहते हैं, उसी प्रकार साधु पुरुष इस जगत्में केवल भगवान्के स्मरणकी इच्छा रखते हैं। जैसे थके-मादे मनुष्य विश्राम, रोगी निद्रा और आलस्यहीन पुरुष विद्या चाहते हैं, उसी प्रकार मैं भी श्रीविष्णुका स्मरण करता हूँ। जैसे सूर्यकान्तमणि और सूर्यकी किरणोंका संयोग होनेपर आग प्रकट हो जाती है, उसी प्रकार साधु पुरुषोंके संसर्गसे श्रीहरिके प्रति भक्ति उत्पन्न होती है। जैसे चन्द्रकान्तमणि चन्द्रकिरणोंके संयोगसे द्रवीभूत होने लगती है, उसी प्रकार वैष्णव पुरुषोंके संयोगसे स्थिर भक्तिका प्रादुर्भाव होता है। जैसे कुमुदिनी चन्द्रमाको देखकर खिल जाती है, उसी प्रकार भगवान्के प्रति की हुई भक्ति मनुष्योंको सदा मोक्ष प्रदान करनेवाली है।† भक्तिसे, स्नेहसे, द्वेषभावसे, स्वामि-सेवक-भावसे अथवा विचारपूर्वक बुद्धिके द्वारा जिस किसी भावसे भी जो भगवान् जनार्दनका चिन्तन करते हैं, वे इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें श्रीविष्णुके सनातन धामको जाते हैं।‡ अहो ! भगवान् विष्णुका माहात्म्य अद्भुत है। उसपर विचार करनेसे रोमाञ्च हो आता है। भगवान्का जैसे-तैसे किया हुआ स्मरण भी मोक्ष देनेवाला है। बढ़े हुए धनसे और विपुल बुद्धिसे भगवान्की प्राप्ति नहीं होती; केवल भक्तियोगसे ही क्षणभरमें भगवान्का अपने

* हंसा मानसमिच्छन्ति त्रैषयः स्मरणं हरेः। भक्ताश्च भक्तिमिच्छन्ति तथा विष्णुं स्मराम्यहम्॥ (१२८।७)

† सूर्यकान्तरवेयोगाद्विस्तत्र प्रजायते ॥

एवं वै साधुसंयोगाद्वौ भक्तिः प्रजायते। शीतरश्मिशिला यद्वच्चन्द्रयोगादपः स्ववेत् ॥

एवं वैष्णवसंयोगाद्वक्तिर्भवति शाश्वती। कुमुद्धती यथा सोमं दृष्ट्वा पुष्पं विकासते ॥

तद्वेद्वेवे कृता भक्तिमुक्तिदा सर्वदा नृणाम् ।

(१२८।१४—१७)

‡ भक्त्या वा स्नेहभावेन द्वेषभावेन वा पुनः ॥

केऽपि स्वामित्वभावेन बुद्ध्या वा बुद्धिपूर्वकम्। येन केनापि भावेन चिन्तयन्ति जनार्दनम्॥

इहलोके सुखं भुक्त्वा यान्ति विष्णोः सनातनम् ।

(१२८।२०—२२)

समीप दर्शन होता है। भगवान् अपने समीप रहकर भी दूर जान पड़ते हैं—ठीक उसी तरह, जैसे आँखोंमें लगाया हुआ अङ्गन अत्यन्त समीप होनेपर भी दृष्टिगोचर नहीं होता।

भक्तियोगके प्रभावसे भक्त पुरुषोंको सनातन परमात्माका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। भगवान्की मायासे मोहित पुरुष 'यह तत्त्व है, यह तत्त्व है' यों कहते हुए संशयमें ही पढ़े रह जाते हैं। जब भक्ति-तत्त्व प्राप्त होता है, तभी विष्णुरूप तत्त्वकी उपलब्धि होती है। सुन्दरि ! मेरी बात सुनो। इन्ह आदि देवताओंने सुखके लिये अमृत प्राप्त किया था; तथापि वे विष्णुभक्तिके बिना दुःखी ही रह गये। भक्ति ही एक ऐसा अमृत है, जिसको पाकर फिर कभी दुःख नहीं होता। भक्त पुरुष वैकुण्ठधामको प्राप्त होकर भगवान् विष्णुके समीप सदा आनन्दका अनुभव करता है। जैसे हंस हमेशा पानीको अलग करके दूध पीता है, उसी प्रकार अन्य कर्मोंका आश्रय छोड़कर केवल श्रीविष्णु-भक्तिकी ही शरण लेनी चाहिये। शरीरको पाकर बिना भक्तिके जो कुछ भी किया जाता है, वह सब व्यर्थ परिश्रममात्र होता है। जैसे कोई मूर्ख अपनी बाँहोंसे समुद्र पार करना चाहे, उसी प्रकार मूढ़ मानव विष्णुभक्तिके बिना संसारसागरको पार करनेकी अभिलाषा करता है। संसारमें बहुतेरे लोग ऐसे हैं, जो दूसरोंको उपदेश दिया करते हैं; किन्तु जो स्वयं आचरण करता हो, ऐसा मनुष्य करोड़ोंमें कोई एक ही देखा जाता है।* जड़में सींचे हुए वृक्षके ही हरे-हरे पत्ते और शाखाएँ दिखायी देती हैं। इसी प्रकार भजनसे ही आगे-आगे फल प्रस्तुत होता है। जैसे जलमें जल, दूधमें दूध और पीमें घी डाल देनेपर कोई अन्तर नहीं रहता, उसी प्रकार विष्णुभक्तिके प्रसादसे भेददृष्टि नहीं रहती। जैसे सूर्य सर्वत्र व्यापक है, अग्रि सब वस्तुओंमें व्याप्त है, इन्हें किसी सङ्कुचित सीमामें आबद्ध नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार भक्तिमें स्थित भक्त भी कर्मोंसे आबद्ध नहीं होता।

अजामिलने अपना धर्म छोड़कर पापका आचरण किया था, तथापि अपने पुत्र नारायणका स्मरण करके उसने निश्चय ही भक्ति प्राप्त कर ली थी। जो भक्त दिन-रात केवल भगवत्रामके ही सहारे जीवन धारण करते हैं, वे वैकुण्ठधामके निवासी हैं—इस विषयमें वेद ही साक्षी हैं। अक्षमेध आदि यज्ञोंका फल स्वर्गमें भी देखा जाता है। उन यज्ञोंका पूरा-पूरा फल भोगकर मनुष्य पुनः स्वर्गसे नीचे गिर जाते हैं; परन्तु जो भगवान् विष्णुके भक्त हैं, वे अनेक प्रकारके भोगोंका उपभोग करके इस प्रकार नीचे नहीं गिरते। वैकुण्ठधाममें पहुँच जानेपर उनका पुनरागमन नहीं होता। जिसने भगवान् विष्णुकी भक्ति की है, वह सदा विष्णुधाममें ही निवास करता है। विष्णु-भक्तिके प्रसादसे उसका कभी अन्त नहीं देखा गया है। मेढ़क जलमें रहता है और भौंवरा बनमें; परन्तु कुमुदिनीकी गन्धका ज्ञान भौंवरेको ही होता है, मेढ़कको नहीं। इसी प्रकार भक्त अपनी भक्तिके प्रभावसे श्रीहरिके तत्त्वको जान लेता है। कुछ लोग गङ्गाके किनारे निवास करते हैं और कुछ गङ्गासे सौ योजन दूर; किन्तु गङ्गाका प्रभाव कोई-कोई ही जानता है। इसी प्रकार कोई उत्तम पुरुष ही श्रीविष्णुभक्तिको उपलब्ध कर पाता है। जैसे ऊँट प्रतिदिन कपूर और अरगजेका बोझ ढोता है किन्तु उनके भीतरकी सुगन्धको नहीं जानता, उसी प्रकार जो भगवान् विष्णुकी भक्तिसे विमुख हैं, वे भक्तिके महत्त्वको नहीं जान पाते। कस्तूरीकी सुगन्धको ग्रहण करनेकी इच्छावाले मृग शालवृक्षको सूँघा करते हैं। उनकी नाभिमें ही कस्तूरीकी गन्ध है—इस बातको वे नहीं जानते। इसी प्रकार भगवान् विष्णुसे विमुख मनुष्य अपने भीतर ही विराजमान भगवत्तत्त्वका अनुभव नहीं कर पाते। पार्वती ! जैसे मूर्खोंको उपदेश देना व्यर्थ है, उसी प्रकार जो दूसरोंके भक्त हैं उनके लिये विष्णुभक्तिका उपदेश निरर्थक है। जैसे अंधे मनुष्य आँख न होनेके कारण पास ही रखे हुए दीपक तथा दर्पणको नहीं देख पाते,

* बुद्धि परेण दास्यन्ति लोके बहुविधा जनाः ॥ स्वयमाचरते सोऽपि नः कोटिषु दृश्यते । (१२८ । ३६-३७)

उसी प्रकार बहिर्मुख (विषयासन्त) मानव अपने अन्तःकरणमें विराजमान श्रीविष्णुको नहीं देखते।

जैसे अग्रि धूमसे, दर्पण मैलसे तथा गर्भ झिल्लीसे ढका रहता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण इस शरीरके भीतर छिपे हुए हैं। गिरिराजकुमारी ! जैसे दूधमें धी तथा तिलमें तेल सदा मौजूद रहता है, वैसे ही इस चराचर जगतमें भगवान् विष्णु सर्वदा व्यापक देखे जाते हैं। जैसे एक ही धागेमें बहुत-से सूतके मनके पिरो दिये जाते हैं, इसी प्रकार ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण विश्वके प्राणी चिन्मय श्रीविष्णुमें पिरेये हुए हैं। जिस प्रकार काठमें स्थित अग्निको मन्थनसे ही प्रत्यक्ष किया जाता है, वैसे ही सर्वत्र व्यापक विष्णुका ध्यानसे ही साक्षात्कार होता है। जैसे पृथ्वी जलके संयोगसे नाना प्रकारके वृक्षोंको जन्म देती है, उसी प्रकार आत्मा प्रकृतिके गुणोंके संयोगसे नाना योनियोंमें जन्म ग्रहण करता है। हाथी या मच्छरमें, देवता अथवा मनुष्यमें वह आत्मा न अधिक है न कम। वह प्रत्येक शरीरमें स्थिर भावसे स्थित देखा गया है। वह आत्मा ही सच्चिदानन्दस्वरूप, कल्याणमय एवं महेश्वरके रूपमें उपलब्ध होता है। उस परमात्माको ही विष्णु कहा गया है। वह सर्वगत श्रीहरि मैं ही हूँ। मैं वेदान्तवेद्य विष्णु, सर्वेश्वर, कालातीत और अनामय परमात्मा हूँ। देवि ! जो इस प्रकार मुझे जानता है, वह निसन्देह भक्त है।

वह एक ही परमात्मा नाना रूपोंमें प्रतीत होता है और नाना रूपोंमें प्रतीत होनेपर भी वास्तवमें वह एक ही है—ऐसा जानना चाहिये। नाम-रूपके भेदसे ही उसको इस पृथ्वीपर नाना रूपोंमें बतलाया जाता है। जैसे आकाश प्रत्येक घटमें पृथक्-पृथक् स्थित जान पड़ता है किन्तु घड़ा फूट जानेपर वह एक अखण्डरूपमें ही उपलब्ध होता है, उसी प्रकार प्रत्येक शरीरमें पृथक्-पृथक् आत्मा प्रतीत होता है परन्तु उस शरीररूप उपाधिके भग्र होनेपर वह एकमात्र सुस्थिर सिद्ध होता है। सूर्य जब बादलोंसे ढक जाते हैं, तब मूर्ख मनुष्य उन्हें तेजोहीन मानने लगता है; उसी प्रकार जिनकी बुद्धि अज्ञानसे आवृत है, वे मूर्ख परमेश्वरको नहीं जानते।

परमात्मा विकल्पसे रहित और निराकार है। उपनिषदोंमें उसके स्वरूपका वर्णन किया गया है। वह अपनी इच्छासे निराकारसे साकाररूपमें प्रकट होता है। उस परमात्मासे ही आकाश प्रकट हुआ, जो शब्दरहित था। उस आकाशसे वायुकी उत्पत्ति हुई। तबसे आकाशमें शब्द होने लगा। वायुसे तेज और तेजसे जलका प्रादुर्भाव हुआ। जलमें विश्वरूपधारी विराट् हिरण्यगर्भ प्रकट हुआ। उसकी नाभिसे उत्पन्न हुए कमलमें कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि हुई। प्रकृति और पुरुषसे ही तीनों लोकोंकी उत्पत्ति हुई तथा उन्हीं दोनोंके संयोगसे पाँचों तत्त्वोंका परस्पर योग हुआ। भगवान् श्रीविष्णुका आविर्भाव सत्त्वगुणसे युक्त माना जाता है। अविनाशी भगवान् विष्णु इस संसारमें सदा व्यापकरूपसे विराजमान रहते हैं। इस प्रकार सर्वगत विष्णु इसके आदि, मध्य और अन्तमें स्थित रहते हैं। कर्मोंमें ही आस्था रखनेवाले अज्ञानीजन अविद्याके कारण भगवान्को नहीं जानते। जो नियत समयपर कर्तव्य-बुद्धिसे वर्णोचित कर्मोंका पालन करता है, उसका कर्म विष्णुदेवताको अर्पित होकर गर्भवासका कारण नहीं बनता। मुनिगण सदा ही वेदान्त-शास्त्रका विचार किया करते हैं। यह ब्रह्मज्ञान ही है, जिसका मैं तुमसे वर्णन कर रहा हूँ। शुभ और अशुभकी प्रवृत्तिमें मनको ही कारण मानना चाहिये। मनके शुद्ध होनेपर सब कुछ शुद्ध हो जाता है और तभी सनातन ब्रह्मका साक्षात्कार होता है। मन ही सदा अपना बन्धु है और मन ही शत्रु है। मनसे ही कितने तर गये और कितने गिर गये। बाहरसे कर्मका आचरण करते हुए भी भीतरसे सबका त्याग करे। इस प्रकार कर्म करके भी मनुष्य उससे लिप्स नहीं होता, जैसे कमलका पत्ता पानीमें रहकर भी उससे लेशमात्र भी लिप्स नहीं होता। जब भक्तिरसका ज्ञान हो जाता है, उस समय मुक्ति अच्छी नहीं लगती। भक्तिसे भगवान् विष्णुकी प्राप्ति होती है। वे सदाके लिये सुलभ हो जाते हैं। वेदान्त-विचारसे तो केवल ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञानसे ज्ञेय।

सम्पूर्ण वस्तुओंमें भाव-शुद्धिकी ही प्रशंसा की

जाती है। जैसा भाव रहता है वैसा ही फल होता है। जिसकी जैसी बुद्धि होती है, वह जगत्को वैसा ही समझता है।

वैकुण्ठनाथको छोड़कर भक्त पुरुष दूसरे मार्गमें कैसे रम सकेगा? भक्तिहीन होकर चारों वेदोंके पढ़नेसे क्या लाभ? भक्तियुक्त चाप्डाल ही क्यों न हो, वह देवताओंद्वारा भी पूजित होता है।* जिस समय श्रीहरिके स्मरणजनित प्रसन्नतासे शरीरमें रोमाञ्च हो जाय और नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहने लगे, उस समय मुक्ति दासी बन जाती है। वाणीद्वारा किये हुए पापका भगवान्के कीर्तनसे और मनद्वारा किये हुए पापका उनके स्मरणसे नाश हो जाता है।

ब्रह्माजीने सम्पूर्ण वर्णोंको उत्पन्न किया और उन्हें अपने-अपने धर्ममें लगा दिया। अपने धर्मके पालनसे प्राप्त हुआ धन शुक्ल द्रव्य अर्थात् विशुद्ध धन कहलाता है। शुद्ध धनसे श्रद्धापूर्वक जो दान दिया जाता है, उसमें थोड़े दानसे भी महान् पुण्य होता है। उस पुण्यकी कोई गणना नहीं हो सकती। नीच पुरुषोंके सङ्गसे जो धन आता हो, उस धनसे मनुष्यके द्वारा जो दान किया जाता है, उसका कुछ फल नहीं होता। उस दानसे वे मानव पुण्यके भागी नहीं होते। जो इन्द्रियोंको सुख देनेकी इच्छासे ही कर्म करता है, वह ज्ञान-दुर्बल मूढ़ पुरुष अपने कर्मके अनुसार योनिमें जन्म लेता है। मनुष्य इस लोकमें जो कर्म करता है, उसे परलोकमें भोगना पड़ता है। पुण्यकर्म करनेवाले पुरुषको निश्चय ही कभी दुःख नहीं होता। यदि पुण्य करते समय शरीरमें कोई कष्ट हो तो उसे पूर्व-जन्ममें किये हुए कर्मका फल समझकर दुःख नहीं मानना चाहिये। पापाचारी पुरुषको सदा दुःख-ही-दुःख मिलता है। यदि उस समय उसे कुछ सुख प्राप्त हुआ हो तो उसे पूर्व-कर्मका फल समझना चाहिये और उसपर हर्षसे फूल नहीं उठना चाहिये। जैसे स्वामी रसीमें बँधे हुए पशुको अपनी इच्छाके अनुसार इधर-उधर ले जाया करता है, उसी प्रकार कर्मबन्धनमें

बँधा हुआ जीव सुख और दुःखकी अवस्थाओंमें ले जाया जाता है। प्रारब्ध-कर्मसे बँधा हुआ जीव अपने बन्धनको दूर करनेमें समर्थ नहीं होता। देवता और ऋषि भी कर्मसे बँधे हुए हैं। कैलास-पर्वतपर मुझ महादेवके शरीरमें स्थित सर्प भी विषके ही भागी होते हैं; क्योंकि कर्मनुसार प्राप्त हुई योनि बड़ी ही प्रबल है। विद्वान् पुरुष कहते हैं कि सूर्य सुन्दर शरीर प्रदान करनेवाले हैं; परन्तु उनके ही रथका सारथि पङ्कु है। वास्तवमें कर्मयोनि बड़ी ही प्रबल है। पूर्वकालमें भगवान् विष्णुद्वारा निर्मित सम्पूर्ण जगत् कर्मके अधीन है और वह कर्म श्रीकेशवके अधीन है। श्रीरामनामके जपसे उसका नाश होता है। कोई देवताओंकी प्रशंसा करते हैं, कोई ओषधियोंकी महिमाके गीत गाते हैं, कोई मन्त्र और उसके द्वारा प्राप्त सिद्धिकी महत्ता बतलाते हैं और कोई बुद्धि, पराक्रम, उद्यम, साहस, धैर्य, नीति और बलका बखान करते हैं; परन्तु मैं कर्मकी प्रशंसा करता हूँ; क्योंकि सब लोग कर्मके ही पीछे चलनेवाले हैं—यह मेरा निश्चित विचार है तथा पूर्वकालके विद्वानोंने भी इसका समर्थन किया है।

कुछ लोग क्रोधमें आकर सर्वस्व त्याग देते हैं, कोई-कोई अभाववश सब कुछ छोड़ते हैं तथा कुछ लोग बड़े कष्टसे सबका त्याग करते हैं। ये सभी त्याग मध्यम श्रेणीके हैं। अपनी बुद्धिसे खूब सोच-विचारकर और क्रोध आदिके वशीभूत न होकर श्रद्धापूर्वक त्याग करना चाहिये। जो लोग इस प्रकार सर्वस्वका त्याग करते हैं, उन्हींका त्याग उत्तम माना गया है। योगाभ्यासमें तत्पर हुआ मनुष्य यदि उसमें पूर्णता न प्राप्त कर सके, अथवा प्रारब्ध-कर्मकी प्रेरणासे वह साधनसे विचलित हो जाय तो भी वह उत्तम गतिको ही प्राप्त होता है। योगभ्रष्ट पुरुष पवित्र आचरणवाले श्रीमानोंके घरमें जन्म लेता है अथवा ज्ञानवान् योगियोंके यहाँ द्विजकुलमें जन्म ग्रहण करता है तथा वहाँ थोड़े ही समयमें पूर्ण योगसिद्धि प्राप्त कर लेता है। तत्पश्चात् वह योग एवं

* भक्तिहीनैश्चतुर्वेदैः पठितैः कि प्रयोजनम्। शपचो भक्तियुक्तस्तु त्रिदशैरपि पूज्यते॥ (१२८। १०२)

भक्तिके प्रसादसे चिदानन्दमय पदको प्राप्त होता है। जैसे कीचड़से कीचड़ तथा रक्तसे रक्तको नहीं धोया जा सकता, उसी प्रकार हिंसाप्रधान यज्ञ-कर्मसे कर्मजनित मल कैसे धोया जा सकता है। हिंसायुक्त कर्ममय सकाम यज्ञ कर्म-बन्धनका नाश करनेमें कैसे समर्थ हो सकता है। स्वर्गकी कामनासे किये हुए यज्ञ स्वर्गलोकमें अल्प सुख प्रदान करनेवाले होते हैं। कर्मजनित सुख अधिक मात्रामें हों तो भी वे अनित्य ही होते हैं; उनमें नित्य सुख है ही नहीं। भगवान् श्रीहरिकी भक्तिके बिना कहीं भी नित्य सुख नहीं मिलता।

जो भगवान् सृष्टि करते हैं, वे ही संहारकारी और पालक कहलाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ! मैं सैकड़ों

अपराधोंसे युक्त हूँ। मुझे यहाँसे अपने परमधाममें ले चलिये। मुझ अपराधीपर कृपा कीजिये। आपने व्याधको मोक्ष दिया है, कुञ्जाको तारा है [मुञ्जपर भी कृपादृष्टि कीजिये]। योगीजन सदा आपकी महिमाका गान करते हैं। आप परमात्मा, जनर्दन, अविनाशी पुरुष और लक्ष्मीसे सम्पन्न हैं। आपका दर्शन करके कितने ही भक्त आपके परमपदको प्राप्त हो गये। जो लोग इस दिव्य विष्णुस्मरणका प्रतिदिन पाठ करते हैं, वे सबं पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुके सनातन धाममें जाते हैं। जो भगवान् विष्णुके समीप भक्तिभावसे भावित बुद्धिद्वारा इसका पाठ करते हैं, वे इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें परमपदको प्राप्त होते हैं।



पुष्कर आदि तीर्थोंका वर्णन

श्रीपार्वतीजीने कहा—सुन्रत ! इस द्वीपमें जो-जो तीर्थ हैं, उनकी गणना करके मुझे बताइये।

श्रीमहादेवजी बोले—सुरेश्वर ! इस द्वीपमें सबके क्लेशोंका नाश करनेवाले महान् देवता भगवान् केशव ही तीर्थरूपसे विराजमान हैं। देवि ! अब मैं तुम्हारे लिये उन तीर्थोंका वर्णन करता हूँ। पहला पुष्कर तीर्थ है, जो सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ और शुभकारक है। दूसरा क्षेत्र काशीपुरी है, जो मुक्ति प्रदान करनेवाली है। तीसरा नैमिष क्षेत्र है, जिसे ऋषियोंने परम पावन माना है। चौथा प्रयाग तीर्थ है, जो सब तीर्थोंमें उत्तम माना गया है। पाँचवाँ कामुक तीर्थ है, जिसकी उत्पत्ति गन्धमादन पर्वतपर बतायी गयी है। छठा मानसरोवर तीर्थ है, जो देवताओंको भी अत्यन्त रमणीय प्रतीत होता है। सातवाँ विश्वकाय तीर्थ है, उसकी स्थिति कल्याणमय अम्बर पर्वतपर बतायी गयी है। आठवाँ गौतम नामक तीर्थ है, जिसकी स्थापना पूर्वकालमें मन्दराचल पर्वतपर हुई थी। नवाँ मदोल्कट और दसवाँ रथचैत्रक तीर्थ हैं। ग्यारहवाँ कान्यकुञ्ज तीर्थ है, जहाँ भगवान् वामन विराज रहे हैं। बारहवाँ मलयज तीर्थ है। इसके बाद कुञ्जाम्रक, विष्णेश्वर, गिरिकर्ण, केदार और गतिदायक तीर्थ हैं।

हिमालयके पृष्ठभागमें बाह्य तीर्थ, गोकर्णमें गोपक, हिमालयपर स्थानेश्वर, बिल्वकमें विल्वपत्रक, श्रीशैलमें माधव तीर्थ, भद्रेश्वरमें भद्र तीर्थ, वाराहक्षेत्रमें विजय तीर्थ, वैष्णवगिरिपर वैष्णव तीर्थ, रुद्रकोटमें रुद्र तीर्थ, कालञ्जर पर्वतपर पितृतीर्थ, कम्पिलमें काम्पिल तीर्थ, मुकुटमें ककोटक, गण्डकीमें शालग्रामोद्धव तीर्थ, नर्मदामें शिवतीर्थ, मायापुरीमें विश्वरूप तीर्थ, उत्पलाक्षमें सहस्राक्ष तीर्थ, रैवतक पर्वतपर जात तीर्थ, गयामें पितृतीर्थ और विष्णुपादोद्धव तीर्थ, विपाशा (व्यास)में विपाप, पुण्ड्र-वर्धनमें पाटल, सुपाश्वमें नारायण, त्रिकूटमें विष्णुमन्दिर, विपुलमें विपुल, मलयाचलमें कल्याण, कोटितीर्थमें कौरव, गन्धमादनमें सुगन्ध, कुञ्जाङ्कमें त्रिसन्ध्य, गङ्गाद्वारमें हरिप्रिय, विन्ध्यप्रदेशमें शैल तीर्थ, बदरिकाश्रममें शुभ सारस्वत तीर्थ, कालिन्दीमें कालरूप, सह्य-पर्वतपर साह्यक और चन्द्रप्रदेशमें चन्द्र तीर्थ हैं।

महाकालमें महेश्वर तीर्थ, विन्ध्य-पर्वतकी कन्दरामें अभयद और अमृत नामक तीर्थ, मण्डपमें विश्वरूप तीर्थ, ईश्वरपुरमें स्वाहा तीर्थ, प्रचण्डामें वैगलेय तीर्थ, अमरकण्टकमें चण्डी तीर्थ, प्रभासक्षेत्रमें सोमेश्वर तीर्थ, सरस्वतीमें पारावत तटपर देवमातृ तीर्थ, महापद्ममें

महात्म्य तीर्थ, पयोष्णीमें पिङ्गलेश्वर, सिंहिका तथा सौरवमें रवि तीर्थ, कृत्तिकाक्षेत्रमें कार्तिक तीर्थ, शङ्करगिरिपर शङ्कर तीर्थ, सुभद्रा और समुद्रके संगमपर दिव्य उत्पल तीर्थ, विष्णुपर्वतपर गणपति तीर्थ, जालन्धरमें विश्वमुख तीर्थ, तार एवं विष्णुपर्वतपर तारक तीर्थ, देवदारुवनमें पौण्ड्र तीर्थ, काश्मीरमण्डलमें पौष्ट्र तीर्थ, हिमालयपर भौम, हिम, तुष्टिक और पौष्टिक तीर्थ, मायापुरमें कपालमोचन तीर्थ, शङ्खोद्धारमें शङ्खधारकदेव, पिष्ठमें पिष्ठन, सिद्धिमें वैखानस और अच्छोद सरोवरपर विष्णुकाम तीर्थ है, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको देनेवाला है। उत्तरकूलमें औषध्य तीर्थ, कुशद्वीपमें कुशोदक तीर्थ, हेमकूटमें मन्मथ तीर्थ, कुमुदमें सत्यवादन तीर्थ, वदन्तीमें आश्मक तीर्थ, विष्ण्य-पर्वतपर वैमातृक तीर्थ और चित्तमें ब्रह्ममय तीर्थ है, जो सब तीर्थोंमें पावन माना गया है। सुन्दरि ! इन सब तीर्थोंमें उत्तम तीर्थका वर्णन सुनो। भगवान् विष्णुके नामकी समता करनेवाला कोई तीर्थ न तो हुआ है और न होगा। भगवान् केशवकी कृपासे उनका नाम लेनेमात्रसे ब्रह्महत्यारा, सुवर्ण चुरानेवाला, बालघाती

और गोहत्या करनेवाला पुरुष भी पापमुक्त हो जाता है। कलियुगमें द्वारकापुरी परम रमणीय है और वहाँके देवता भगवान् श्रीकृष्ण परम धन्य हैं। जो मनुष्य वहाँ जाकर उनका दर्शन करते हैं, उन्हें अविचल मुक्ति प्राप्त होती है। महादेव ! ऐसे परम धन्य देवता सर्वेश्वर प्रभु श्रीविष्णु भगवान्का मैं निरन्तर चिन्तन करता रहता हूँ। इस प्रकार यहाँ अनेक तीर्थोंका नामोल्लेख किया गया है। जो इनका जप करता अथवा इन्हें सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो इन तीर्थोंमें स्नान करके पापहारी भगवान् नारायणका दर्शन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके सनातन धामको जाता है। जगन्नाथपुरी महान् तीर्थ है। वह सब लोकोंको पवित्र करनेवाली मानी गयी है। जो श्रेष्ठ मानव वहाँकी यात्रा करते हैं, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं। जो श्राद्ध-कर्ममें इन परम पवित्र तीर्थोंके नाम सुनाता है, वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें भगवान् विष्णुके सनातन धामको जाता है। गोदान, श्राद्धदान अथवा देवपूजाके समय प्रतिदिन जो विद्वान् इसका पाठ करता है, वह परमात्माको प्राप्त होता है।

— ★ — वेत्रवती और साध्रमती (साबरमती) नदीका माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं—सुन्दरि ! अब मैं वेत्रवती (बेतवा) नदीका माहात्म्य वर्णन करता हूँ, सुनो। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्यकी मुक्ति हो जाती है। पूर्वकालमें वृत्रासुरने एक बहुत ही गहरा कुआँ खुदवायां था, जिसका नाम महागभीर था। उसीसे यह दिव्य नदी प्रकट हुई है। वेत्रवती नदी बड़े-बड़े पापोंकी राशिका विनाश करनेवाली है। गङ्गाजीके समान ही इस श्रेष्ठ नदीका भी माहात्म्य है। इसके दर्शन करनेमात्रसे पापराशि शान्त हो जाती है। पहलेकी बात है, चम्पक नगरमें एक राजा राज्य करता था। वह बड़ा ही दुष्ट और ग्रजाको पीड़ा देनेवाला था। वह नीच अर्धमंडल का मूर्तिमान् स्वरूप था। निरन्तर भगवान् विष्णुकी निन्दा करता, देवताओं और ब्राह्मणोंकी घातमें लगा रहता तथा

आश्रमोंको कलंडित किया करता था। वह मूर्ख वेदोंकी निन्दामें ही प्रवृत्त रहनेवाला, निर्दयी, शठ, असत्, शास्त्रोंमें अनुराग रखनेवाला और परायी स्त्रियोंको दूषित करनेवाला था। उसका नाम था विदारुण। वह अल्पत पापी था। महान् पाप और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेके कारण राजा विदारुण कोढ़ी हो गया। एक दिन दैवयोगसे वह शिकार खेलता हुआ उस नदीके किनारे आ निकला। उस समय उसे बड़े जोरकी प्यास सता रही थी। घोड़ेसे उतरकर उसने नदीका जल पीया और पुनः अपनी राजधानीको लौट गया। उस जलके पीनेमात्रसे राजाकी कोढ़ दूर हो गयी और बुद्धिमें भी निर्मलता आ गयी। तबसे उसके हृदयमें भगवान् विष्णुके प्रति भक्ति उत्पन्न हो गयी। अब वह सदा ही समय-समयपर वहाँ

आकर स्नान करने लगा। इससे वह अत्यन्त रूपवान्



और निर्मल हो गया। इस लोकमें सुख भोगते हुए उसने अनेकों यज्ञ किये, ब्राह्मणोंको दक्षिणा दी तथा अन्तमें श्रीविष्णुके वैकुण्ठधामको प्राप्त किया।

पार्वती ! ऐसा जानकर जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र वेत्रवती नदीमें स्नान करते हैं, वे पापबन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। कार्तिक, माघ अथवा वैशाखमें जो लोग बारंबार वहाँ स्नान करते हैं, वे भी कर्मेंकि बन्धनसे छुटकारा पा जाते हैं। ब्रह्महत्या, गोहत्या, बालहत्या और वेद-निन्दा करनेवाला पुरुष भी नदियोंके संगममें स्नान करके पापसे मुक्त हो जाता है। जिस स्थानपर और जिस नदीका साभ्रमती (साबरमती) नदीके साथ संगम दिखायी दे, वहाँ स्नान करनेपर ब्रह्महत्यारा भी पापमुक्त हो जाता है। खेटक (खेड़ा) नामक दिव्य नगर इस धरातलका स्वर्ग है। वहाँ बहुत-से ब्राह्मणोंने अनेक प्रकारके योगोंका साधन किया है। वहाँ स्नान और भोजन करनेसे मनुष्यका पुर्जन्म नहीं होता। पार्वती ! कलियुगमें वेत्रवती नदी दूसरी गङ्गाके समान मानी गयी है। जो लोग सुख, धन और स्वर्ग चाहते हैं, वे उस

नदीमें बारंबार स्नान करनेसे इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें विष्णुके सनातन धामको जाते हैं। सूर्यवंश और सोमवंशमें उत्पन्न क्षत्रिय वेत्रवती नदीके तटपर आकर उसमें स्नान करके परम शान्ति पा चुके हैं। यह नदी दर्शनसे दुःख और स्पर्शसे मानसिक पापका नाश करती है। इसमें स्नान और जलपान करनेवाला मनुष्य निस्सन्देह मोक्षका भागी होता है। यहाँ स्नान, जप तथा होम करनेसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। वाराणसी तीर्थमें जाकर जो भक्तिपूर्वक चान्द्रायण-ब्रतका अनुष्ठान करता है, और वहाँ उसे जिस पुण्यकी प्राप्ति होती है, उसे वह वेत्रवती नदीमें स्नान करनेमात्रसे पा लेता है। यदि वेत्रवती नदीमें किसीकी मृत्यु हो जाती है तो वह चतुर्भुजरूप होकर विष्णुके परमपदको प्राप्त होता है। पृथ्वीपर जो-जो तीर्थ, देवता और पितर हैं, वे सब वेत्रवती नदीमें वास करते हैं। महेश्वर ! मैं, विष्णु, ब्रह्मा, देवगण तथा महर्षि—ये सब-के-सब वेत्रवती नदीमें विराजमान रहते हैं। जो एक, दो अथवा तीनों समय वेत्रवती नदीमें स्नान करते हैं, वे निश्चय ही मुक्त हो जाते हैं।

देवि ! अब मैं साभ्रमती नदीके माहात्म्यका यथावत् वर्णन करता हूँ। मुनिश्रेष्ठ कश्यपने इसके लिये बहुत बड़ी तपस्या की थी। एक दिनकी बात है, महर्षि कश्यप नैमिषारण्यमें गये। वहाँ ऋषियोंके साथ उन्होंने बहुत समयतक वार्तालाप किया। उस समय ऋषियोंने कहा—‘कश्यपजी ! आप हमलोगोंकी प्रसन्नताके लिये यहाँ गङ्गाजीको ले आइये। प्रभो ! वह सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गा आपके ही नामसे प्रसिद्ध होगी।’

उन महर्षियोंकी बात सुनकर कश्यपजीने उन्हें प्रणाम किया और वहाँसे चलकर वे आबूके जंगलमें सरस्वती नदीके समीप आये। वहाँ उन्होंने अत्यन्त दुष्कर तपस्या की। वे मेरी ही आराधनामें संलग्न थे। उस समय मैंने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया और कहा—‘विप्रवर ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम मुझसे मनोवाञ्छित वर माँगो।’

कश्यपने कहा—देवदेव ! जगत्पते ! महादेव !

आप वर देनेमें समर्थ हैं। आपके मस्तकपर जो ये परम पवित्र पापहारिणी गङ्गा स्थित हैं, इन्हें विशेष कृपा करके मुझे दीजिये। आपको नमस्कार है।

पार्वती ! उस समय मैंने महर्षि कश्यपसे कहा—‘द्विजश्रेष्ठ ! लो अपना वर।’ यों कहकर मैंने अपने मस्तकसे एक जटा उखाड़कर उसीके साथ उन्हें गङ्गाको



दिया। श्रीगङ्गाजीको लेकर द्विजश्रेष्ठ कश्यप बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने स्थानको चले गये। गिरिजे ! पूर्वकालमें विष्णुलोककी इच्छा रखनेवाले राजा भगीरथने मुझसे गङ्गाजीके लिये याचना की थी, उस समय उन्हें भी मैंने गङ्गाको समर्पित किया था। तत्पश्चात् पुनः ऋषियोंके कहनेसे कश्यपजीको गङ्गा प्रदान की। यह काश्यपी गङ्गा समस्त रोग और दोषोंका अपहरण करनेवाली है। सुन्दरि ! भिन्न-भिन्न युगोंमें यह गङ्गा संसारमें जिन-जिन नामोंसे विख्यात होती है, उनका यथार्थ वर्णन करता हूँ; सुनो। सत्ययुगमें कृतवती, त्रैतामें गिरिकर्णिका, द्वापरमें चन्दना और कलियुगमें इनका नाम साभ्रमती (साबरमती) होता है। जो मनुष्य प्रतिदिन यहाँ विशेषरूपसे स्नान करनेके लिये आते हैं,

वे सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके सनातन धामको जाते हैं। प्रक्षावतरण तीर्थमें, सरस्वती नदीमें, केदारक्षेत्रमें तथा कुरुक्षेत्रमें स्नान करनेसे जो फल होता है, वह फल साभ्रमती नदीमें नित्य स्नान करनेसे प्रतिदिन प्राप्त होता है। माघ मास आनेपर प्रयाग तीर्थमें प्रातःस्नान करनेसे जो फल होता है, कार्तिककी पूर्णिमाको कृत्तिकाका योग आनेपर श्रीशैलमें भगवान् माधवके समक्ष जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह साभ्रमती नदीमें ढुबकी लगानेमात्रसे प्राप्त हो जाता है। देवि ! यह नदी सबसे श्रेष्ठ और सम्पूर्ण जगत्में पावन है। इतना ही नहीं, यह पवित्र और पापनाशिनी होनेके कारण परम धन्य है।

देवेश्वरि ! पितृतीर्थ, सब तीर्थोंसहित प्रयाग, माधवसहित भगवान् वटेश्वर, दशाश्वमेध तीर्थ तथा गङ्गाद्वार—ये सब मेरी आज्ञासे साभ्रमती नदीमें निवास करते हैं। नन्दा, ललिता, सप्तधारक, मित्रपद, भगवान् शङ्करका निवासभूत केदारतीर्थ, सर्वतीर्थमय गङ्गासागर, शतद्रु (सतलज) के जलसे भरे हुए कुण्डमें ब्रह्मसर तीर्थ, तथा नैमिषतीर्थ भी मेरी आज्ञासे सदा साभ्रमती नदीके जलमें निवास करते हैं। श्रीता, बलकलिनी, हिरण्यमयी, हस्तिमती तथा सागरगामिनी नदी बार्त्रीग्री—ये सब पितरोंको अत्यन्त प्रिय तथा श्राद्धका कोटिगुना फल देनेवाली हैं। वहाँ पुत्रोंको पितरोंके हितके लिये पिण्ड-दान करना चाहिये। जो मनुष्य वहाँ स्नान और दान करते हैं, वे इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें भगवान् विष्णुके सनातन धामको जाते हैं। नीलकण्ठ तीर्थ, नन्दहद तीर्थ, रुद्रहद तीर्थ, पुण्यमय रुद्रमहालय तीर्थ, परम पुण्यमयी मन्दाकिनी तथा महानदी अच्छोदा—ये सब तीर्थ और नदियाँ अव्यक्तरूपसे साभ्रमती नदीमें बहती रहती हैं। धूम्रतीर्थ, मित्रपद, बैजनाथ, दृषद्वर, क्षिप्रा नदी, महाकाल तीर्थ, कालझर पर्वत, गङ्गोद्धूत तीर्थ, हरोद्धेद तीर्थ, नर्मदा नदी तथा ओङ्कार तीर्थ—ये गङ्गामें पिण्डदान करनेके समान फल देनेवाले हैं, ऐसा मनीषी पुरुषोंका कथन है। उक्त सभी तीर्थ ब्रह्मतीर्थ कहलाते हैं। ब्रह्मा आदि देवताओंने इन सभी तीर्थोंको साभ्रमती नदीके उत्तर तटपर गुप्तरूपसे

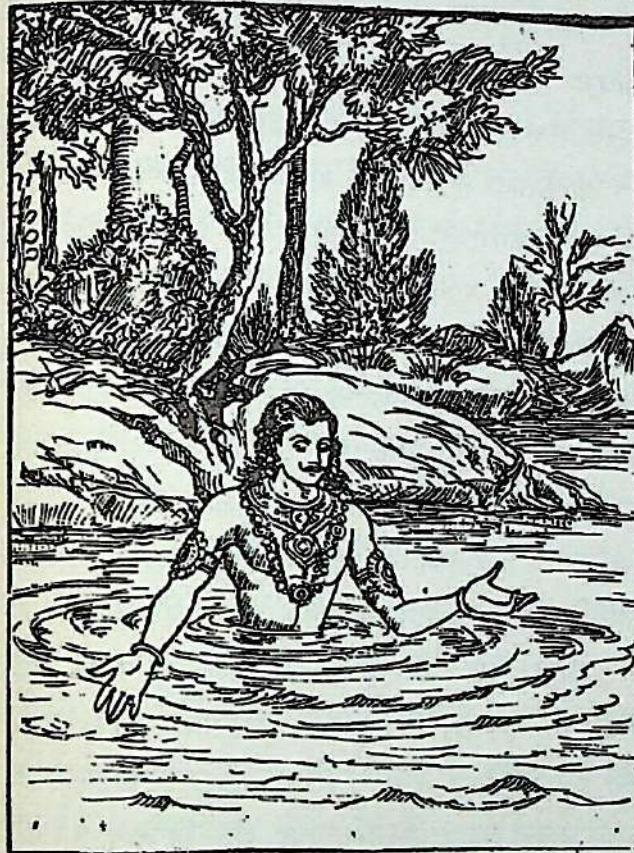
स्थापित कर रखा है। महेश्वरि ! ये तीर्थ स्मरणमात्रसे लोगोंके पापोंका नाश करनेवाले हैं। फिर जो वहाँ श्राद्ध करते हैं, उनके लिये तो कहना ही क्या है। ओङ्कार तीर्थ, पितृतीर्थ, कावेरी नदी, कपिलाका जल, चण्डवेगाका साभ्रमतीके साथ संगम तथा अमरकण्टक—इन तीर्थोंमें स्नान आदि करनेसे कुरुक्षेत्रकी अपेक्षा सौगुना पुण्य होता है। साभ्रमती और वार्त्तिनी नदीका जहाँ संगम हुआ है, वहाँ गणेश आदि देवताओंने तीर्थसंघकी स्थापना की है। इस प्रकार मैंने यहाँ संक्षेपसे साभ्रमती नदीमें तीर्थोंके संगमका वर्णन किया है। विस्तारके साथ उनका वर्णन करनेमें बृहस्पति भी समर्थ नहीं है।

अतः इस तीर्थमें प्रयत्नपूर्वक स्नान करना चाहिये। सबेरे तीन मुहूर्तका समय प्रातःकाल कहलाता है। उसके बाद तीन मुहूर्ततक पूर्वाह्न या सङ्घवकाल होता है। इन दोनों कालोंमें तीर्थके भीतर किया हुआ स्नान आदि देवताओंको प्रीतिदायक होता है। तत्पश्चात् तीन मुहूर्ततक मध्याह्न है और उसके बादका तीन मुहूर्त अपराह्न कहलाता है। इसमें किया हुआ स्नान, पिण्डदान और तर्पण पितरोंकी प्रसन्नताका कारण होता है। तदनन्तर तीन मुहूर्तका समय सायाह्न माना गया है। उसमें तीर्थस्नान नहीं करना चाहिये। वह राक्षसी बेला है, जो सभी कर्मोंमें निन्दित है। दिन-भरमें कुल पंद्रह मुहूर्त बताये गये हैं। उनमें जो आठवाँ मुहूर्त है, वह कुतप-काल माना गया है। उस समय पितरोंको पिण्डदान करनेसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। मध्याह्नकाल, नेपालका कम्बल, चाँदी, कुश, गौ, दौहित्र (पुत्रीका पुत्र) और तिल—ये कुतप कहलाते हैं। 'कु' नाम है पापका, उसको सन्ताप देनेवाले होनेके कारण ये कुतपके नामसे विख्यात हैं। कुतप मुहूर्तके बाद चार मुहूर्ततक कुल पाँच मुहूर्तका समय श्राद्धके लिये उत्तम समय माना गया है। कुश और काले तिल श्राद्धकी रक्षाके लिये भगवान् विष्णुके शरीरसे प्रकट हुए हैं—ऐसा देवताओंका कथन है। तीर्थवासी पुरुष जलमें खड़े हो हाथमें कुश लेकर तिलमिश्रित जलकी अञ्जलि पितरोंको दें। ऐसा करनेसे श्राद्धमें बाधा नहीं आती।

पार्वती ! इस प्रकार मैंने साभ्रमती नदीमें नामोच्चारणपूर्वक तीर्थोंका प्रवेश कराकर उसे महर्षि कश्यपको दिया था। कश्यप मेरे प्रिय भक्त है, इसलिये उन्हें मैंने यह पवित्र एवं पापनाशिनी गङ्गा प्रदान की थी। महाभागे ! साभ्रमतीके तटपर ब्रह्मचारितीर्थ है। वहाँ उसी नामसे मैंने अपनेको स्थापित कर रखा है। सम्पूर्ण जगत्का हित करनेके लिये मैं वहाँ ब्रह्मचारीश नामसे निवास करता हूँ। साभ्रमती नदीके किनारे ब्रह्मचारीश शिवके पास जाकर भक्त पुरुष यदि कलियुगमें विशेषरूपसे पूजा करे तो इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें महान् शिवधामको प्राप्त होता है। उनके स्थानपर जाकर जो जितेन्द्रिय-भावसे उपवास करता और रात्रिमें स्थिर भावसे रहकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करता है, उसे मैं योगीरूपसे दर्शन देता हूँ तथा उसकी समस्त मनोगत कामनाओंको भी पूर्ण करता हूँ—यह बिलकुल सच्ची बात है। पार्वती ! वहाँ मेरा कोई लिङ्ग नहीं है, मेरा स्थानमात्र है। जो विद्वान् वहाँ फूल, धूप तथा नाना प्रकारका नैवेद्य अर्पण करता है, उसे निश्चय ही सब कुछ प्राप्त होता है। जो मेरे स्थानपर आकर बिल्वपत्र, पुष्प तथा चन्दन आदिसे मेरी पूजा करते हैं, उन्हें मैं सब कुछ देता हूँ। दर्शनसे रोग नष्ट होता है, पूजा करनेसे आयु प्राप्त होती है तथा वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य निश्चय ही मोक्षका भागी होता है।

सुन्दरि ! सुनो, अब मैं राजखङ्ग नामक परम अद्भुत तीर्थका वर्णन करता हूँ, जो साभ्रमती नदीके तीर्थोंमें विशेष विख्यात है। सूर्यवंशमें उत्पन्न एक वैकर्तन नामक राजा था, जो दुरांचारी, पापात्मा, ब्राह्मण-निन्दक, गुरुद्रोही, सदा असन्तुष्ट रहनेवाला, समस्त कर्मोंकी निन्दा करनेवाला, सदा परायी स्त्रियोंमें प्रीति रखनेवाला और निरन्तर श्रीविष्णुकी निन्दा करनेवाला था। वह बहुत-से प्राणियोंका घातक था और अपनी प्रजाको सदा पीड़ा दिया करता था। इस प्रकार दुष्टात्मा राजा वैकर्तन इस पृथ्वीपर राज्य करता था। कुछ कालके पश्चात् दैवयोगसे अपने पापके कारण वह कोङ्गी हो गया। अपने शरीरकी दुर्दशा देखकर वह बार-बार

सोचने लगा—‘अब क्या करना चाहिये?’ वह निरन्तर इसी चिन्तामें डूबा रहता था। एक दिन दैवयोगसे क्रीड़ाके लिये राजा बनमें गया। वहाँ साध्रमती नदीके



तीरपर जाकर खड़ा हुआ। फिर उसने वहाँ स्नान किया और वहाँका उत्तम जल पीया। इससे उसका शरीर दिव्य हो गया। पार्वती! जैसे सोनेकी प्रतिमा देदीप्यमान दिखायी देती है, उसी प्रकार राजा वैकर्तन भी परम कान्तिमान् हो गया। उस दिव्य रूपको पाकर राजाने कुछ कालतक राज्य-भोग किया। इसके बाद वह परमपदको प्राप्त हुआ। तबसे वह तीर्थ राजखड़के नामसे सुप्रसिद्ध हो गया। जो लोग वहाँ स्नान और दान करते हैं, वे इस लोकमें सुख भोगकर भगवान् विष्णुके सनातन धामको प्राप्त होते हैं। उन्हें कभी रोग और शोक नहीं होता। जो प्रतिदिन राजखड़ तीर्थमें स्नान और श्रद्धापूर्वक पितरोंका तर्पण करते हैं, वे मनुष्य इस पृथ्वीपर पुण्यकर्मा कहलाते हैं। ब्राह्मणों और बालकोंकी हत्या करनेवाले पुरुष भी यदि यहाँ स्नान करते हैं तो वे पापोंसे रहित हो भगवान् शिवके समीप जाते हैं। जो मनुष्य साध्रमती नदीके तटपर नील वृषका उत्सर्ग करेंगे, उनके पितर प्रलय कालतक तृप्त रहेंगे। राजखड़ तीर्थका यह दिव्य उपाख्यान जो सुनते हैं, उन्हें कभी भय नहीं प्राप्त होता इसके सुनने और पढ़नेसे समस्त रोग-दोष शान्त हो जाते हैं।



साध्रमती नदीके अवान्तर तीर्थोंका वर्णन

श्रीपार्वतीजीने पूछा—भगवन्! नन्दिकुण्डसे निकलकर बहती हुई साध्रमती नदीने किन-किन देशोंको पवित्र किया है, यह बतानेकी कृपा करें।

श्रीमहादेवजी बोले—देवि! परम पावन नन्दिकुण्ड नामक तीर्थसे निकलनेपर पहले मुनियोद्वारा प्रकाशित कपालमोचन नामक तीर्थ पड़ता है। यह तीर्थ पावनसे भी अत्यन्त पावन और सबसे अधिक तेजस्वी है। पार्वती! यहाँ मैंने ब्रह्मकपालका परित्याग किया है, अतः मुझसे ही कपालमोचन तीर्थकी उत्पत्ति हुई है। यह सम्पूर्ण भूतोंको पवित्र करनेवाला विश्वविख्यात तीर्थ प्रकट हुआ है। इसे कपालकुण्ड तीर्थ भी कहते हैं। यह तीर्थोंका राजा है। इस शुभ एवं निर्मल तीर्थमें देवगा, नाग, गन्धर्व, किन्नर आदि तथा महात्मा पुरुष निवास करते हैं। यह

तीनों लोकोंमें विख्यात, ज्ञानदाता एवं मोक्षदायक तीर्थ है। यहाँ स्नान करके पवित्र हो मेरा पूजन करना चाहिये। एक रात उपवास करके ब्राह्मण-भोजन कराये। यहाँ वस्त्र दान करनेसे मानव अग्निहोत्रका फल पाता है। जो कोई इस तीर्थमें दर्शन-ब्रतका अवलम्बन करके रहता है। वह देहत्यागके अनन्तर निश्चय ही शिवलोकमें जाता है।

भगीरथके कुलमें सुदास नामक एक महाबली राजा हुए थे। उनके पुत्रका नाम मित्रसह था। राजा मित्रसह सौदास नामसे भी विख्यात थे। सौदास महर्षि वसिष्ठके शापसे राक्षस हो गये थे। उन्होंने साध्रमती नदीमें स्नान किया। इससे वे शापजनित पापसे मुक्त हो गये। यहाँ नन्दितीर्थमें गङ्गा, यमुना, गोदावरी और सरस्वती आदि पुण्यदायिनी पवित्र नदियाँ निवास करती हैं। पृथ्वीके

समस्त पतित प्राणी साध्रमतीके जलका स्पर्श करनेमात्रसे शुद्ध हो जाते हैं। जो मनुष्य वहाँ भक्तिपूर्वक श्राद्ध करता है, उसके पितर तृप्त होकर परमपदको प्राप्त होते हैं।

तदनन्तर महर्षि कश्यपके उपदेशसे साध्रमती नदी ब्रह्मर्षियोद्वारा सेवित विकीर्ण बनमें आयी। उसका प्रबल वेगसे बहता जल पर्वतोंसे टकराकर सात भागोंमें विभक्त हो गया। उन सभी धाराओंसे युक्त साध्रमती नदी दक्षिण-समुद्रमें मिली है। पहली धारा परम पवित्र साध्रमती नामसे ही विख्यात हुई। दूसरीका नाम श्वेता है, तीसरी बकुला या वल्कला और चौथी हिरण्यमयी कहलाती है। पाँचवीं धाराका नाम हस्तिमती है, जो सब पापोंका नाश करनेवाली बतायी गयी है। छठी धारा वेत्रवतीके नामसे विख्यात है, जिसे पूर्वकालमें वृत्रासुरे उत्पन्न किया था। यह श्रेष्ठ देवी वृत्रकूपसे निकली थी, इसीलिये इसका नाम वेत्रवती हुआ। यह बड़े-बड़े पापोंका नाश करनेवाली है। सातवीं धाराका नाम भद्रामुखी तथा सुभद्रा है। यह सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करनेवाली है। इन सातों धाराओंसे भिन्न-भिन्न देशोंको पवित्र करती हुई एक ही साध्रमती नदी 'सप्तस्रोता' के रूपमें प्रतिष्ठित हुई है। जो विकीर्ण तीर्थमें पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्ध एवं दान करता है, उसे गयामें पिण्डदान करनेका फल प्राप्त होता है। जो धर्मध्रष्ट होनेके कारण सद्गतिसे वञ्चित है, जिनकी पिण्ड और जलदानकी क्रिया लुप्त हो गयी है, वे भी विकीर्ण तीर्थमें पिण्डदान और जलदान करनेपर मुक्त हो जाते हैं। अतः वेदत्रयीकी विधिके अनुसार यहाँ श्रद्धापूर्वक श्राद्धका अनुष्ठान करना चाहिये। इस तीर्थमें कश्यपजीने ब्राह्मणोंको संबोधित करके कहा था—‘द्विजवरो! यदि तुम्हें क्रृष्णिलोक प्राप्त करनेकी इच्छा है तो इस विकीर्ण तीर्थमें, जहाँ सात नदियोंका उद्गम हुआ है, विशेष रूपसे स्नान करो।’ यदि यहाँ स्नान किया जाय तो सब दुःखोंका नाश हो जाता है। यह विकीर्ण तीर्थ सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ तथा क्षेत्रोंमें परम उत्तम है। यह शुभगति प्रदान करनेवाला तथा रोग और दोषका निवारण करनेवाला है।

विकीर्ण तीर्थके बाद श्वेतोद्धव नामक उत्तम तीर्थ है,

जहाँ सब पापोंका नाश करनेवाली त्रिलोकविख्यात श्वेता नदी प्रवाहित होती है। वह नदी मेरे अङ्गोंमें लगे हुए भस्मके संयोगसे प्रकट हुई थी, इसलिये देवताओंद्वारा सम्मानित हुई। उसमें स्नान करके पवित्र और जितेन्द्रिय भावसे वहाँ तीन रात निवास करनेवाला पुरुष महाकालेश्वरका दर्शन करनेसे रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो श्वेताके तटपर कुश और तिलोंके साथ पितरोंको पिण्डदान करता है, उसके पितर पूर्ण तृप्त हो जाते हैं। श्वेतगङ्गा परम पुण्यमयी और दुःख एवं दरिद्रताको दूर करनेवाली है। पार्वती! मैं उसके पवित्र संगममें नित्य निवास करता हूँ। उसमें जो स्नान और दान करते हैं, उन्हें उसका अक्षय फल प्राप्त होता है। जो नरश्रेष्ठ वहाँ धूप, फूल, माला और आरती निवेदन करते हैं, वे पुण्यात्मा हैं। जो बिल्वपत्र लेकर श्वेताके किनारे शिवके ऊपर चढ़ाता है, वह मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है।

यहाँसे तीर्थ-यात्री पुरुष गणतीर्थको जाय। वह तीर्थ चन्दना नदीके तटपर है। शिवगणोंने उसका नाम त्रिविष्टप रखा है। पूर्णिमाको एकाग्रचित्त हो त्रिविष्टप तीर्थमें स्नान करके मनुष्य ब्रह्महत्या-जैसे पापसे मुक्त हो जाता है। जो वर्षाके चार महीनोंमें वहाँ निवास करता है, वह महान् सौभाग्यशाली एवं पवित्र होकर रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। कृष्णपक्षकी अष्टमीको गणतीर्थमें स्नान करके जो उपवास करता है तथा बकुलासंगममें गोता लगाता है, वह मानव स्वर्गलोकमें जाता है। उस तीर्थमें स्नान करके बकुलेश्वरका दर्शन करनेसे मनुष्य गणेशजीके प्रसादसे गणपतिपदको प्राप्त होता है। यहाँ परम पराक्रमी चन्द्रवंशी राजा विश्वदत्तने दीर्घकालतक बड़ी भारी तपस्या की थी और श्रीगणेशजीके प्रसादसे गणपतिपदको प्राप्त किया था। महेश्वर! वसिष्ठ, वामदेव, कहोड़, कौषीतक, भारद्वाज, अङ्गिरा, विश्वामित्र तथा वामन—ये पुण्यात्मा मुनि श्रीगणेशजीकी कृपासे सदा ही इस तीर्थका सेवन करते हैं। इसके सेवनसे पुत्रहीनको पुत्र, धनहीनको धन, विद्याहीनको विद्या और मोक्षार्थीको मोक्ष प्राप्त होता है। जो यहाँ स्नान अथवा पूजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो विष्णुके परमपदको प्राप्त होता है।

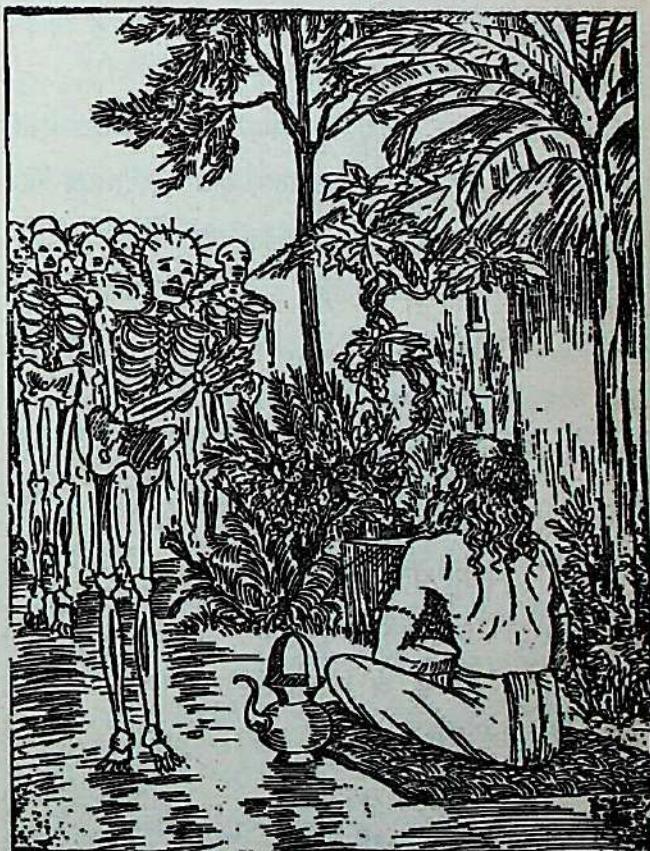
अग्नितीर्थ, हिरण्यासंगमतीर्थ, धर्मतीर्थ आदिकी महिमा

महादेवजी कहते हैं—पार्वती ! साध्रमतीके पास ही ईशान-कोणमें पालेश्वर नामक तीर्थ है, जहाँ चण्डीदेवी प्रतिष्ठित है। वह योगमाताओंका पीठ है, जो समस्त सिद्धियोंका साधक है। वहाँ जगत्पर अनुग्रह करने और सब देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये माताएँ परम यत्पूर्वक स्थित हैं। उस तीर्थमें दृढ़तापूर्वक ब्रतका पालन करते हुए तीन रात निवास करके मनुष्य चण्डीपति भगवान् शङ्करके समीप जा उनका दर्शन करे और उनके निकट साध्रमती नदीमें स्नान करके समाधि-विधिसे युक्त हो मातृ-मण्डलके दर्शनके लिये जाय; ऐसा करनेसे मनुष्य सहस्र गोदानोंका फल पाता है। अग्नितीर्थमें स्नान करके चामुण्डाका दर्शन करनेपर मनुष्यको राक्षस, भूत और पिशाचोंका भय नहीं रहता। **पार्वती !** साध्रमतीमें जहाँ गोक्षुरा नदी मिली है, वहाँ सहस्रों तीर्थ है। वहाँ तिलके चूर्णसे श्राद्ध करना चाहिये। उस तीर्थमें पिण्डदान करके ब्राह्मणोंको भोजन करनेसे अक्षय पदकी प्राप्ति होती है।

पूर्वकालमें कुकर्दम नामक एक पापिष्ठ एवं दुर्धर्ष राजा रहता था, जो बड़ा ही खल, मूढ़, अहङ्कारी, ब्राह्मणोंका निन्दक, गोहत्यारा, बालघाती और सदा उन्मत्त रहनेवाला था। पिण्डार नामक नगरमें वह राज्य करता था। एक समय अधर्मके ही योगमें उसकी मृत्यु हो गयी। मरनेपर वह प्रेत हुआ। उसे हवातक पीनेको नहीं मिलती थी; अतः वह अनेक प्रेतोंके साथ करुणस्वरमें रोता और हाहाकार मचाता हुआ इधर-उधर भटकता फिरता था। एक समय दैवयोगसे वह अपने गुरुके आश्रमपर जा पहुँचा। पूर्वजन्ममें उसने कुछ पुण्य किया था, जिसके योगसे उसे गुरुका सत्सङ्ग प्राप्त हुआ।

पार्वती ! पूर्वजन्ममें वह वेदपाठी ब्राह्मण था और प्रतिदिन महादेवजीकी पूजा तथा अतिथियोंका स्वागत-सत्कार करके ही भोजन करता था। उस पुण्यके प्रभावसे वह श्रेष्ठ ब्राह्मण पिण्डारपुण्ड्रमें राजा कुकर्दमके

रूपमें उत्पन्न हुआ। जबतक उसने राज्य किया, कभी मन और क्रियाद्वारा भी पुण्य कर्म नहीं किया था, इसलिये दैवात् मृत्यु होनेपर वह प्रेतराज हुआ। सूखा हुआ मुँह, कङ्काल शरीर, पीला रंग, विकराल रूप और गहरी आँखें—यही उसकी आकृति थी। वह महापापी प्रेत अन्य दुष्ट प्रेतोंके साथ रहता था। उसके रोएँ ऊपरको उठे हुए थे। जटाओंसे युक्त होनेके कारण वह भयङ्कर जान पड़ता था। उसे इस रूपमें देखकर आश्रमवासी ब्राह्मण कहोड व्याकुल हो उठे।



कहोड बोले—राजन् ! यह अग्निपालेश्वर तीर्थ है। मैं इस परम अद्भुत, मनोरम एवं रमणीय स्थानमें प्रतिदिन निवास करता हूँ। तुम तो मेरे यजमान हो। फिर इस प्रकार प्रेतराज कैसे हो गये ?

प्रेत बोला—देव ! मैं वही पिण्डारपुरका कुकर्दम राजा हूँ। वहाँ रहकर मैंने जो कुछ किया है, उसे सुनिये। ब्राह्मणोंकी हिंसा, असत्यभाषण, प्रजाओंका उत्पीड़न, जीवोंकी हत्या, गौओंको दुःख देना, सदा बिना स्नान

किये ही रहना, सज्जन पुरुषोंको कलङ्क लगाना, भगवान् विष्णु और वैष्णवोंकी सर्वदा निन्दा करना—यही मेरा काम था। मैं दुराचारी और दुरात्मा था। जहाँ जीमें आता, वहीं स्वा लेता। कभी भी शौचाचारका पालन नहीं करता था। द्विजराज ! उसी पापकर्मके योगसे मैं मृत्युके बादसे प्रेतयोनिमें पड़ा हूँ। यहाँ नाना प्रकारके दुःख सहन करने पड़ते हैं। जिसके माता, पिता, स्वजन एवं बन्धु-बान्धव नहीं हैं। उसके लिये गुरु ही माता हैं और गुरु ही उत्तम गति है। ब्रह्मन् ! ऐसा जानकर मुझे मोक्ष प्रदान कीजिये।

कहोडने कहा—राजन् ! मैं तुम्हारी प्रार्थना पूर्ण करूँगा। तुम्हारे साथ जो ग्यारह प्रेत और हैं, इन्हें भी इस तीर्थमें मुक्ति दिलाऊँगा।

पार्वती ! यों कहकर ब्राह्मण कहोडने सबके साथ तीर्थमें जाकर तिलसहित पिण्डदान एवं जलदानका कार्य किया। तीर्थमें मास और तिथिका कोई विचार नहीं है। वहाँ जाकर सदा ही श्राद्धादि कर्म करने चाहिये। यह बात पूर्वकालमें ब्रह्माजीने मुझसे कही थी। ब्राह्मणके द्वारा श्राद्धकी क्रिया पूर्ण होनेपर उस श्रेष्ठ तीर्थमें वे सभी



प्रेत मुक्त हो गये और उत्तम विमानपर बैठकर मेरे धामको चले गये। सुरेश्वर ! जहाँ साभ्रमतीके साथ गोक्षुरा नदीका संगम हुआ है, वहाँ स्नान और दान करनेसे करोड़ यज्ञोंका फल होता है। कपालेश्वर क्षेत्रमें जहाँ अग्नितीर्थ है, वहाँ साभ्रमती नदी मुक्ति देनेवाली बतायी गयी है।

देवि ! अब मैं दूसरे तीर्थ हिरण्यासंगमका वर्णन करता हूँ। वह महान् तीर्थ है। पूर्वकालमें जब साभ्रमती गङ्गा सात धाराओंमें विभक्त हुई, उस समय वह ब्रह्मतनया सप्तस्रोताके नामसे विख्यात हुई। उसके सातवें स्रोतको ही हिरण्या कहते हैं। ऋक्ष और मञ्जुमके बीचमें सत्यवान् नामक पर्वत है। उससे पूर्व दिशामें हिरण्यासंगम नामक महातीर्थ है, जिसमें स्नान और जलपान करनेसे मनुष्य शुभगतिको प्राप्त होता है। वहाँसे वनस्थलीमें जाय और पापहारी भगवान् नारायणका दर्शन करे। यह वहीं स्थान है, जहाँ भगवान् नर और नारायणने उत्तम तपस्या की थी। एक हजार कपिला गौओंके दानसे जो फल मिलता है, दशाश्वमेधतीर्थमें चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय स्नानसे जो पुण्य होता है तथा तुलापुरुषके दानसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, उसी पुण्यफलको मनुष्य हिरण्यासंगममें स्नान करके प्राप्त कर लेता है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—जो भी हिरण्यासंगममें स्नान करते हैं, वे शिवधामको जाते हैं।

देवि ! अब मैं हिरण्यासंगमके बाद आनेवाले धर्मतीर्थका वर्णन करता हूँ, जहाँ साभ्रमती गङ्गाके साथ धर्मावती नदीका संगम हुआ है। वहाँ स्नान करके मनुष्य धन्य हो जाता है और निश्चय ही स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। जो वहाँ धर्मद्वारा स्थापित तीर्थका दर्शन करता है, वह पुण्यका भागी होता है। जो लोग वहाँ श्राद्ध करते हैं, वे पितृऋणसे मुक्त हो जाते हैं। वहाँसे मधुरातीर्थकी यात्रा करे, जहाँ सब पापोंका नाश हो जाता है। मधुरातीर्थमें स्नान करके मधुर संज्ञक श्रीहरिका दर्शन करना चाहिये। कंसासुरका वध हो जानेके पश्चात् जब भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकापुरीको जाने लगे, उस समय

उन्होंने चन्दना नदीके तटपर सात राततक निवास किया। उसके बाद भोज, वृष्णि और अन्धक-वंशियोंसे घिरे हुए वे सप्तस्त यादव-बीरोंके साथ मधुरातीर्थमें आये और वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके द्वारकापुरीको गये। जो मनुष्य तीर्थमें स्नान करके मधुर नामसे विख्यात भगवान् सूर्यकी पूजा करता है और माघके शुक्रपक्षकी सप्तमीको कपिला गौका दान करता है, वह इस लोकमें दीर्घकाल-तक सुख भोगनेके पश्चात् सूर्यलोकको जाता है।

===== ★ ===== साध्रमती-तटके कपीश्वर, एकधार, सप्तधार और ब्रह्मवल्ली आदि तीर्थोंकी महिमाका वर्णन

महादेवजी कहते हैं—पार्वती ! मनुष्य कम्बुतीर्थमें स्नान और पितृतर्पण करके रोग-शोकसे रहित देवदेवेश्वर भगवान् नारायणका पूजन करे। फिर ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक दान दे। ऐसा करनेपर वह उस तीर्थके प्रभावसे श्रीविष्णुधामको प्राप्त होता है। उसके बाद कपीश्वर नामक तीर्थकी यात्रा करे। वह रक्तसिंहके समीप है और महापातकोंका नाश करनेवाला है। पूर्वकालमें श्रीराम-रावण-युद्धके प्रारम्भमें जब समुद्रपर पुल बाँधा जा रहा था, उस समय इस पर्वतका शिखर लेकर कपियोंने इसका विशेषरूपसे स्मरण किया। उन्होंने यहाँ कपीश्वरादित्य नामक उत्तम तीर्थकी स्थापना की। उस तीर्थमें स्नान और पितृतर्पण करके कपीश्वर-दित्यका दर्शन करनेपर मनुष्य ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है। कपीश्वरतीर्थमें विशेषतः चैत्रकी अष्टमीको स्नान करना चाहिये। हनुमानजी आदि प्रमुख वीरोंने इस तीर्थमें तीन दिनोंतक स्नान किया था। पार्वती ! इस प्रकार मैंने तुम्हारे लिये कपितीर्थके प्रभावका वर्णन किया है। वहाँसे परमपावन एकधार तीर्थको जाना चाहिये। जो एकधारमें स्नान करके एक रात्रि उपवास करता और स्वामिदेवेश्वरका पूजन करता है, वह अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। वहाँ स्नान और जलपान करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकमें जाता है। तत्पश्चात् तीर्थयात्री पुरुष सप्तधार नामक तीर्थकी यात्रा करे। वह सब तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ है। उस तीर्थको मुनियोंने सप्त-सारस्वत नाम दिया है। त्रेतायुगमें महर्षि मङ्किने वहाँ मङ्कितीर्थका निर्माण किया था। फिर द्वापरमें पाण्डवोंने सप्तधार तीर्थको प्रवृत्त किया। भगवान् शङ्करकी जटासे निकला हुआ गङ्गाजल यहाँ सात धाराओंके रूपमें प्रकट हुआ,

इसलिये यह सप्तधार तीर्थ कहलाता है। सात लोकोंमें जो गङ्गाजीके सात रूप सुने जाते हैं, वे सभी इस सप्तधार नामक तीर्थमें अपने पवित्र जलको प्रवाहित करते हैं। सप्तधार तीर्थमें किया हुआ श्राद्ध पितरोंको तृप्ति प्रदान करनेवाला होता है।

देवेश्वर ! वहाँसे ब्रह्मवल्ली नामक महान् तीर्थकी यात्रा करे। उस तीर्थके स्वरूपका वर्णन सुनो। जहाँ साध्रमती नदीका जल ब्रह्मवल्लीके जलसे मिला है, वह स्थान ब्रह्मतीर्थ कहलाता है। उसका महत्व प्रयागके समान माना गया है। ब्रह्माजीका कथन है कि वहाँ पिण्डदान करनेसे पितरोंको बारह वर्षोंतक तृप्ति बनी रहती है। विशेषतः ब्रह्मवल्लीमें पिण्डदानका गया-श्राद्धके समान पुण्य माना गया है। पुष्कर, गङ्गानदी और अमरकण्टक क्षेत्रमें जानेसे जो फल मिलता है, वह ब्रह्मवल्लीमें विशेषरूपसे प्राप्त होता है। चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय जो लोग दान करते हैं, उन्हें मिलनेवाला फल ब्रह्मवल्लीमें स्वतः प्राप्त हो जाता है। ब्रह्मवल्लीमें स्नान करके गलेमें तुलसीकी माला धारण किये भगवान् नारायणको स्मरण करता हुआ मनुष्य दिव्य वैकुण्ठधाममें जाता है, जो आनन्दस्वरूप एवं अविनाशी पद है।

तत्पश्चात् वृषतीर्थमें जाय, जो खण्डतीर्थके नामसे भी प्रसिद्ध है। पूर्वकालमें गौऐं वहाँ स्नान करके दिव्य गोलोकधामको प्राप्त हुई थीं। उस तीर्थमें निराहार रहकर जो गौओंके लिये पिण्डदान करता है, वह चौदह इन्द्रोंकी आयुपर्यन्त सुखी एवं अशुद्यशाली होता है, करोड़ गौओंके दानसे मनुष्यको जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह खण्डतीर्थमें निस्सन्देह प्राप्त हो जाता है। जो

खण्डतीर्थमें बैलका मूत्र लेकर पान करता है, उसकी तत्काल शुद्धि हो जाती है। खण्डतीर्थसे बढ़कर दूसरा कोई तीर्थ न हुआ है और न होगा। पार्वती ! जो मनुष्य वहाँकी यात्रा करते हैं, वे पुण्यके भागी होते हैं। वहाँ जाकर गौओंका पूजन करना चाहिये। उसके बाद वृषभकी पूजा करके एकाग्रतापूर्वक पुनः स्नान करना चाहिये। गो-पूजनसे मनुष्य गोलोकमें नित्य निवास करता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो वहाँ पाँच आँवलेके पौधे लगाते हैं, वे इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें श्रीहरिके परमधाममें जाते हैं।

तदनन्तर संगमेश्वर नामक उत्तम तीर्थकी यात्रा करे। वह बहुत बड़ा तीर्थ है। वहाँ पुण्यमयी हस्तिमती नदी साध्रमतीसे मिली है। वह नदी कौण्डिन्य मुनिके शापसे सूख गयी थी। तबसे लोकमें बहिश्चर्याके नामसे उसकी ख्याति हुई। वह त्रिलोक-विख्यात तीर्थ परमपवित्र और सब पापोंको हरनेवाला है। मनुष्य उस तीर्थमें स्नान तथा महेश्वरका दर्शन करके सब पापोंसे मुक्त होता और रुद्रके लोकमें जाता है। देवि ! जिस प्रकार शाप मिलनेके कारण उस नदीका जल सूख गया था, वह प्रसङ्ग बतलाता हूँ सुनो। जहाँ परमपवित्र महानदी साध्रमती गङ्गा और हस्तिमती नदीका संगम हुआ है, वहीं मुनिवर कौण्डिन्यने बड़ी भारी तपस्या आरम्भ की। इस प्रकार बहुत समयतक उन्होंने समस्त इन्द्रियोंके स्वामी शुद्ध-बुद्ध भगवान् नारायणकी आराधना की। एक समय दैवयोगसे वर्षकाल उपस्थित हुआ। नदी जलसे भर गयी। तब कौण्डिन्य ऋषिने उस स्थानको छोड़ दिया। किन्तु रातमें नदीकी बाढ़के कारण उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। वे चिन्तित होकर सोचने लगे—‘अब क्या करना चाहिये ?’ उनका आश्रम दिव्य शोभासे सम्पन्न और महान् था। किन्तु जलके वेगसे वह हस्तिमती नदीमें बह गया। उनके पास जो बहुत-से फल-मूल और पुस्तकें थीं, वे भी नदीमें बह गयीं। तब मुनिश्रेष्ठ कौण्डिन्यने उस नदीको शाप दिया—‘अरी ! तू कलियुगमें बिना जलकी हो जायगी।’ पार्वती ! इस प्रकार हस्तिमतीको शाप देकर विप्रवर कौण्डिन्य सनातन विष्णुधामको चले

गये। आज भी वह संगमेश्वर नामक तीर्थ मौजूद है, जिसका दर्शन करके पापी मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पातकसे मुक्त हो जाता है।

देवेश्वरि ! वहाँसे तीर्थयात्री मनुष्य रुद्रमहालय नामक तीर्थकी यात्रा करे। वह केदार तीर्थके समान अनुपम है। साक्षात् रुद्रने उसका निर्माण किया है। वहाँ अवश्य श्राद्ध करना चाहिये; क्योंकि वह पितरोंकी पूर्ण तृप्तिका कारण होता है। उस तीर्थमें श्राद्ध करनेसे पितर और पितामह तृप्त हो रुद्रके परमपदको प्राप्त होते हैं। जो रुद्रमहालय तीर्थमें कार्तिक एवं वैशाखकी पूर्णिमाको वृषोत्सर्ग करता है, वह रुद्रके साथ आनन्दका भागी होता है। केदार तीर्थमें जलपान करनेमें मनुष्यका पुनर्जन्म नहीं होता। वहाँ स्नान करनेमात्रसे वह मोक्षका भागी हो जाता है। देवि ! एक समय मैं साध्रमती नामक महागङ्गाका महत्व जानकर कैलास छोड़ यहाँ आया था और लोकहितके लिये यहाँ स्नान तथा जलपान करके इसे परम उत्तम तीर्थ बनाकर पुनः अपने कैलासधामको लैट गया। तबसे महालय परम पुण्यमय तीर्थ हो गया। संसारमें इसकी रुद्रमहालयके नामसे ख्याति हुई। देवि ! जो कार्तिक और वैशाखकी पूर्णिमाको यहाँकी यात्रा करते हैं, उन्हें फिर कभी संसार-जनित दुःखकी प्राप्ति नहीं होती।

पार्वती ! अब देवताओंके लिये भी दुर्लभ उत्तम तीर्थका वर्णन सुनो। वह खङ्गतीर्थके नामसे विख्यात और समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। खङ्गतीर्थमें स्नान करके खङ्गेश्वर शिवका दर्शन करनेसे मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता और अन्तमें स्वर्गलोकको जाता है। जो खङ्गधरेश्वर महादेवका दर्शन करता और कार्तिककी पूर्णिमाको उनकी विशेषरूपसे पूजा करता है, उसको ये सर्वेश्वर भगवान् विश्वनाथ सदा इस पृथ्वीपर सब प्रकारका सुख देते हैं; क्योंकि ये मनोवाज्ञित फल देनेवाले हैं।

साध्रमतीके तटपर चित्राङ्गदन नामक एक तीर्थ है, जो गयासे भी श्रेष्ठ है। उस शुभकारक तीर्थके अधिष्ठातृ देवता मालार्क नामके सूर्य हैं। जिसको कोढ़ हो गयी हो,

वह मनुष्य यदि उस तीर्थमें जाय तो भगवान् मालार्क उसकी कोढ़को दूर कर देते हैं। जो नारी शास्त्रोक्तविधिसे वहाँ अभिषेक करती है, वह मृतवत्सा हो या वन्ध्या, शीघ्र ही पुत्र प्राप्त करती है। उस तीर्थमें रविवारके दिन यदि स्नान, सन्ध्या, जप, होम, स्वाध्याय और देवपूजन किये जायें तो वे अक्षय हो जाते हैं। देवेश्वर ! वहाँ जाकर श्रीसूर्यका ब्रत करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य इस लोकमें सुख भोगकर सूर्यलोकको जाता है। जो उस तीर्थमें जाकर विशेषरूपसे उपवास करता और इन्द्रियोंको वशमें करके भगवान् मालार्कका पूजन करता है, वह निश्चय ही मोक्षका भागी होता है।

इस तीर्थके बाद दूसरे तीर्थमें जाय, जो मालार्कसे उत्तरमें स्थित है। उसका नाम है—चन्दनेश्वर तीर्थ। वह उत्तम स्थान सदा चन्दनकी सुगन्धसे सुवासित रहता है। वहाँ स्नान, जलपान और पितृतर्पण करनेसे मनुष्य कभी नरकमें नहीं पड़ता और रुद्रलोकको प्राप्त होता है। वहाँ जगत्का कल्याण करनेवाले विश्वके स्वामी भगवान् चन्दनेश्वरका दर्शन करके रुद्रलोककी इच्छा रखनेवाला पुरुष यथाशक्ति उनका पूजन करे। उस तीर्थमें कल्याण प्रदान करनेवाले साक्षात् परमात्मा श्रीविष्णु नित्य निवास करते हैं। धन्य है साध्रमती नदी और धन्य हैं विश्वके स्वामी भगवान् शिव एवं विष्णु !

वहाँसे पापनाशक जम्बूतीर्थमें स्नान करनेके लिये जाय। कलियुगमें वह तीर्थ मनुष्योंके लिये स्वर्गकी सीढ़ीके समान स्थित है। पूर्वकालमें जाम्बवानने वहाँ दशाङ्ग पर्वतपर अपने नामसे एक शिवलिङ्गकी स्थापना की थी। वहाँ स्नान करके मनुष्य तत्काल श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणका स्मरण करे तथा जाम्बवतेश्वर शिवको मस्तक झुकाये तो वह रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। देवि ! जहाँ-जहाँ श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण किया जाता है, वहाँ-वहाँ सम्पूर्ण चराचर जगत्में भव-बन्धनसे छुटकारा देखा जाता है। मुझे ही श्रीराम जानना चाहिये और श्रीराम ही रुद्र है—यों जानकर कहीं भेददृष्टि नहीं रखनी चाहिये। जो मन-ही-मन 'राम ! राम ! राम !' इस प्रकार जप किया करते हैं, उनके समस्त मनोरथोंकी

प्रत्येक युगमें सिद्धि हुआ करती है। देवि ! मैं सदा श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण किया करता हूँ। श्रीरामचन्द्रजीका नाम श्रवण करनेसे कभी भव-बन्धनकी प्राप्ति नहीं होती। पार्वती ! मैं काशीमें रहकर प्रतिदिन भक्तिपूर्वक कमल-नयन श्रीरघुनाथजीका निरन्तर स्मरण किया करता हूँ। जाम्बवानने पूर्वकालमें परम सुन्दर श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके जम्बूतीर्थमें जाम्बवत नामसे प्रसिद्ध शिवलिङ्गको स्थापित किया था। वहाँ स्नान, देवपूजन तथा भोजन करके मनुष्य शिवलोकको प्राप्त होता है और वहाँ चौदह इन्द्रोंकी आयुर्यन्त निवास करता है। वहाँसे इन्द्रग्राम नामक उत्तम तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ पूर्वकालमें स्नान करके इन्द्र घोर पापसे मुक्त हुए थे।

श्रीपार्वतीजीने पूछा—भगवन् ! इन्द्रको किस कर्मसे घोर पाप लगा था और किस प्रकार वे पापरहित हुए ! उस प्रसङ्गको विस्तारके साथ सुनाइये।

श्रीमहादेवजी बोले—देवि ! पूर्वकालमें देवराज इन्द्र और असुरोंके स्वामी नमुचिने परस्पर यह प्रतिशा की कि हम दोनों एक-दूसरेका बिना किसी शास्त्रकी सहायता लिये वध करें; परन्तु इन्द्रने आकाशवाणीके कथनानुसार जलका फेन लेकर उसीसे नमुचिको मार डाला। तब इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी। उन्होंने गुरुके पास जाकर अपने पापकी शान्तिका उपाय पूछा। फिर बृहस्पतिजीके आज्ञानुसार वे साध्रमती नदीके उत्तर तटपर आये और वहाँ उन्होंने स्नान किया। इससे उनका सारा पाप तत्काल दूर हो गया। शरीरमें पूर्ण चन्द्रमाके समान उज्ज्वल कान्ति छा गयी। तब इन्द्रने वहाँ धवलेश्वर नामक शिवकी स्थापना की।

वह शिवलिङ्ग इस पृथ्वीपर इन्द्रके ही नामसे प्रसिद्ध हुआ। वहाँ पूर्णिमा, अमावास्या, संक्रान्ति और ग्रहणके दिन श्राद्ध करनेपर पितरोंको बारह वर्षोंतक तृप्ति बनी रहती है। जो धवलेश्वरके पास जाकर ब्राह्मण-भोजन कराता है, उसके एक ब्राह्मणको भोजन करनेपर सहस्र ब्राह्मणोंको भोजन करनेका फल होता है। वहाँ अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्ण, भूमि और वस्त्रका दान करना चाहिये। ब्राह्मणको श्वेत रंगकी दूध देनेवाली गौ

बछड़ेसहित दान करनी चाहिये । जो ब्राह्मण यहाँ आकर रुद्रमन्त्रका जप आदि करता है, उसका शुभ कर्म वहाँ भगवान् शङ्करजीके प्रसादसे कोटिगुना फल देनेवाला होता है । जो मनुष्य उस तीर्थमें आकर उपवास आदि करता है, वह अपनी सम्पूर्ण कामनाओंको निस्सन्देह प्राप्त कर लेता है । जो बिल्वपत्र लाकर भगवान् ध्वलेश्वरकी पूजा करता है, वह मानव इस पृथ्वीपर धर्म, अर्थ और काम—तीनों प्राप्त करता है, विशेषतः सोमवारको जो श्रेष्ठ मनुष्य वहाँकी यात्रा करते हैं, उनके रोग-दोषको भगवान् ध्वलेश्वर शान्त कर देते हैं । जो सदा रविवारको उनका विशेषरूपसे पूजन करता है, उसकी महिमाका ज्ञान मुझे कभी नहीं हुआ । जो दूर्वादल, मदारके फूल, कहार-पुष्प तथा कोमल पत्तियोंसे श्रीध्वलेश्वरका पूजन करते हैं, वे मनुष्य पुण्यके भागी होते हैं । श्वेत मदारका

फूल लाकर उसके द्वारा ध्वलेश्वरकी पूजा करके उन्होंके प्रसादसे मनुष्य सदा मनोवाञ्छित फल पाता है । सत्ययुगमें भगवान् नीलकण्ठके नामसे प्रसिद्ध होकर सबका कल्याण करते थे । फिर त्रेतायुगमें वे भगवान् हरके नामसे विख्यात हुए, द्वापरमें उनकी शर्व संज्ञा होती है और कलियुगमें वे ध्वलेश्वर नामसे प्रसिद्ध होते हैं । जो श्रेष्ठ मानव यहाँ स्नान और दान करते हैं, वे धर्म, अर्थ और कामका उपभोग करके शिवधामको जाते हैं । चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण तथा पिताकी वार्षिक तिथिको श्राद्ध करनेसे जो फल मिलता है, उसे ध्वलेश्वर तीर्थमें मनुष्य अनायास ही प्राप्त कर लेता है । देवि ! ध्वलेश्वरमें कालसे प्रेरित होकर सदा ही जो प्राणी मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे जबतक सूर्य और चन्द्रमा हैं तबतक शिवधाममें निवास करते हैं ।



साभ्रमती-तटके बालार्क, दुर्धर्षेश्वर तथा खड्गधार आदि तीर्थोंकी महिमाका वर्णन

श्रीमहादेवजी कहते हैं—साभ्रमतीके तटपर बालार्क नामका श्रेष्ठ तीर्थ है, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है । मनुष्य उस बालार्कतीर्थमें स्नान करके पवित्रतापूर्वक तीन रात निवास करे और सूर्योदयके समय बाल-सूर्यके मुखका दर्शन करे । ऐसा करनेसे वह निश्चय ही सूर्यलोकको प्राप्त होता है । रविवार, संक्रान्ति, सप्तमी तिथि, विषुव योग, अयनके आरम्भ-दिवस, चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहणके दिन स्नान करके देवताओं, पितरों और पितामहोंका तर्पण करे । फिर ब्राह्मणोंको गुडमयी धेनु और गुड-भात दान करे । तत्पश्चात् कनेर और जपाके फूलोंसे बाल-सूर्यका पूजन करना चाहिये । जो मनुष्य ऐसा करते हैं, वे सूर्यलोकमें निवास करते हैं । जो मानव वहाँ दूध देनेवाली लाल गौ तथा बोझ ढोनेमें समर्थ एक बैल दान करता है, वह यज्ञका फल पाता है और कभी भी नरकमें नहीं पड़ता । इतना ही नहीं, यदि वह रोगी हो तो रोगसे और कैदी हो तो बन्धनसे मुक्त हो जाता है । इस तीर्थमें पिण्डदान करनेसे पितामहगण पूर्ण तृप्त होते हैं ।

पूर्वकालकी बात है, एक बुद्ध भैंसा, जो वृद्धावस्थाके कारण जर्जर हो रहा था, बोझ ढोनेमें असमर्थ हो गया । यह देख व्यापारीने उसको रास्तेमें ही त्याग दिया । गर्मीका महीना था, वह पानी पीनेके लिये महानदी साभ्रमतीके तटपर आया । दैववश वह भैंसा कीचड़में फँस गया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी । नदीके पवित्र जलमें उसकी हड्डियाँ बह गयीं । उस तीर्थके प्रभावसे वह भैंसा कान्यकुञ्ज देशके राजाका पुत्र हुआ । क्रमशः बड़े होनेपर उंसे राज्यसिंहासनपर बिठाया गया । उसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण बना रहा । वहाँ अपने पूर्व वृत्तान्तको याद करके उस तीर्थके प्रभावका विचार कर वह राजा उक्त तीर्थमें आया और वहाँके जलमें स्नान करके उसने अनेक प्रकारके दान किये । साथ ही उस तीर्थमें राजाने देवाधिदेव महेश्वरकी स्थापना की । वहाँ स्नान करके महिषेश्वरका पूजन तथा बाल-सूर्यके मुखका दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । यों तो समूची साभ्रमती नदी ही परम पवित्र है, किन्तु बालार्कक्षेत्रमें उसकी पावनता विशेष बढ़ गयी है ।

उसका नामोच्चारणमात्रसे मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे भी छुटकारा पा जाता है। साध्रमती नदीका जल जहाँ पूर्वसे पश्चिमकी ओर बहता है, वह स्थान प्रयागसे भी अधिक पवित्र, समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला और महान् है। वहाँ ब्राह्मणोंको दिया हुआ गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, वस्त्र, अन्न, शास्या, भोजन, वाहन और छत्र आदिका दान, अग्रिमें किया हुआ हवन, पितरोंके लिये किया गया श्राद्ध तथा जप आदि कर्म अक्षय हो जाता है। उस तीर्थमें मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी कामना करता है, वह-वह उसे महेश्वरकी कृपा तथा तीर्थके प्रभावसे प्राप्त होती है।

अब दुर्धिंश्वर नामक एक दूसरे उत्तम तीर्थका वर्णन करता हूँ। उसके स्मरण करनेमात्रसे पापी भी पुण्यवान् हो जाता है। देवासुर-संग्रामकी समाप्ति और दैत्योंका संहार हो जानेपर भूगुनन्दन शुक्राचार्यने वहाँ कठोर व्रतका पालन करके लोक-सृष्टिके कारणभूत दुर्धर्ष देवतां महादेवजीकी समाराधना की और उनसे दैत्योंके जीवनके लिये मृतसंजीवनी विद्या प्राप्त की। तबसे यह तीर्थ भूमण्डलमें उन्हींके नामपर विख्यात हुआ। काव्यतीर्थमें स्नान करके दुर्धिंश्वर नामक महादेवका पूजन करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है।

साध्रमती नदीके तटपर खड्गधार नामसे विख्यात एक परम पावन तीर्थ है, जो अब गुप्त हो गया है और जहाँ प्रसङ्गवश भी कभी अचानक स्नान और जलपान कर लेनेपर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वहाँ कर्यपके पीछे जाती हुई पवित्र साध्रमती नदीको पातालकी ओर जाते देख रुद्रने उसे अपने जटाजूटमें धारण कर लिया तथा वे रुद्र खड्गधार नामसे विख्यात होकर वहाँ रहने लगे। देवेश्वर! वहाँ स्नान करनेसे पापी भी स्वर्गमें चले जाते हैं। पार्वती! माघमें, वैशाखमें तथा विशेषतः कार्तिककी पूर्णिमाको जो वहाँ स्नान करते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं। वसिष्ठ, वामदेव, भारद्वाज और गौतम आदि ऋषि वहाँ स्नान तथा भगवान् शिवका दर्शन करनेके लिये आया करते

हैं। यदि मनुष्य मेरे स्थानपर जाकर विशेषरूपसे मेरा पूजन करता है तो उसका सारा पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। जो इस तीर्थमें मेरी मिट्टीकी मूर्ति बनाकर पूजते हैं, वे मेरे परमधाममें निवास करते हैं। मेरा विग्रह कलियुगमें खड्गधारेश्वरके नामसे विख्यात होता है। सत्ययुगमें मैं 'मन्दिर' कहलाता हूँ और त्रेतामें 'गौरव'। द्वापरमें मेरा 'विश्वविख्यात' नाम होता है और कलियुगमें 'खड्गेश्वर' या 'खड्गधारेश्वर'। इस तीर्थके दक्षिण भागमें मेरा स्थान है—यह जानकर जो विद्वान् वहाँ मेरी मूर्ति बनाता और नित्य उसकी पूजा करता है, उसे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है। वह मानव धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको प्राप्त कर लेता है। देवेश्वर! जो लोग लोकनाथ महेश्वरको धूप, दीप, नैवेद्य तथा चन्दन आदि अर्पण करते हैं, उन्हें कभी दुःख नहीं होता।

खड्गधार तीर्थसे दक्षिणकी ओर परम पावन दुर्घेश्वर तीर्थ बताया गया है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। उस तीर्थमें स्नान करके दुर्घेश्वर शिवका दर्शन करनेपर मनुष्य पापजनित दुःखसे तत्काल छुटकारा पा जाता है। साध्रमतीके सुन्दर तटपर जहाँ परम पुण्यमयी चन्द्रभागा नदी आकर मिली है, महर्षि दधीचिने भारी तपस्या की थी। वहाँ किये हुए स्नान, दान, जप, पूजा और तप आदि समस्त शुभ कर्म दुधतीर्थके प्रभावसे अक्षय होते हैं।

दुर्घेश्वर तीर्थसे पूर्वकी ओर एक परम पावन तीर्थ है, जहाँ साध्रमतीमें चन्द्रभागा नदी मिली है। वहाँ पुण्यदाता चन्द्रेश्वर नामक महादेवजी नित्य विराजमान रहते हैं। जो सम्पूर्ण लोकोंको सुख देनेवाले, परम महान् और सर्वत्र व्यापक हैं, वे ही भगवान् 'हर' वहाँ निवास करते हैं। उस तीर्थमें चन्द्रमाने दीर्घकालतक तप किया था और उन्होंने ही चन्द्रेश्वर नामक महादेवकी स्थापना की थी। वहाँ स्नान, जलपान और शिवकी पूजा करनेवाले मनुष्य धर्म और अर्थ प्राप्त करते हैं। जो लोग वहाँ विशेषरूपसे वृषोत्सर्ग आदि कर्म करते हैं, वे पहले स्वर्ग भोगकर पीछे शिवधामको जाते हैं। जो दूसरे तटपर जाकर समस्त पापोंका नाश करनेवाले चन्द्रेश्वर नामक

शिवकी अर्चना करते हैं तथा विशेषतः रुद्रके मन्त्रोंका जप करते हैं, उन्हें शिवका स्वरूप समझना चाहिये। देवि ! जो यहाँ सर्वदा स्नान करते हैं, उन मनुष्योंको निस्सन्देह विष्णुस्वरूप जानना चाहिये। जो तिलपिण्डसे यहाँ श्राद्ध करते हैं, वे भी उसके प्रभावसे विष्णुधामको जाते हैं। यहाँ विधिपूर्वक स्नान और दान करना चाहिये। स्नान करनेपर ब्रह्महत्या आदि पापोंसे भी छुटकारा मिल जाता है। इस तटपर जो विशेषरूपसे बटका वृक्ष लगाते हैं, वे मृत्युके पश्चात् शिवपदको प्राप्त होते हैं।

दुर्गेश्वरके समीप एक अत्यन्त पावन तथा रमणीय तीर्थ है, जो इस पृथ्वीपर पिप्पलादके नामसे प्रसिद्ध है। देवेश्वरि ! वहाँ स्नान और जलपान करनेसे ब्रह्महत्याका पाप दूर हो जाता है। साभ्रमतीके तटपर पिप्पलाद तीर्थ गुप्त है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य मोक्षका भागी होता है। वहाँ विधिपूर्वक पीपलका वृक्ष लगाना चाहिये। ऐसा करनेपर मनुष्य कर्म-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। पिप्पलाद तीर्थसे आगे साभ्रमतीके तटपर निर्मार्क नामक उत्तम तीर्थ है, जो व्याधि तथा दुर्गन्धका नाश करनेवाला है। पूर्वकालमें कोलाहल दैत्यके साथ युद्धमें दानवोंके द्वारा परास्त होकर देवतालोग सूक्ष्म-शरीर धारण करके प्राणरक्षाके लिये यहाँ वृक्षोंमें समा गये थे। वहाँ जानेपर विशेषरूपसे भगवान् सूर्यका पूजन करना चाहिये। पार्वती ! सूर्यके पूजनसे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य इस तीर्थमें जाकर सूर्यके बारह नामोंका पाठ करते हैं, वे जीवनभर पुण्यात्मा बने रहते हैं। वे नाम इस प्रकार हैं—आदित्य, भास्कर, भानु, रवि, विश्वप्रकाशक, तीक्ष्णांशु, मार्त्तिष्ठ, सूर्य, प्रभाकर, विभावसु, सहस्राक्ष तथा पूषा।* पार्वती ! जो विद्वान् एकाग्रचित्त होकर इन बारह नामोंका पाठ करता है, वह धन, पुत्र और पौत्र प्राप्त करता है। जो मनुष्य इनमेंसे एक-एक नामका उच्चारण करके सूर्यदेवका पूजन करता है, वह ब्राह्मण हो तो सात जन्मोंतक धनाद्य एवं वेदोंका

पारगामी होता है। क्षत्रिय हो तो राज्य, वैश्य हो तो धन और शूद्र हो तो भक्ति पाता है। इसलिये उपर्युक्त नाममय उत्तम सूक्तका जप करना चाहिये।

पार्वती ! निर्मार्क तीर्थसे बहुत दूर जानेपर परम उत्तम सिद्धक्षेत्र आता है।

उपर्युक्त तीर्थके बाद तीर्थराज नामसे विख्यात एक उत्तम तीर्थ है, जहाँ सात नदियाँ बहती हैं। अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा यहाँके स्नानमें सौगुनी विशेषता है। यहाँ देवताओंमें श्रेष्ठ साक्षात् भगवान् वामन विराजमान हैं। जो माघ मासकी द्वादशीको तिलकी धेनुका दान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। यदि मनुष्य शुद्धचित्त होकर यहाँ केवल तिलमिश्रित जल भी पितरोंको अर्पण करे तो उसके द्वारा हजार वर्षोंतकके लिये श्राद्ध-कर्म सम्पन्न हो जाता है। इस रहस्यको साक्षात् पितर ही बतलाते हैं। जो इस तीर्थमें ब्राह्मणोंको गुड़ और खीर भोजन कराते हैं, उनको एक-एक ब्राह्मणके भोजन करनेपर सहस्र-सहस्र ब्राह्मणोंको भोजन करनेका फल मिलता है।

तदनन्तर, साभ्रमतीके तटपर गुप्तरूपसे स्थित सोमतीर्थकी यात्रा करे, जहाँ कालाग्निस्वरूप भगवान् शिव पातालसे निकलकर प्रकट हुए थे। सोमतीर्थमें स्नान करके सोमेश्वर शिवका दर्शन करनेसे निःसन्देह सोमपानका फल प्राप्त होता है। वहाँ स्नान करनेवाला पुरुष परलोकमें कल्याण प्राप्त करता है। जो सोमवारके दिन भगवान् सोमेश्वरके मन्दिरमें दर्शनके लिये जाता है, वह सोमलिङ्गकी कृपासे मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है। जो श्वेत रंगके फूलोंसे, कनेरके पुष्पोंसे तथा परिजातके प्रसूनोंसे पिनाकधारी श्रीमहादेवजीकी पूजा करते हैं, वे परम उत्तम शिवधामको प्राप्त होते हैं।

वहाँसे कापोतिक तीर्थकी यात्रा करे, जहाँ साभ्रमतीका जल पश्चिमसे पूर्वकी ओर बहता है। जो मनुष्य पितृ-तर्पणपूर्वक वहाँ पिण्डदान करता है तथा

* आदित्यं भास्करं भानुं रविं विश्वप्रकाशकम्। तीक्ष्णांशुं चैव मार्त्तिष्ठं सूर्यं चैव प्रभाकरम्॥

विभावसुं सहस्राक्षं तथा पूषणमेव च।॥ (१५१।९-१०)

प्रत्येक पर्वपर वनके फूलों और फलोंसे कौवे तथा कुत्ते आदिको बलि अर्पण करता है, वह यमराजके मार्गको सुखपूर्वक लाँघ जाता है। जो वैशाखकी पूर्णिमाको उस तीर्थमें स्नान करके पीली सरसोंसे परम उत्तम प्राचीनेश्वर नामक शिवकी पूजा करता है, वह अपनेको तो तारता ही है, अपने पितरों और पितामहोंका भी उद्धार कर देता है। यह वही स्थान है, जहाँ एक कबूतरने अपने अतिथिको प्रसन्नतापूर्वक अपना शरीर दे दिया था और विमानपर बैठकर सम्पूर्ण देवताओंके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनता हुआ वह स्वर्गलोकमें गया था। तभीसे वह तीर्थ कापोत तीर्थके नामसे विख्यात हुआ। वहाँ स्नान और जलपान करनेसे मनुष्यकी ब्रह्महत्या दूर हो जाती है।

अतः देवि ! उस तीर्थमें जानेपर सदा ही अतिथिका पूजन करना चाहिये। अतिथिका पूजन करनेपर वहाँ निश्चय ही सब कुछ प्राप्त होता है।

वहाँसे आगे काश्यप हृदके समीप गोतीर्थ है, जो सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ और महापातकोंका नाश करनेवाला है। ब्रह्महत्याके समान भी जो कोई पाप है, वे गोतीर्थमें स्नान करनेसे निस्सन्देह नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य वहाँ स्नान करके गौओंको एक दिनका भोजन देता है, वह गो-माताओंके प्रसादसे मातृ-ऋणसे मुक्त हो जाता है। जो गोतीर्थमें जानेपर स्नान करके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दूध देनेवाली गौ दान करता है, वह ब्रह्मपदको प्राप्त होता है।

यहाँ एक दूसरा भी महान् तीर्थ है, जो काश्यप कुण्डके नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ कुशेश्वर नामक महादेवजी विराजते हैं। उनके पास ही कश्यपजीका बनवाया हुआ सुन्दर कुण्ड है। उसमें स्नान करनेसे मनुष्य कभी नरकमें नहीं पड़ता। महादेवि ! काश्यपके तटपर नित्य अग्निहोत्र करनेवाले तथा वेदोंके स्वाध्यायमें तत्पर रहनेवाले अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता ब्राह्मण निवास करते हैं। जैसा काशीका माहात्म्य है, वैसा ही इस क्षणिनिर्मित नगरीका भी है। महर्षि कश्यपने यहाँ रहकर बड़ी भारी तपस्या की है तथा वे भगवान् शंकरकी जटासे प्रकट होनेवाली गङ्गाको यहाँ ले आये हैं। यह काश्यपी

गङ्गा बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाली है। उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य घोर पापसे छुटकारा पा जाते हैं। वहाँ गो-दान और रथ-दानकी प्रशंसा की जाती है। उस तीर्थमें श्राद्ध करके यत्पूर्वक दान देना चाहिये। भयंकर कलियुगमें वह तीर्थ महापातकोंका नाश करनेवाला है। वहाँसे भूताल्य तीर्थमें जाना चाहिये, जो पापोंका अपहरण करनेवाला और उत्तम तीर्थ है। वहाँ भूतोंका निवासभूत वटका वृक्ष है और पूर्ववाहिनी चन्दना नदी है। भूताल्यमें स्नान करके भूतोंके निवासभूत वटका दर्शन करनेपर भगवान् भूतेश्वरके प्रसादसे मनुष्यको कभी भय नहीं प्राप्त होता। वहाँसे आगे घटेश्वर नामका उत्तम तीर्थ है, जहाँ स्नान और दर्शन करनेसे मानव निश्चय ही मोक्षका भागी होता है। वहाँ जाकर जो विशेषरूपसे पाकरकी पूजा करता है, वह इस पृथ्वीपर मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त करता है।

वहाँसे मनुष्य भक्तिपूर्वक वैद्यनाथ नामक तीर्थमें जाय और उसमें स्नान करके शिवजीकी पूजा करे। वहाँ विधिपूर्वक पितरोंका तर्पण करनेसे सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। वहाँ देवताओंसे प्रकट हुआ विजय तीर्थ है, जिसका दर्शन करनेसे मनुष्य सदा भाँति-भाँतिके मनोवाञ्छित भोग प्राप्त करते हैं। वैद्यनाथ तीर्थसे आगे तीर्थोंमें उत्तम देवतीर्थ है, जो सब प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाला है। वहाँ धर्मपुत्र युधिष्ठिरने राक्षसराज विभीषणसे कर लेकर राजसूय नामक महान् यज्ञ आरम्भ किया था। पाण्डुपुत्र नकुलने दक्षिण दिशापर विजय पानेके बाद साध्रमती नदीके तटपर बड़ी भक्तिके साथ पाण्डुरार्था नामसे विख्यात देवीकी स्थापना की थी, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। साध्रमतीके जलमें स्नान करके पाण्डुरार्थाको नमस्कार करनेवाला मनुष्य अणिमा आदि आठ सिद्धियों तथा प्रचुर मेधाशक्तिको प्राप्त करता है। यदि मानव शुद्धभावसे पाण्डुरार्थाको नमस्कार कर ले तो उसके द्वारा एक वर्षतककी पूजा सम्पन्न हो गयी—ऐसा जानना चाहिये। देवतीर्थमें पाण्डुरार्थाके समीप जिसकी मृत्यु होती है, वह कैलास-शिखरपर पहुँचकर भगवान् चन्द्रेश्वरका गण होता है।

उस तीर्थसे आगे चण्डेश नामका उत्तम तीर्थ है, जहाँ सबको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले भगवान् चण्डेश्वर नित्य निवास करते हैं। उनका दर्शन करनेसे मनुष्य अनजानमें अथवा जान-बूझकर किये हुए पापसे छुटकारा पा जाता है। सम्पूर्ण देवताओंने मिलकर एक नगरका निर्माण किया, जो भगवान् चण्डेश्वरके नामसे ही विख्यात है। वहाँसे आगे गणपति-तीर्थ है, जो बहुत ही उत्तम है। वह साध्रमतीके समीप ही विख्यात है। वहाँ उत्तम है।

स्नान करनेसे मनुष्य निस्सन्देह मुक्त हो जाता है। साध्रमतीके पावन तटपर लोगोंकी कल्याण-कामनासे पृथ्वीके अन्य सब तीर्थोंका परित्याग करके जो भगवान् रुद्रमें भक्ति रखता हुआ जितेन्द्रिय भावसे श्राद्ध करता है, वह शुद्धचित्त होकर सब यज्ञोंका फल पाता है। उस तीर्थमें स्नान करके ब्राह्मणको वृषभ दान करना चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष सब लोकोंको लाँघकर परम गतिको प्राप्त होता है।



वार्त्रज्ञी आदि तीर्थोंकी महिमा

श्रीमहादेवजी कहते हैं—महादेवि ! तदनन्तर उस तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ परम साध्वी गिरिकन्या वार्त्रज्ञीके साथ इन्द्रका समागम हुआ था। जो मनुष्य अपने मनको संयममें रखते हुए वहाँ स्नान करते हैं, उन्हें दस अक्षमेघ-यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। जो पुरुष वहाँ तिलके चूर्णसे पिण्ड बनाकर श्राद्ध करता है, वह अपनेसे पहलेकी सात और बादकी सात पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। संगममें विधिपूर्वक स्नान करके गणेशजीका भलीभाँति पूजन करनेवाला मनुष्य कभी विघ्न-बाधाओंसे आक्रान्त नहीं होता और लक्ष्मी भी कभी उसका त्याग नहीं करती।

पूर्वकालमें वृत्रासुर और इन्द्रमें रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ था, जो लंगातार ग्यारह हजार वर्षोंतक चलता रहा। उसमें इन्द्रकी पराजय हुई और वे वृत्रासुरसे पुनः लौटनेकी शर्त करके युद्ध छोड़कर मेरी शरणमें आये। उन्होंने वार्त्रज्ञीके पवित्र संगमपर आराधनाके द्वारा मुझे सन्तुष्ट किया। तब मैंने आकाशमें प्रकट होकर उन्हें दर्शन दिया। उस समय काश्यपी गङ्गाके तटपर मेरे शरीरसे कुछ भस्म झड़कर गिया, जिससे एक पवित्र लिङ्ग प्रकट हो गया। उस शिवलिङ्गकी 'भस्मगात्र' नामसे प्रसिद्ध हुई। तब मैंने प्रसन्न होकर महात्मा इन्द्रसे कहा—‘देव ! तुम जो-जो चाहते हो, वह सब तुम्हें देंगा। इस वज्रकी सहायतासे तुम शीघ्र ही वृत्रासुरका वध करोगे।’

इन्द्रने कहा—भगवन् ! आपकी कृपासे उस दुर्धर्ष दैत्यको आपके देखते-देखते ही इस वज्रसे मारूँगा।



पार्वती ! यों कहकर इन्द्र पुनः वृत्रासुरके पास गये। उस समय देवताओंकी सेनामें दुन्दुभि बज उठी। एक ही क्षणमें इन्द्र प्रबल शक्तिसे सम्पन्न हो गये। युद्धकी इच्छासे वृत्रासुरके पास जाते हुए इन्द्रका रूप अत्यन्त तेजस्वी दिखायी देता था। महर्षिगण उनकी

स्तुति कर रहे थे। उधर युद्धके मुहानेपर खड़े हुए वृत्तासुरके शरीरमें जो सहसा पराजयके चिह्न प्रकट हुए, उनका वर्णन करता हूँ: सुनो। वृत्तासुरका मुख अत्यन्त भयानक और जलता हुआ-सा प्रतीत होने लगा। उसके शरीरका तेज फीका पड़ गया। सारे अङ्ग काँपने लगे। जोर-जोरसे गरम साँस चलने लगी। वृत्तासुरके रोगटे खड़े हो गये। उसके उच्छ्वासकी गति अत्यन्त तीव्र हो गयी। आकशसे महाभयानक उल्कापात हुआ। उस दैत्यके पास गिर्द, बाज और कङ्क आदि पक्षी आकर अत्यन्त कठोर शब्द करने लगे। वे सब वृत्तासुरके ऊपर मण्डल बनाकर घूमने लगे। इतनेमें ही इन्द्र ऐरवत हाथीपर चढ़कर वहाँ आये। उनके उठे हुए हाथमें वज्र शोभा पा रहा था। इन्द्र ज्यों ही दैत्यके समीप पहुँचे, उसने अमानुषिक गर्जना की और वह उनके ऊपर टूट पड़ा। वृत्तासुरको अपनी ओर आते देख इन्द्रने उसके ऊपर वज्रका प्रहार किया और उस दैत्यको समुद्रके तटपर मार गिराया। उस समय इन्द्रके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा होने लगी। उस भयङ्कर दानवराजका



वथ करके अमरोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए इन्द्रने

देवलोककी राजधानीमें प्रवेश किया।

तदनन्तर अत्यन्त भयङ्कर ब्रह्महत्या रौद्ररूप धारण किये वृत्रके शरीरसे निकली और इन्द्रको ढूँढ़ने लगी। उसने दौड़कर महातेजस्वी इन्द्रका पीछा किया और जब वे दिखायी दिये, तब उसने उनका गला पकड़ लिया। इन्द्रको ब्रह्महत्या लग गयी। वे किसी तरह उसे हटानेमें समर्थ न हो सके। उसी दशामें ब्रह्माजीके पास जाकर उन्होंने मस्तक झुकाया। इन्द्रको ब्रह्महत्यासे गृहीत



जानकर ब्रह्माजीने उसका स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही ब्रह्महत्या ब्रह्माजीके पास उपस्थित हुई।

ब्रह्माजीने कहा—देवि ! मेरा प्रिय कार्य करो। देवराज इन्द्रको छोड़ दो। बताओ, तुम क्या चाहती हो ? मैं तुम्हारी कौन-सी इच्छा पूर्ण करूँ ?

ब्रह्महत्या बोली—सुरश्रेष्ठ ! मैं आपकी आज्ञा मानकर इन्द्रके शरीरसे अलग हो जाऊँगी, किन्तु देवदेव ! मुझे कोई दूसरा निवासस्थान दीजिये। आपको नमस्कार है। भगवन् ! आपने ही तो लोकरक्षाके लिये यह मर्यादा बनायी है।

तब ब्रह्माजीने ब्रह्महत्यासे 'तथास्तु', कहकर इन्द्रकी

हत्या दूर करनेके उपायपर विचार किया । उन्होने अग्नि-
देवको बुलाकर कहा—‘अग्ने ! तुम इन्द्रकी ब्रह्महत्याका
चौथाई भाग ग्रहण करो ।’



अग्निने कहा—प्रभो ! इस ब्रह्महत्याके दोषसे
मेरे छूटनेका क्या उपाय है ?

ब्रह्माजी बोले—अग्ने ! जो तुम्हें प्रज्वलित रूपमें
पाकर कभी बीज, ओषधि, तिल, फल, मूल, समिधा
और कुश आदिके द्वारा तुममें आहुति नहीं डालेगा, उस
समय ब्रह्महत्या तुम्हें छोड़कर उसीमें प्रवेश कर जायगी ।

यह सुनकर अग्निने ब्रह्माजीकी आज्ञा शिरोधार्य
की । तत्पश्चात् पितामहने वृक्ष, ओषधि और तृण
आदिको बुलाकर उनके सामने भी यही प्रस्ताव रखा ।
यह बात सुनकर उन्हें भी अग्निकी ही भाँति कष्ट हुआ;
अतः वे ब्रह्माजीसे इस प्रकार बोले—‘पितामह ! हमारी
ब्रह्महत्याका अन्त कैसे होगा ?’

ब्रह्माजीने कहा—जो मनुष्य महान् मोहके
वशीभूत होकर अकारण तुम्हें काटे या चीरा, ब्रह्महत्या
उसीको लग जायगी ।

तब ओषधि और तृण आदिने ‘हाँ’ कहकर अपनी

स्वीकृति दे दी । फिर लोकपितामह ब्रह्माजीने अप्सराओंको



बुलाकर मधुर वाणीमें उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—
‘अप्सराओ ! यह ब्रह्महत्या वृत्रासुरके शरीरसे आयी है;
इसके चौथे भागको तुमलोग ग्रहण करो ।’

अप्सराएँ बोलीं—देवेश्वर ! आपकी आज्ञासे
हम इसे ग्रहण करनेको तैयार हैं; परन्तु हमारे उद्धारका
कोई उपाय भी आपको सोचना चाहिये ।

ब्रह्माजीने कहा—जो रजस्वला खीसे मैथुन
करेगा, उसीके अंदर यह तुरंत चली जायगी ।

‘बहुत अच्छा’ कहकर अप्सराओंने हार्दिक
प्रसन्नता प्रकट की और अपने-अपने स्थानपर जाकर वे
विहार करने लगीं । तदनन्तर लोकविधाता ब्रह्माजीने
जलका स्मरण किया । जब जल उपस्थित हुआ, तब
ब्रह्माजीने कहा—‘यह भयानक ब्रह्महत्या वृत्रासुरके
शरीरसे निकलकर इन्द्रके ऊपर आयी है । इसका चौथा
भाग तुम ग्रहण करो ।’

जलने कहा—लोकेश्वर ! आप हमें जो आज्ञा
देते हैं, वही होगा; परन्तु हमारे उद्धारके उपायका भी
विचार कीजिये ।

ब्रह्माजी बोले—जो मनुष्य अज्ञानसे मोहित होकर तुम्हारे भीतर थूक या मल-मूत्र डालेगा, उसीके भीतर यह शीघ्र चली जायगी और वहाँ निवास करेगी। इससे तुम्हें छुटकारा मिल जायगा।

श्रीमहादेवजी कहते हैं—सुरेश्वर! इस प्रकार ब्रह्माजीकी आज्ञासे वह ब्रह्महत्या देवराज इन्द्रको छोड़कर चली गयी। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। पूर्वकालमें इन्द्रको इसी प्रकार ब्रह्महत्या प्राप्त हुई थी। इस वार्त्रघ्नी तीर्थमें तपस्या करके शुद्धचित्त होकर वे स्वर्गमें गये थे। पार्वती! साभ्रमतीके तीर्थोंमें 'वार्त्रघ्नी' का ऐसा ही माहात्म्य है।

वार्त्रघ्नी-संगमसे आगे जानेपर देवनदी साभ्रमती भद्रानदीके साथ-साथ वरुणके निवासभूत समुद्रमें जा मिली है। समुद्र भी साभ्रमतीके अनुरागसे उसका प्रिय करनेके लिये आगे बढ़ आया है और उसके प्रिय-मिलनको उसने अझीकार किया है। भद्रानदी पूर्वकालमें सुभद्राकी सखी थी। उसने मार्गमें मूर्तिमती साक्षात् लक्ष्मीकी भाँति प्रकट होकर साभ्रमती गङ्गाकी सहायता की। उन दोनों नदियोंका पवित्र संगम समुद्रके उत्तर-तटपर हुआ है। उस तीर्थमें स्नान करके जो भगवान् महावराहको नमस्कार करता और स्वच्छ जलका दान करता है, वह वरुणलोकको प्राप्त होता है। उसी मार्गसे वराहरूपधारी भगवान् विष्णुने समुद्रमें प्रवेश करके देवताओंके वैरी सम्पूर्ण दानवोंपर विजय पायी थी। भगवान् जो वाराहका रूप धारण किया था, उसका उद्देश्य देवताओंका कार्य सिद्ध करना ही था। वह रूप धारण करके वे समुद्रमें जा घुसे और पृथ्वीदेवीको अपनी दाढ़ोंपर रखकर कर्दमालयमें आ निकले; इससे वहाँ वाराहतीर्थके नामसे एक महान् तीर्थ बन गया। जो मनुष्य वहाँ स्नान करता है, वह निश्चय ही मोक्षका भागी होता है। यहाँ पितरोंकी मुक्तिके लिये श्राद्ध करना चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष पितरोंके साथ ही मुक्त होकर अत्यन्त सुखद लोकमें जाता है।

वाराहतीर्थसे आगे संगम नामक तीर्थ है, जहाँ साभ्रमती गङ्गा समुद्रसे मिली है। वहाँ विधिपूर्वक स्नान

और दान करना चाहिये। इस तीर्थमें स्नान करनेसे महापातकी भी मुक्त हो जाते हैं। स्वजनोंका हित चाहनेवाले पुरुषोंको वहाँ श्राद्धका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। वहाँ श्राद्ध करनेसे मनुष्य निश्चय ही पितृलोकमें निवास करता है। जहाँ समुद्रसे साभ्रमती गङ्गाका नित्य संगम हुआ है, उस स्थानपर ब्रह्महत्यारा भी मुक्त हो जाता है। फिर अन्य पापोंसे युक्त मनुष्योंके लिये तो कहना ही क्या है। मन्दबुद्धि लोग जहाँ तीर्थ नहीं जानते, वहाँ मेरे नामसे उत्तम तीर्थकी स्थापना कर लेनी चाहिये।

संगमके पास ही आदित्य नामक उत्तम तीर्थ है, जो सम्पूर्ण विश्वमें विख्यात है। उसका दर्शन अवश्य करना चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे पुष्करमें स्नान करनेका फल होता है। मदार और कनेरके फूलोंसे भगवान् सूर्यका पूजन, श्राद्ध तथा दान करना चाहिये। यह आदित्यतीर्थ परम पवित्र और पापोंका नाशक है। महापातकी मनुष्योंको भी यह पुण्य प्रदान करनेवाला है। उस तीर्थके बाद नीलकण्ठ नामका एक उत्तम तीर्थ है। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको उसका दर्शन अवश्य करना चाहिये। पार्वती! जो मनुष्य बिल्वपत्र तथा धूप-दीपसे नीलकण्ठका पूजन करता है, उसे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है। जो निर्जन स्थानमें रहकर वहाँ उपवास करते हैं, वे लोग जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करते हैं, उसे वह तीर्थ प्रदान करता है।

पार्वती! जहाँ साभ्रमती नदी दुर्गासे मिली है तथा जहाँ उसका समुद्रसे संगम हुआ है, वहाँ स्नान करना चाहिये। जो कलियुगमें वहाँ स्नान करेंगे, वे निश्चय ही निष्पाप हो जायेंगे। दुर्गा-संगमपर श्राद्ध करना चाहिये। वहाँ जानेपर विशेषरूपसे ब्राह्मणोंको भोजन कराना और विधिपूर्वक गाय-भैंसका दान देना उचित है। यह साभ्रमती नदी पवित्र, पापोंका नाश करनेवाली और परम धन्य है। इसका दर्शन करके मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। पार्वती! साभ्रमती नदीको गङ्गाके समान ही जानना चाहिये। कलियुगमें वह विशेषरूपसे प्रचुर फल देनेवाली है।

श्रीनृसिंहचतुर्दशीके ब्रत तथा श्रीनृसिंहतीर्थकी महिमा

श्रीमहादेवजी कहते हैं—देवि ! सुनो, अब मैं तुम्हें त्रिलोकदुर्लभ ब्रतका वर्णन सुनाता हूँ, जिसके सुननेसे मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पातकोंसे मुक्त हो जाता है। स्वयंप्रकाश परमात्मा जब भक्तोंको सुख देनेके लिये अवतार ग्रहण करते हैं, वह तिथि और मास भी पुण्यके कारण बन जाते हैं। देवि ! जिनके नामका उच्चारण करनेवाला पुरुष सनातन मोक्षको प्राप्त होता है, वे परमात्मा कारणोंके भी कारण हैं। वे सम्पूर्ण विश्वके आत्मा, विश्वस्वरूप और सबके प्रभु हैं। जिन्होंने बारह सूर्योंको धारण कर रखा है, वे ही भगवान् भक्तोंका अभीष्ट सिद्ध करनेके लिये महात्मा नृसिंहके रूपमें प्रकट हुए थे।

देवि ! जब हिरण्यकशिपु नामक दैत्यका वध करके देवाधिदेव जगदगुरु भगवान् नृसिंह सुखपूर्वक विराजमान हुए, तब उनकी गोदमें बैठे हुए ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ प्रह्लादजीने उनसे इस प्रकार प्रश्न किया—‘सर्वव्यापी भगवान् नारायण ! नृसिंहका अद्भुत रूप धारण करनेवाले



आपको नमस्कार है। सुरश्रेष्ठ ! मैं आपका भक्त हूँ, अतः यथार्थ बात जाननेके लिये आपसे पूछता हूँ। स्वामिन् ! आपके प्रति मेरी अभेद-भक्ति अनेक प्रकारसे स्थिर हुई है। प्रभो ! मैं आपको इतना प्रिय कैसे हुआ ? इसका कारण बताइये।’

भगवान् नृसिंह बोले—वत्स ! तुम पूर्वजन्ममें किसी ब्राह्मणके पुत्र थे। फिर भी तुमने वेदोंका अध्ययन नहीं किया। उस समय तुम्हारा नाम वसुदेव था। उस जन्ममें तुमसे कुछ भी पुण्य नहीं बन पड़ा। केवल मेरे ब्रतके प्रभावसे मेरे प्रति तुम्हारी भक्ति हुई। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने सृष्टि-रचनाके लिये इस उत्तम ब्रतका अनुष्ठान किया था। मेरे ब्रतके प्रभावसे ही उन्होंने चराचर जगत्की रचना की है। और भी बहुत-से देवताओं, प्राचीन ऋषियों तथा परम बुद्धिमान् राजाओंने मेरे उत्तम ब्रतका पालन किया है और उसके प्रभावसे उन्हें सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त हुई हैं। स्त्री या पुरुष, जो कोई भी इस उत्तम ब्रतका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें मैं सौख्य, धोग और मोक्षरूपी फल प्रदान करता हूँ।

प्रह्लादने पूछा—देव ! अब मैं इस ब्रतकी उत्तम विधिको सुनना चाहता हूँ। प्रभो ! किस महीनेमें और किस दिनको यह ब्रत आता है ? यह विस्तारके साथ बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नृसिंह बोले—बेटा ! प्रह्लाद ! तुम्हारा कल्याण हो। एकाग्रचित्त होकर इस ब्रतको श्रवण करो। यह ब्रत मेरे प्रादुर्भावसे सम्बन्ध रखता है, अतः वैशाखके शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तिथिको इसका अनुष्ठान करना चाहिये। इससे मुझे बड़ा सन्तोष होता है। पुत्र ! भक्तोंको सुख देनेके लिये जिस प्रकार मेरा आविर्भाव हुआ, वह प्रसङ्ग सुनो। पश्चिम दिशामें एक विशेष कारणसे मैं प्रकट हुआ था। वह स्थान अब मूलस्थान (मुलतान) क्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध है, जो परम पवित्र और समस्त पापोंका नाशक है। उस क्षेत्रमें हारीत नामक एक प्रसिद्ध ब्राह्मण रहते थे, जो वेदोंके पारगामी विद्वान् और ज्ञान-ध्यानमें

तत्पर रहनेवाले थे । उनकी स्त्रीका नाम लीलावती था । वह भी परम पुण्यमयी, सतीरूपा तथा स्वामीके अधीन रहनेवाली थी । उन दोनोंने बहुत समयतक बड़ी भारी तपस्या की । तपस्यामें ही उनके इक्कीस युग बीत गये । तब उस क्षेत्रमें प्रकट होकर मैंने उन दोनोंको प्रत्यक्ष दर्शन दिया । उस समय उन्होंने मुझसे कहा—‘भगवन् ! यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो इसी समय आपके समान पुत्र मुझे प्राप्त हो ।’ बेटा प्रह्लाद ! उनकी बात सुनकर मैंने उत्तर दिया—‘ब्रह्मन् ! निस्सन्देह मैं आप दोनोंका पुत्र हूँ । किन्तु मैं सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करनेवाला साक्षात् परात्पर परमात्मा हूँ, सदा रहनेवाला सनातन पुरुष हूँ; अतः गर्भमें नहीं निवास करूँगा ।’ तब हारीतने कहा—‘अच्छा, ऐसा ही हो ।’ तबसे मैं भक्तके कारण उस क्षेत्रमें निवास करता हूँ । मेरे श्रेष्ठ भक्तको चाहिये कि उस तीर्थमें आकर मेरा दर्शन करे । इससे उसकी सारी बाधाओंका मैं निरन्तर नाश करता रहता हूँ । जो हारीत और लीलावतीके साथ मेरे बालरूपका ध्यान करके रात्रिमें मेरा पूजन करता है, वह नरसे नारायण हो जाता है ।

बेटा ! मेरे व्रतका दिन आनेपर भक्त पुरुष सबरे दत्तधावन करके इन्द्रियोंको काबूमें रखते हुए मेरे सामने व्रतका सङ्कल्प करे—‘भगवन् ! आज मैं आपका व्रत करूँगा । इसे निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण कराइये ।’ व्रतमें स्थित होकर दुष्ट पुरुषोंसे वार्तालाप आदि नहीं करना चाहिये । फिर मध्याह्नकालमें नदी आदिके निर्मल जलमें, घरपर, देवसम्बन्धी कुण्डमें अथवा किसी सुन्दर तालाबके भीतर वैदिक मन्त्रोंसे स्नान करे । मिठ्ठी, गोबर, आँवर्लेंका फल और तिल लेकर उनसे सब पापोंकी शान्तिके लिये विधिपूर्वक स्नान करे । तत्पश्चात् दो सुन्दर वस्त्र धारण करके सन्ध्या-तर्पण आदि नित्यकर्मका अनुष्ठान करना चाहिये । उसके बाद घर लौपकर उसमें सुन्दर अष्टदल कमल बनाये । कमलके ऊपर पञ्चरत्नसहित तौंबिका कलश स्थापित करे । कलशके ऊपर चावलोंसे भरा हुआ पात्र रखे और पात्रमें अपनी शक्तिके अनुसार सोनेकी लक्ष्मीसहित मेरी प्रतिमा बनवाकर स्थापित करे ।

तत्पश्चात् उसे पञ्चामृतसे स्नान कराये । इसके बाद शास्त्रके ज्ञाता और लोभहीन ब्राह्मणको बुलाकर आचार्य बनाये और उसे आगे रखकर भगवान्की अर्चना करे । पूजाके स्थानपर एक मण्डप बनवाकर उसे फूलके गुच्छोंसे सजा दे । फिर वर्तमान ऋतुमें सुलभ होनेवाले फूलोंसे और षोडशोपचारकी सामग्रियोंसे विधिपूर्वक मेरा पूजन करे । पूजामें नियमपूर्वक रहकर मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले पौराणिक मन्त्रोंका उपयोग करे । जो चन्दन, कपूर, रोली, सामयिक पुष्प तथा तुलसीदल मुझे अर्पण करता है, वह निश्चय ही मुक्त हो जाता है । समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये जगद्गुरु श्रीहरिको सदा कृष्णागरुका बना हुआ धूप निवेदन करना चाहिये, क्योंकि वह उहें बहुत ही प्रिय है । एक महान् दीप जलाकर रखना चाहिये, जो अज्ञानरूपी अन्धकारका नाश करनेवाला है । फिर घण्टेकी आवाजके साथ बड़े रूपमें आरती उतारनी चाहिये । तदनन्तर नैवेद्य निवेदन करे, जिसका मन्त्र इस प्रकार है—

नैवेद्यं शर्करां चापि भक्ष्यभोज्यसमन्वितम् ।

ददामि ते रमाकान्त सर्वपापक्षयं कुरु ॥

(१७० । ६२)

लक्ष्मीकान्त ! मैं आपके लिये भक्ष्य-भोज्यसहित नैवेद्य तथा शर्करा निवेदन करता हूँ । आप मेरे सब पापोंका नाश कीजिये ।

तत्पश्चात् भगवान्से इस प्रकार प्रार्थना करे—‘नृसिंह ! अच्युत ! देवेश्वर ! आपके शुभ जन्मदिनको मैं सब भोगोंका परित्याग करके उपवास करूँगा । स्वामिन् ! आप इससे प्रसन्न हों तथा मेरे पाप और जन्मके बन्धनको दूर करे ।’ यों कहकर व्रतका पालन करे । रातमें गीत और वाद्योंकी ध्वनिके साथ जागरण करना चाहिये । भगवान् नृसिंहकी कथासे सम्बन्ध रखनेवाले पौराणिक प्रसङ्गका पाठ भी करना उचित है । फिर प्रातःकाल होनेपर स्नानके अनन्तर पूर्वोत्त विधिसे यत्पूर्वक मेरी पूजा करे । उसके बाद स्वस्थचित् होकर मेरे आगे वैष्णव श्राद्ध करे । तदनन्तर इस लोक और परलोक दोनोंपर विजय पानेकी इच्छासे सुपात्र

ब्राह्मणोंको नीचे लिखी वस्तुओंका दान करना चाहिये । गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, ओढ़ने-बिछौने आदिके सहित चारपाई, सप्तधान्य तथा अन्यान्य वस्तुएँ भी अपनी शक्तिके अनुसार दान करनी चाहिये । शास्त्रोक्त फल पानेकी इच्छा हो तो धनकी कृपणता नहीं करनी चाहिये । अन्तमें ब्राह्मणोंको भोजन कराये और उन्हें उत्तम दक्षिणा दे । धनहीन व्यक्तियोंको भी चाहिये कि वे इस व्रतका अनुष्ठान करें और शक्तिके अनुसार दान दें । मेरे व्रतमें सभी वर्णके मनुष्योंका अधिकार है । मेरी शरणमें आये हुए भक्तोंको विशेषरूपसे इसका अनुष्ठान करना चाहिये ।*

श्रीमहादेवजी बोले—हे पार्वती ! इसके बाद व्रत करनेवाले पुरुषको इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये । विशाल रूप धारण करनेवाले भगवान् नृसिंह ! करोड़ों कालोंके लिये भी आपको परास्त करना कठिन है । बालरूपधारी प्रभो ! आपको नमस्कार है । बाल अवस्था तथा बालकरूप धारण करनेवाले श्रीनृसिंह भगवान्को नमस्कार है । जो सर्वत्र व्यापक, सबको आनन्दित करनेवाले, स्वतः प्रकट होनेवाले, सर्वजीव-स्वरूप, विश्वके स्वामी, देवस्वरूप और सूर्यमण्डलमें स्थित रहनेवाले हैं, उन भगवान्को प्रणाम है । दयासिन्धो ! आपको नमस्कार है । आप तेईस तत्त्वोंके साक्षी चौबीसवें तत्त्वरूप हैं । काल, रुद्र और अग्नि आपके ही स्वरूप हैं । यह जगत् भी आपसे भिन्न नहीं है । नर और सिंहका रूप धारण करनेवाले आप भगवान्को नमस्कार है ।

देवेश ! मेरे वंशमें जो मनुष्य उत्पन्न हो चुके हैं और जो उत्पन्न होनेवाले हैं, उन सबका दुःखदायी भवसागरसे उद्धर कीजिये । जगत्पते ! मैं पातकके समुद्रमें डूबा हूँ । नाना प्रकारकी व्याधियाँ ही इस समुद्रकी जल-राशि हैं । इसमें रहनेवाले जीव मेरा तिरस्कार करते हैं । इस कारण मैं महान् दुःखमें पड़ गया हूँ । शेषशायी देवेश ! मुझे अपने हाथोंका सहाय

दीजिये और इस व्रतसे प्रसन्न हो मुझे भोग और मोक्ष प्रदान कीजिये ।

इस प्रकार प्रार्थना करके विधिपूर्वक देवताका विसर्जन करे । उपहार आदिकी सभी वस्तुएँ आचार्यको निवेदन करे । ब्राह्मणोंको दक्षिणासे सन्तुष्ट करके विदा करे । फिर भगवान्का चिन्तन करते हुए भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे । जिसके पास कुछ भी नहीं है, ऐसा दरिद्र मनुष्य भी यदि नियमपूर्वक नृसिंहचतुर्दशीको उपवास करता है तो वह निःसन्देह सात जन्मके पापोंसे मुक्त हो जाता है । जो भक्तिपूर्वक इस पापनाशक व्रतका श्रवण करता है, उसकी ब्रह्महत्या दूर हो जाती है । जो मानव इस परम पवित्र एवं गोपनीय व्रतका कीर्तन करता है, वह सम्पूर्ण मनोरथोंके साथ ही इस व्रतके फलको भी पा लेता है । जो मध्याह्नकालमें यथाशक्ति इस व्रतका अनुष्ठान करता और लीलावती देवीके साथ हारीत मुनि एवं भगवान् नृसिंहका पूजन करता है, उसे सनातन मोक्षकी प्राप्ति होती है । इतना ही नहीं, वह श्रीनृसिंहके प्रसादसे सदा मनोवाञ्छित वस्तुओंको प्राप्त करता रहता है ।

उस तीर्थमें परम पुण्यमयी सिन्धु नदी बहुत ही रमणीय है । उसके समीप मूलस्थान नामक नगर आज भी वर्तमान है । उस नगरका निर्माण देवताओंने किया था । वहीं महात्मा हारीतका निवासस्थान है और उसीमें लीलावती देवी भी रहती हैं । सिन्धु नदीके निकट होनेसे वहाँ निरन्तर जलके प्रबल वेगकी प्रतिध्वनि सुनायी पड़ती है । कलियुग आनेपर वहाँ बहुत-से पापाचारी म्लेच्छ निवास करने लगते हैं । पार्वती ! भगवान् नृसिंहके प्रादुर्भाव-कालमें जैसा अद्भुत शब्द हुआ था, उसीके समान प्रतिध्वनि वहाँ आज भी सुनायी देती है । ब्रह्महत्यारा, सुवर्ण चुरानेवाला, शराबी और गुरुपलीके साथ समागम करनेवाला ही क्यों न हो, जो मनुष्य सिन्धु नदीके तटपर जाकर विशेषरूपसे स्नान करता है, वह निश्चय ही श्रीनृसिंहके प्रसादसे मुक्त हो जाता है । जो

मानव वहाँ दस रात निवास करते हैं, उन्हें पुण्यात्मा जानना चाहिये। जो वहाँ मांस खाते और शशब पीते हैं, वे अधर्मके मूर्तिमान् स्वरूप और महापापी हैं। भगवान् तत्काल पापमुक्त हो जाता है। नृसिंहके नामसे प्रसिद्ध एक ही तीर्थ है, जो बहुत ही उत्तम और विस्तृत है। उसका श्रवण करनेमात्रसे मनुष्य

श्रीमद्भगवद्गीताके पहले अध्यायका माहात्म्य

श्रीपार्वतीने कहा—भगवन्! आप सब तत्त्वोंके ज्ञाता हैं। आपकी कृपासे मुझे श्रीविष्णु-सम्बन्धी नाना प्रकारके धर्म सुननेको मिले, जो समस्त लोकका उद्धार करनेवाले हैं। देवेश ! अब मैं गीताका माहात्म्य सुनना चाहती हूँ। जिसका श्रवण करनेसे श्रीहरिमें भक्ति बढ़ती है।

श्रीमहादेवजी बोले—जिनका श्रीविग्रह अलसीके फूलकी भाँति इयामवर्णका है, पक्षिराज गरुड़ ही जिनके बाहन हैं, जो अपनी महिमासे कभी च्युत नहीं होते तथा शेषनागकी शाय्यापर शयन करते हैं, उन भगवान् महाविष्णुकी हम उपासना करते हैं। एक समयकी बात है, मुर दैत्यके नाशक भगवान् विष्णु शेषनागके रमणीय आसनपर सुखपूर्वक विराजमान थे।



उस समय समस्त लोकोंको आनन्द देनेवाली भगवती लक्ष्मीने आदरपूर्वक प्रश्न किया।

श्रीलक्ष्मीने पूछा—भगवन्! आप सम्पूर्ण जगत्का पालन करते हुए भी अपने ऐश्वर्यके प्रति उदासीनसे होकर जो इस क्षीरसागरमें नींद ले रहे हैं, इसका क्या कारण है ?

श्रीभगवान् बोले—सुमुखि ! मैं नींद नहीं लेता हूँ, अपितु तत्त्वका अनुसरण करनेवाली अन्तर्दृष्टिके द्वारा अपने ही माहेश्वर तेजका साक्षात्कार कर रहा हूँ। देवि ! यह वही तेज है, जिसका योगी पुरुष कुशाग्र बुद्धिके द्वारा अपने अन्तःकरणमें दर्शन करते हैं तथा जिसे मीमांसक विद्वान् वेदोंका सार-तत्त्व निश्चित करते हैं। वह माहेश्वर तेज एक, अजर, प्रकाशस्वरूप, आत्मरूप, रोग-शोकसे रहित, अखण्ड आनन्दका पुञ्ज, निष्पन्द (निरीह) तथा द्वैतरहित है। इस जगत्का जीवन उसीके अधीन है। मैं उसीका अनुभव करता हूँ। देवेश्वरि ! यही कारण है कि मैं तुम्हें नींद लेता-सा प्रतीत हो रहा हूँ।

श्रीलक्ष्मीने कहा—हृषीकेश ! आप ही योगी पुरुषोंके ध्येय हैं। आपके अतिरिक्त भी कोई ध्यान करनेयोग्य तत्त्व है, यह जानकर मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है। इस चराचर जगत्की सृष्टि और संहार करनेवाले स्वयं आप ही हैं। आप सर्वसमर्थ हैं। इस प्रकारकी स्थितिमें होकर भी यदि आप उस परम तत्त्वसे भिन्न हैं, तो मुझे उसका बोध कराइये।

श्रीभगवान् बोले—प्रिये ! आत्माका स्वरूप द्वैत और अद्वैतसे पृथक्, भाव और अभावसे मुक्त तथा आदि और अन्तसे रहित है। शुद्ध ज्ञानके प्रकाशसे उपलब्ध होनेवाला तथा परमानन्दस्वरूप होनेके कारण एकमात्र सुन्दर है। यही मेरा ईश्वरीय रूप है। आत्माका

एकत्र ही सबके द्वारा जाननेयोग्य है। गीताशास्त्रमें इसीका प्रतिपादन हुआ है।

अमिततेजस्वी भगवान् विष्णुके ये वचन सुनकर लक्ष्मीदेवीने शङ्का उपस्थित करते हुए कहा— ‘भगवन् ! यदि आपका स्वरूप स्वयं परमानन्दमय और मन-वाणीकी पहुँचके बाहर है तो गीता कैसे उसका बोध कराती है ? मेरे इस सन्देहका आप निवारण कीजिये ।’

श्रीभगवान् बोले—सुन्दरि ! सुनो, मैं गीतामें अपनी स्थितिका वर्णन करता हूँ। क्रमशः पाँच अध्यायोंको तुम पाँच मुख जानो, दस अध्यायोंको दस भुजाएँ समझो तथा एक अध्यायको उदर और दो अध्यायोंको दोनों चरणकमल जानो। इस प्रकार यह अठारह अध्यायोंकी वाङ्मयी ईश्वरीय मूर्ति ही समझनी चाहिये।* यह ज्ञानमात्रसे ही महान् पातकोंका नाश करनेवाली है। जो उत्तम बुद्धिवाला पुरुष गीताके एक या आधे अध्यायका अथवा एक, आधे या चौथाई इलोकका भी प्रतिदिन अभ्यास करता है, वह सुशर्माके समान मुक्त हो जाता है।

श्रीलक्ष्मीजीने पूछा—देव ! सुशर्मा कौन था ? किस जातिका था ? और किस कारणसे उसकी मुक्ति हुई ?

श्रीभगवान् बोले—प्रिये ! सुशर्मा बड़ी खोटी बुद्धिका मनुष्य था। पापियोंका तो वह शिरोमणि ही था। उसका जन्म वैदिक ज्ञानसे शून्य एवं क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले ब्राह्मणोंके कुलमें हुआ था। वह न ध्यान करता था न जप; न होम करता था न अतिथियोंका सल्कार। वह लम्पट होनेके कारण सदा विषयोंके सेवनमें ही आसक्त रहता था। हल जोतता और पत्ते बैचकर जीविका चलाता था। उसे मदिरा पीनेका व्यसन था तथा वह मांस भी खाया करता था। इस प्रकार उसने अपने जीवनका दीर्घकाल व्यतीत कर दिया। एक दिन मूढ़बुद्धि सुशर्मा पत्ते लानेके लिये किसी त्रैषिकी

वाटिकामें घूम रहा था। इसी बीचमें कालरूपधारी काले साँपने उसे डॅंस लिया। सुशर्माकी मृत्यु हो गयी। तदनन्तर वह अनेक नरकोंमें जा वहाँकी यातनाएँ भोगकर मर्त्यलोकमें लौट आया और यहाँ बोझ ढोनेवाला बैल हुआ। उस समय किसी पङ्कुने अपने जीवनको आरामसे व्यतीत करनेके लिये उसे खरीद लिया। बैलने अपनी पीठपर पङ्कुका भार ढोते हुए बड़े कष्टसे सात-आठ वर्ष बिताये। एक दिन पङ्कुने किसी ऊँचे स्थानपर बहुत देरतक बड़ी तेजीके साथ उस बैलको छुमाया। इससे वह थककर बड़े वेगसे पृथ्वीपर गिरा और मूर्च्छित हो गया। उस समय वहाँ कुतूहलवशा आकृष्ट हो बहुत-से लोग एकत्रित हो गये। उस जनसमुदायमेंसे किसी पुण्यात्मा व्यक्तिने उस बैलका कल्याण करनेके लिये उसे अपना पुण्य दान किया। तत्पश्चात् कुछ दूसरे लोगोंने भी अपने-अपने पुण्योंको याद करके उन्हें उसके लिये दान किया। उस भीड़में एक वेश्या भी खड़ी थी। उसे अपने पुण्यका पता नहीं था, तो भी उसने लोगोंकी देखा-देखी उस बैलके लिये कुछ त्याग किया।

तदनन्तर यमराजके दूत उस मेरे हुए प्राणीको पहले यमपुरी ले गये। वहाँ यह विचारकर कि यह वेश्याके दिये हुए पुण्यसे पुण्यवान् हो गया है, उसे छोड़ दिया गया। फिर वह भूलोकमें आकर उत्तम कुल और शीलवाले ब्राह्मणोंके घरमें उत्पन्न हुआ। उस समय भी उसे अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण बना रहा। बहुत दिनोंके बाद अपने अज्ञानको दूर करनेवाले कल्याण-तत्त्वका जिज्ञासु होकर वह उस वेश्याके पास गया और उसके दानकी बात बतलाते हुए उसने पूछा—‘तुमने कौन-सा पुण्य दान किया था ?’ वेश्याने उत्तर दिया—‘वह पिंजरेमें बैठा हुआ तोता प्रतिदिन कुछ पढ़ता है। उससे मेरा अन्तःकरण पवित्र हो गया है। उसीका पुण्य मैंने तुम्हारे लिये दान किया था।’ इसके बाद उन दोनोंने

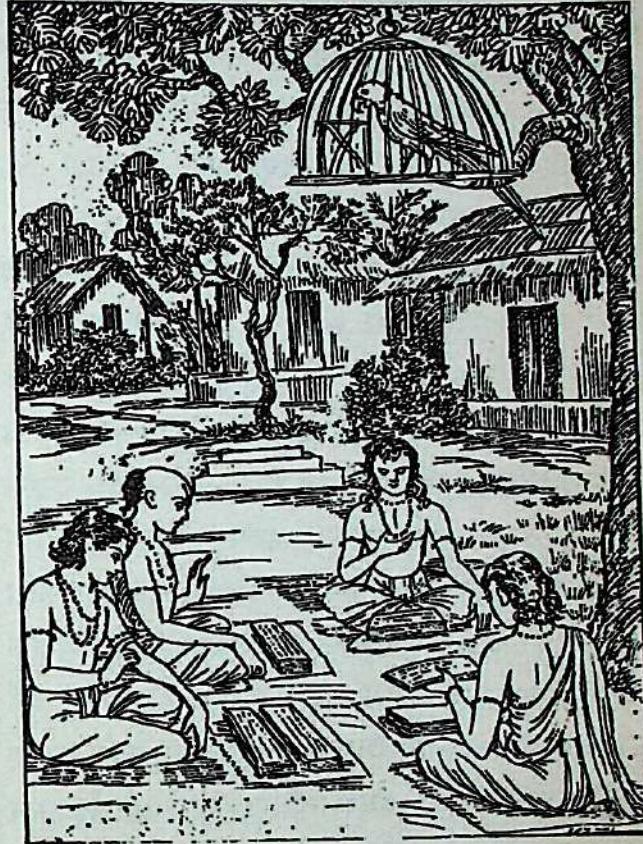
* शृणु सुत्रोणि वक्ष्यमि गीतासु स्थितिमात्पनः। वक्त्राणि पञ्च जानीहि पञ्चाध्यायाननुक्रमात् ॥

दशाध्यायान्मुजाश्चैकमुदरं द्वौ पदाम्बुजे। एवमष्टादशाध्यायी वाङ्मयी मूर्तिरैश्वरी ॥ (१७१। २७-२८)

तोतेसे पूछा । तब उस तोतेने अपने पूर्वजन्मका स्मरण करके प्राचीन इतिहास कहना आरम्भ किया ।

शुक बोला—पूर्वजन्ममें मैं विद्वान् होकर भी विद्वत्ताके अभिमानसे मोहित रहता था । मेरा राग-द्वेष इतना बढ़ गया था कि मैं गुणवान् विद्वानोंके प्रति भी ईर्ष्या-भाव रखने लगा । फिर समयानुसार मेरी मृत्यु हो गयी और मैं अनेकों घृणित लोकोंमें भटकता फिरा । उसके बाद इस लोकमें आया । सद्गुरुकी अत्यन्त निन्दा करनेके कारण तोतेके कुलमें मेरा जन्म हुआ । पापी होनेके कारण छोटी अवस्थामें ही मेरा माता-पितासे वियोग हो गया । एक दिन मैं ग्रीष्म ऋतुमें तपे हुए मार्गपर पड़ा था । वहाँसे कुछ श्रेष्ठ मुनि मुझे उठा लाये और महात्माओंके आश्रयमें आश्रमके भीतर एक पिजरेमें उन्होंने मुझे डाल दिया । वहाँ मुझे पढ़ाया गया । ऋषियोंके बालक बड़े आदरके साथ गीताके प्रथम अध्यायकी आवृत्ति करते थे । उन्हींसे सुनकर मैं भी बारम्बार पाठ करने लगा । इसी बीचमें एक चोरी करनेवाले बहेलियेने मुझे वहाँसे चुरा लिया । तत्पश्चात् इस देवीने मुझे खरीद लिया । यही मेरा वृत्तान्त है, जिसे मैंने आपलोंगोंसे बता दिया । पूर्वकालमें मैंने इस प्रथम अध्यायका अध्यास किया था, जिससे मैंने अपने पापको दूर किया है । फिर उसीसे इस वेश्याका भी अन्तःकरण शुद्ध हुआ है और उसीके पुण्यसे ये द्विजश्रेष्ठ सुशर्मा भी पापमुक्त हुए हैं ।

इस प्रकार परस्पर वार्तालाप और गीताके प्रथम



अध्यायके माहात्म्यकी प्रशंसा करके वे तीनों निरन्तर अपने-अपने घरपर गीताका अध्यास करने लगे । फिर ज्ञान प्राप्त करके वे मुक्त हो गये । इसलिये जो गीताके प्रथम अध्यायको पढ़ता, सुनता तथा अध्यास करता है, उसे इस भवसागरको पार करनेमें कोई कठिनाई नहीं होती ।

————★————

श्रीमद्भगवद्गीताके दूसरे अध्यायका माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—लक्ष्मी ! प्रथम अध्यायके माहात्म्यका उत्तम उपाख्यान मैंने तुम्हें सुना दिया । अब अन्य अध्यायोंके माहात्म्य श्रवण करो । दक्षिण-दिशामें वेदवेत्ता ब्राह्मणोंके पुरन्दरपुर नामक नगरमें श्रीमान् देवशर्मा नामक एक विद्वान् ब्राह्मण रहते थे । वे अतिथियोंके पूजक, स्वाध्यायशील, वेद-शास्त्रोंके विशेषज्ञ, यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले और तपस्वियोंके सदा ही प्रिय थे । उन्होंने उत्तम द्रव्योंके द्वारा अभिमें हवन करके दीर्घकालतक देवताओंको तृप्त किया, किन्तु

उन धर्मात्मा ब्राह्मणको कभी सदा रहनेवाली शान्ति न मिली । वे परम कल्याणमय तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे प्रतिदिन प्रचुर सामग्रियोंके द्वारा सत्य-सङ्कल्पवाले तपस्वियोंकी सेवा करने लगे । इस प्रकार शुभ आचरण करते हुए उन्हें बहुत समय बीत गया । तदनन्तर एक दिन पृथ्वीपर उनके समक्ष एक त्यागी महात्मा प्रकट हुए । वे पूर्ण अनुभवी, आकाङ्क्षारहित, नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि रखनेवाले तथा शान्तचित्त थे । निरन्तर परमात्माके चिन्तनमें संलग्न हो वे सदा

आनन्दविभोर रहते थे। देवशमनि उन नित्यसन्तुष्ट तपस्वीको शुद्धभावसे प्रणाम किया और पूछा—‘महात्मन्! मुझे शान्तिमयी स्थिति कैसे प्राप्त होगी?’ तब उन आत्मज्ञानी संतने देवशर्माको सौपुर ग्रामके निवासी मित्रवान्‌का, जो बकरियोंका चरवाहा था, परिचय दिया और कहा ‘वही तुम्हें उपदेश देगा।’

यह सुनकर देवशमनि महात्माके चरणोंकी वन्दना की और समृद्धिशाली सौपुर ग्राममें पहुँचकर उसके उत्तरभागमें एक विशाल वन देखा। उसी वनमें नदीके किनारे एक शिलापर मित्रवान् बैठा था। उसके नेत्र आनन्दातिरेकसे निश्चल हो रहे थे—वह अपलक दृष्टिसे देख रहा था। वह स्थान आपसका स्वाभाविक वैर छोड़कर एकत्रित हुए परस्पर-विरोधी जन्तुओंसे घिरा था। वहाँ उद्यानमें मन्द-मन्द वायु चल रही थी। मृगोंके झुंड शान्तभावसे बैठे थे और मित्रवान् दयासे भरी हुई आनन्दमयी मनोहारिणी दृष्टिसे पृथ्वीपर मानो अमृत छिड़क रहा था। इस रूपमें उसे देखकर देवशर्माका मन प्रसन्न हो गया। वे उत्सुक होकर बड़ी विनयके साथ मित्रवान्‌के पास गये। मित्रवान्‌ने भी अपने मस्तकको किञ्चित् नवाकर देवशर्माका सत्कार किया। तदनन्तर विद्वान् देवशर्मा अनन्य चित्तसे मित्रवान्‌के समीप गये और जब उसके ध्यानका समय समाप्त हो गया, उस समय उन्होंने अपने मनकी बात पूछी—‘महाभाग! मैं आत्माका ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ। मेरे इस मनोरथकी पूर्तिके लिये मुझे किसी ऐसे उपायका उपदेश कीजिये, जिसके द्वारा सिद्धि प्राप्त हो चुकी हो।’

देवशर्माकी बात सुनकर मित्रवान्‌ने एक क्षणतक कुछ विचार किया। उसके बाद इस प्रकार कहा—‘विद्वन्! एक समयकी बात है, मैं वनके भीतर बकरियोंकी रक्षा कर रहा था। इतनेमें ही एक भयङ्कर व्याघ्रपर मेरी दृष्टि पड़ी, जो मानो सबको ग्रस लेना चाहता था। मैं मृत्युसे डरता था, इसलिये व्याघ्रको आते देख बकरियोंके झुंडको आगे करके वहाँसे भाग चला; किन्तु एक बकरी तुरंत ही सारा भय छोड़कर नदीके किनारे उस व्याघ्रके पास बेरोक-टोक चली गयी। फिर

तो व्याघ्र भी द्वेष छोड़कर चुपचाप खड़ा हो गया। उसे इस अवस्थामें देखकर बकरी बोली—‘व्याघ्र! तुम्हें तो अभीष्ट भोजन प्राप्त हुआ है। मेरे शरीरसे मांस निकालकर प्रेमपूर्वक खाओ न। तुम इतनी देरसे खड़े क्यों हो? तुम्हारे मनमें मुझे खानेका विचार क्यों नहीं हो रहा है?’

व्याघ्र बोला—बकरी! इस स्थानपर आते ही मेरे मनसे द्वेषका भाव निकल गया। भूख-प्यास भी मिट गयी। इसलिये पास आनेपर भी अब मैं तुझे खाना नहीं चाहता।

व्याघ्रके यों कहनेपर बकरी बोली—‘न जाने मैं कैसे निर्भय हो गयी हूँ। इसमें क्या कारण हो सकता है? यदि तुम जानते हो तो बताओ।’ यह सुनकर व्याघ्रने कहा—‘मैं भी नहीं जानता। चलो, सामने खड़े हुए इन महापुरुषसे पूछो।’ ऐसा निश्चय करके वे दोनों वहाँसे चल दिये। उन दोनोंके स्वभावमें यह विचित्र परिवर्तन देखकर मैं बहुत विस्मयमें पड़ा था। इतनेमें ही उन्होंने मुझीसे आकर प्रश्न किया। वहाँ वृक्षकी शाखापर एक वानरराज था। उन दोनोंके साथ मैंने भी वानरराजसे पूछा। विप्रवर! मेरे पूछनेपर वानरराजने आदरपूर्वक कहा—‘अजापाल! सुनो, इस विषयमें मैं तुम्हें प्रांचीन वृत्तान्त सुनाता हूँ। यह सामने वनके भीतर जो बहुत बड़ा मन्दिर है, उसकी ओर देखो। इसमें ब्रह्माजीका स्थापित किया हुआ एक शिवलिङ्ग है। पूर्वकालमें यहाँ सुकर्मा नामक एक बुद्धिमान् महात्मा रहते थे, जो तपस्यामें संलग्न होकर इस मन्दिरमें उपासना करते थे। वे वनमेंसे फूलोंका संग्रह कर लाते और नदीके जलसे पूजनीय भगवान् शङ्करको स्नान कराकर उन्होंसे उनकी पूजा किया करते थे। इस प्रकार आराधनाका कार्य करते हुए सुकर्मा यहाँ निवास करते थे। बहुत समयके बाद उनके समीप किसी अतिथिका आगमन हुआ। सुकर्मनि भोजनके लिये फल लाकर अतिथिको अर्पण किया और कहा—‘विद्वन्! मैं केवल तत्त्वज्ञानकी इच्छासे भगवान् शङ्करकी आराधना करता हूँ। आज इस आराधनाका फल परिपक्व होकर मुझे मिल गया; क्योंकि इस समय

आप-जैसे महापुरुषने मुझपर अनुग्रह किया है।'

सुकर्मके ये मधुर वचन सुनकर तपस्याके धनी महात्मा अतिथिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने एक शिलाखण्डपर गीताका दूसरा अध्याय लिख दिया और ब्राह्मणको उसके पाठ एवं अध्यासके लिये आज्ञा देते हुए कहा—'ब्रह्मन्! इससे तुम्हारा आत्मज्ञान-सम्बन्धी



मनोरथ अपने-आप सफल हो जायगा।' यों कहकर वे बुद्धिमान् तपस्वी सुकर्मके सामने ही उनके देखते-देखते अन्तर्धीन हो गये। सुकर्मा विस्मित होकर उनके आदेशके अनुसार निरन्तर गीताके द्वितीय अध्यायका

अध्यास करने लगे। तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् अन्तःकरण शुद्ध होकर उन्हें आत्मज्ञानकी प्राप्ति हुई। फिर वे जहाँ-जहाँ गये, वहाँ-वहाँका तपोवन शान्त हो गया। उनमें शीत-उष्ण और राग-द्वेष आदिकी बाधाएँ दूर हो गयीं। इतना ही नहीं, उन स्थानोंमें भूख-प्यासका कष्ट भी जाता रहा तथा भयका सर्वथा अभाव हो गया। यह सब द्वितीय अध्यायका जप करनेवाले सुकर्मा ब्राह्मणकी तपस्याका ही प्रभाव समझो।

मित्रवान् कहता है—वानरराजके यों कहनेपर मैं प्रसन्नतापूर्वक बकरी और व्याघ्रके साथ उस मन्दिरकी ओर गया। वहाँ जाकर शिलाखण्डपर लिखे हुए गीताके द्वितीय अध्यायको मैंने देखा और पढ़ा। उसीकी आवृत्ति करनेसे मैंने तपस्याका पार पा लिया है, अतः भद्रपुरुष ! तुम भी सदा द्वितीय अध्यायकी ही आवृत्ति किया करो। ऐसा करनेपर मुक्ति तुमसे दूर नहीं रहेगी।

श्रीभगवान् कहते हैं—प्रिये ! मित्रवान्के इस प्रकार आदेश देनेपर देवशमनि उसका पूजन किया और उसे प्रणाम करके पुरन्दरपुरकी राह ली। वहाँ किसी देवालयमें पूर्वोक्त आत्मज्ञानी महात्माको पाकर उन्होंने यह सारा वृत्तान्त निवेदन किया और सबसे पहले उन्होंसे द्वितीय अध्यायको पढ़ा। उनसे उपदेश पाकर शुद्ध अन्तःकरणवाले सुकर्मा प्रतिदिन बड़ी श्रद्धाके साथ द्वितीय अध्यायका पाठ करने लगे। तबसे उन्होंने अनवद्य (प्रशंसाके योग्य) परमपदको प्राप्त कर लिया। लक्ष्मी ! यह द्वितीय अध्यायका उपाख्यान कहा गया। अब तृतीय अध्यायका माहात्म्य बतलाऊँगा।

————★————

श्रीमद्भगवद्गीताके तीसरे अध्यायका माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—प्रिये ! जनस्थानमें एक जड नामक ब्राह्मण था, जो कौशिक-वंशमें उत्पन्न हुआ था। उसने अपना जातीय धर्म छोड़कर बनियेकी वृत्तिमें मन लगाया। उसे परायी लियोंके साथ व्यभिचार करनेका व्यसन पड़ गया था। वह सदा जूआ खेलता, शराब पीता और शिकार खेलकर जीवोंकी हिंसा किया

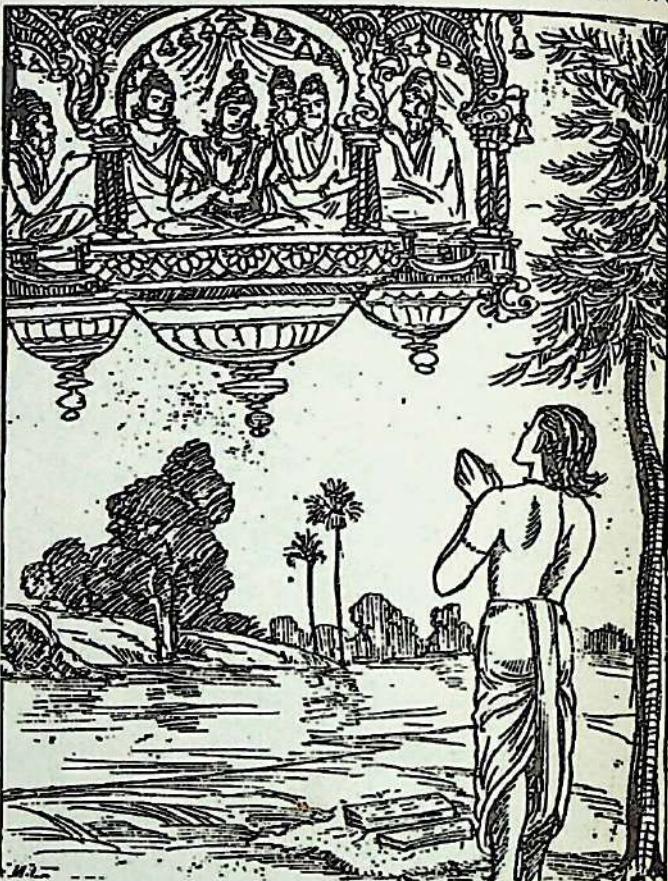
करता था। इसी प्रकार उसका समय बीतता था। धन नष्ट हो जानेपर वह व्यापारके लिये बहुत दूर उत्तर दिशामें चला गया। वहाँसे धन कमाकर घरकी ओर लौटा। बहुत दूरतकका रास्ता उसने तै कर लिया था। एक दिन सूर्यास्त हो जानेपर जब दसों दिशाओंमें अन्धकार फैल गया, तब एक वृक्षके नीचे उसे लुटेरोने

धर दबाया और शीघ्र ही उसके प्राण ले लिये। उसके धर्मका लोप हो गया था, इसलिये वह बड़ा भयानक प्रेत हुआ।

उसका पुत्र बड़ा धर्मात्मा और वेदोंका विद्वान् था। उसने अबतक पिताके लौट आनेकी राह देखी। जब वे नहीं आये, तब उनका पता लगानेके लिये वह स्वयं भी घर छोड़कर चल दिया। वह प्रतिदिन खोज करता, मगर राहगीरोंसे पूछनेपर भी उसे उनका कुछ समाचार नहीं मिलता था। तदनन्तर एक दिन एक मनुष्यसे उसकी भेट हुई, जो उसके पिताका सहायक था। उससे सारा हाल जानकर उसने पिताकी मृत्युपर बहुत शोक किया। वह बड़ा बुद्धिमान् था। बहुत कुछ सोच-विचार कर पिताका पारलौकिक कर्म करनेकी इच्छासे आवश्यक सामग्री साथ ले उसने काशी जानेका विचार किया। मार्गमें सात-आठ मुकाम डालकर वह नवें दिन उसी वृक्षके नीचे पहुँचा, जहाँ उसके पिता मारे गये थे। उस स्थानपर उसने सन्ध्योपासना की और गीताके तीसरे अध्यायका पाठ किया। इसी समय आकाशमें बड़ी भयानक आवाज हुई। उसने अपने पिताको भैंयंकर आकारमें देखा; फिर तुरंत ही अपने सामने आकाशमें उसे एक सुन्दर विमान दिखायी दिया, जो महान् तेजसे व्याप्त था। उसमें अनेकों क्षुद्र घण्टिकाएँ लगी थीं। उसके तेजसे समस्त दिशाएँ आलोकित हो रही थीं। यह दृश्य देखकर उसके चित्तकी व्यग्रता दूर हो गयी। उसने विमानपर अपने पिताको दिव्यरूप धारण किये विराजमान देखा। उनके शरीरपर पीताम्बर शोभा पा रहा था और मुनिजन उनकी स्तुति कर रहे थे। उन्हें देखते ही पुत्रने प्रणाम किया। तब पिताने भी उसे आशीर्वाद दिया।

तत्पश्चात् उसने पितासे यह सारा वृत्तान्त पूछा। उसके उत्तरमें पिताने सब बातें बताकर इस प्रकार कहना आरम्भ किया—‘बेटा ! दैववश मेरे निकट गीताके तृतीय अध्यायका पाठ करके तुमने इस शरीरके द्वारा किये हुए दुस्त्यज कर्म-बन्धनसे मुझे छुड़ा दिया। अतः अब घर लौट जाओ; क्योंकि जिसके लिये तुम काशी जा रहे थे, वह प्रयोजन इस समय तृतीय अध्यायके

पाठसे ही सिद्ध हो गया है।’ पिताके यों कहनेपर पुत्रने पूछा—‘तात ! मेरे हितका उपदेश दीजिये तथा और



कोई कार्य जो मेरे लिये करनेयोग्य हो बतलाइये।’ तब पिताने उससे कहा—‘अनघ ! तुम्हें यही कार्य फिर करना है। मैंने जो कर्म किया है, वही मेरे भाईने भी किया था। इससे वे घोर नरकमें पड़े हैं। उनका भी तुम्हें उद्धार करना चाहिये तथा मेरे कुलके और भी जितने लोग नरकमें पड़े हैं, उन सबका भी तुम्हारे द्वारा उद्धार हो जाना चाहिये; यही मेरा मनोरथ है। बेटा ! जिस साधनके द्वारा तुमने मुझे संकटसे छुड़ाया है। उसीका अनुष्ठान औरेंके लिये भी करना उचित है। उसका अनुष्ठान करके उससे होनेवाला पुण्य उन नारकी जीवोंको सङ्कल्प करके दे दो। इससे वे समस्त पूर्वज मेरी ही तरह यातनासे मुक्त हो स्वल्पकालमें ही श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त हो जायेंगे।’

पिताका यह सन्देश सुनकर पुत्रने कहा—‘तात ! यदि ऐसी बात है और आपकी भी ऐसी ही रुचि है तो मैं समस्त नारकी जीवोंका नरकसे उद्धार कर दूँगा।’ यह सुनकर उसके पिता बोले—‘बेटा ! एवमस्तु, तुम्हारा

कल्याण हो; मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य सम्पन्न हो गया !' इस प्रकार पुत्रको आश्वासन देकर उसके पिता भगवान् विष्णुके परमधामको चले गये। तत्पश्चात् वह भी लौटकर जनस्थानमें आया और परम सुन्दर भगवान् श्रीकृष्णके मन्दिरमें उनके समक्ष बैठकर पिताके आदेशानुसार गीताके तीसरे अध्यायका पाठ करने लगा। उसने नारकी जीवोंका उद्धार करनेकी इच्छासे गीतापाठजनित सारा पुण्य सङ्कल्प करके दे दिया।

इसी बीचमें भगवान् विष्णुके दूत यातना भोगनेवाले नारकी जीवोंको छुड़ानेके लिये यमराजके पास गये। यमराजने नाना प्रकारके सत्कारोंसे उनका पूजन किया और कुशल पूछी। वे बोले—'धर्मराज ! हमलोगोंके लिये सब ओर आनन्द-ही-आनन्द है।' इस प्रकार सत्कार करके पितृलोकके सम्राट् परम बुद्धिमान् यमने विष्णुदूतोंसे यमलोकमें आनेका कारण पूछा।

तब विष्णुदूतोंने कहा—यमराज ! शेषशय्यापर शयन करनेवाले भगवान् विष्णुने हमलोगोंको आपके पास कुछ सन्देश देनेके लिये भेजा है। भगवान् हमलोगोंके मुखसे आपकी कुशल पूछते हैं और यह

आज्ञा देते हैं कि 'आप नरकमें पड़े हुए समस्त प्राणियोंको छोड़ दें।'

अमिततेजस्वी भगवान् विष्णुका यह आदेश सुनकर यमने मस्तक झुकाकर उसे स्वीकार किया और मन-ही-मन कुछ सोचा। तत्पश्चात् मदोन्मत्त नारकी जीवोंको नरकसे मुक्त देखकर उनके साथ ही वे भगवान् विष्णुके वास-स्थानको चले। यमराज श्रेष्ठ विमानके द्वारा जहाँ क्षीरसागर है, वहाँ जा पहुँचे। उसके भीतर कोटि-कोटि सूर्योंके समान कान्तिमान् नील कमल-दलके समान श्यामसुन्दर लोकनाथ जगद्गुरु श्रीहरिका उन्होंने दर्शन किया। भगवान् का तेज उनकी शश्या बने हुए शेषनागके फनोंकी मणियोंके प्रकाशसे दुगुना हो रहा था। वे आनन्दयुक्त दिखायी दे रहे थे। उनका हृदय प्रसन्नतासे परिपूर्ण था। भगवती लक्ष्मी अपनी सरल चितवनसे प्रेमपूर्वक उन्हें बारम्बार निहार रही थीं। चारों ओर योगीजन भगवान् की सेवामें खड़े थे। उन योगियोंकी आँखोंके तारे ध्यानस्थ होनेके कारण निश्चल प्रतीत होते थे। देवराज इन्द्र अपने विरोधियोंको परास्त करनेके उद्देश्यसे भगवान् की स्तुति कर रहे थे। ब्रह्माजीके मुखसे निकले हुए वेदान्त-वाक्य मूर्तिमान् होकर भगवान् के गुणोंका गान कर रहे थे। भगवान् पूर्णतः सन्तुष्ट होनेके साथ ही समस्त योनियोंकी ओरसे उदासीन प्रतीत होते थे। जीवोंमेंसे जिन्होंने योग-साधनके द्वारा अधिक पुण्य सञ्चय किया था, उन सबको एक ही साथ वे कृपा-दृष्टिसे निहार रहे थे। भगवान् अपने स्वरूपभूत अखिल चराचर जगत्को आनन्दपूर्ण दृष्टिसे आमोदित कर रहे थे। शेषनागकी प्रभासे उद्घासित एवं सर्वत्र व्यापक दिव्य विग्रह धारण किये नील कमलके सदृश श्याम-वर्णवाले श्रीहरि ऐसे जान पड़ते थे, मानो चाँदनीसे घिरा हुआ आकाश सुशोभित हो रहा हो। इस प्रकार भगवान् की द्वाँकी करके यमराज अपनी विशाल बुद्धिके द्वारा उनकी स्तुति करने लगे।

यमराज बोले—सम्पूर्ण जगत्का निर्माण करनेवाले परमेश्वर ! आपका अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल है। आपके मुखसे ही वेदोंका प्रादुर्भाव हुआ है। आप



ही विश्वस्वरूप और इसके विधायक ब्रह्म हैं। आपको नमस्कार है। अपने बल और वेगके कारण जो अत्यन्त दुर्धर्ष प्रतीत होते हैं, ऐसे दानवेन्द्रोंका अभिमान चूर्ण करनेवाले भगवान् विष्णुको नमस्कार है। पालनके समय सत्त्वमय शरीर धारण करनेवाले, विश्वके आधारभूत, सर्वव्यापी श्रीहरिको नमस्कार है। समस्त देहधारियोंकी पातक-राशिको दूर करनेवाले परमात्माको प्रणाम है। जिनके ललाटवर्ती नेत्रके तनिक-सा खुलनेपर भी आगकी लपटें निकलने लगती हैं, उन रुद्ररूपधारी आप परमेश्वरको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण विश्वके गुरु, आत्मा और महेश्वर हैं; अतः समस्त वैष्णवजनोंको सङ्कटसे मुक्त करके उनपर अनुग्रह करते हैं। आप मायासे विस्तारको प्राप्त हुए अखिल विश्वमें व्याप्त होकर भी कभी माया अथवा उससे उत्पन्न होनेवाले गुणोंसे मोहित नहीं होते। माया तथा मायाजनित गुणोंके बीचमें स्थित होनेपर भी आपपर उनमेंसे किसीका प्रभाव नहीं पड़ता। आपकी महिमाका अन्त नहीं है; क्योंकि आप

असीम हैं। फिर आप वाणीके विषय कैसे हो सकते हैं। अतः मेरा मौन रहना ही उचित है।

इस प्रकार स्तुति करके यमराजने हाथ जोड़कर कहा—‘जगदुरो ! आपके आदेशसे इन जीवोंको गुणरहित होनेपर भी मैंने छोड़ दिया है। अब मेरे योग्य और जो कार्य हो, उसे बताइये।’ उनके यों कहनेपर भगवान् मधुसूदन घेघके समान गम्भीर वाणीद्वारा मानो अमृत-रससे सींचते हुए बोले—‘धर्मराज ! तुम सबके प्रति समान भाव रखते हुए लोकोंका पापसे उद्धार कर रहे हो। तुमपर देहधारियोंका भार रखकर मैं निश्चिन्त हूँ। अतः तुम अपना काम करो और अपने लोकको लौट जाओ।’

यों कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। यमराज भी अपनी पुरीको लौट आये। तथा वह ब्राह्मण अपनी जातिके और समस्त नारकी जीवोंका नरकसे उद्धार करके स्वयं भी श्रेष्ठ विमानद्वारा श्रीविष्णुधामको चला गया।

श्रीमद्भगवद्गीताके चौथे अध्यायका महात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—प्रिये ! अब मैं चौथे अध्यायका माहात्म्य बतलाता हूँ, सुनो। भागीरथीके तटपर वाराणसी (बनारस) नामकी एक पुरी है। वहाँ विश्वनाथजीके मन्दिरमें भरत नामके एक योगनिष्ठ महात्मा रहते थे, जो प्रतिदिन आत्मचिन्तनमें तत्पर हो आदरपूर्वक गीताके चतुर्थ अध्यायका पाठ किया करते थे। उसके अध्याससे उनका अन्तःकरण निर्मल हो गया था। वे शीत-उष्ण आदि दृन्दोंसे कभी व्यथित नहीं होते थे। एक समयकी बात है, वे तपोधन नगरकी सीमामें स्थित देवताओंका दर्शन करनेकी इच्छासे भ्रमण करते हुए नगरसे बाहर निकल गये। वहाँ बेरके दो वृक्ष थे। उन्हींकी जड़में वे विश्राम करने लगे। एक वृक्षकी जड़में उन्होंने अपना मस्तक रखा था और दूसरे वृक्षके मूलमें उनका एक पैर टिका हुआ था। थोड़ी देर बाद जब वे तपस्वी चले गये, तब बेरके वे दोनों वृक्ष पाँच-ही-छः

दिनोंके भीतर सूख गये। उनमें पते और डालियाँ भी नहीं रह गयीं। तत्पश्चात् वे दोनों वृक्ष कहीं ब्राह्मणोंके पवित्र गृहमें दो कन्याओंके रूपमें उत्पन्न हुए।

वे दोनों कन्याएँ जब बढ़कर सात वर्षकी हो गयीं, तब एक दिन उन्होंने दूर देशोंसे घूमकर आते हुए भरतमुनिको देखा। उन्हें देखते ही वे दोनों उनके चरणोंमें पड़ गयीं और मीठी वाणीमें बोलीं—‘मुने ! आपकी ही कृपासे हम दोनोंका उद्धार हुआ है। हमने बेरकी योनि त्यागकर मानव-शरीर प्राप्त किया है।’ उनके इस प्रकार कहनेपर मुनिको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने पूछा—‘पुत्रियो ! मैंने कब और किस साधनसे तुम्हें मुक्त किया था ? साथ ही यह भी बताओ कि तुम्हारे बेरके वृक्ष होनेमें क्या कारण था ? क्योंकि इस विषयमें मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं है।’

तब वे कन्याएँ पहले उन्हें अपने बेर हो जानेका

कारण बतलाती हुई बोलीं—“मुने ! गोदावरी नदीके तटपर छिन्नपाप नामका एक उत्तम तीर्थ है, जो मनुष्योंको पुण्य प्रदान करनेवाला है। वह पावनताकी चरम सीमापर पहुँचा हुआ है। उस तीर्थमें सत्यतपा नामक एक तपस्वी बड़ी कठोर तपस्या कर रहे थे। वे ग्रीष्मऋतुमें प्रज्वलित अग्नियोंके बीचमें बैठते थे, वर्षाकालमें जलकी धाराओंसे उनके मस्तकके बाल सदा भींगे ही रहते थे तथा जाड़ेके समय जलमें निवास करनेके कारण उनके शरीरमें हमेशा रोंगटे खड़े रहते थे। वे बाहर-भीतरसे सदा शुद्ध रहते, समयपर तपस्या करते तथा मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए परम शान्ति प्राप्त करके आत्मामें ही रमण करते थे। वे अपनी विद्वत्ताके द्वारा जैसा व्याख्यान करते थे, उसे सुननेके लिये साक्षात् ब्रह्माजी भी प्रतिदिन उनके पास उपस्थित होते और प्रश्न करते थे। ब्रह्माजीके साथ उनका संकोच नहीं रह गया था; अतः उनके आनेपर भी वे सदा तपस्यामें मग्न रहते थे। परमात्माके ध्यानमें निरन्तर संलग्न रहनेके कारण उनकी तपस्या सदा बढ़ती रहती थी। सत्यतपाको जीवन्मुक्तके समान मानकर इन्द्रको अपने समृद्धिशाली पदके सम्बन्धमें कुछ भय हुआ। तब उन्होंने उनकी तपस्यामें सैकड़ों विघ्न डालने आरम्भ किये। अप्सराओंके समुदायसे हम दोनोंको बुलाकर इन्द्रने इस प्रकार आदेश दिया—‘तुम दोनों उस तपस्वीकी तपस्यामें विघ्न डालो, जो मुझे इन्द्रपदसे हटाकर स्वयं स्वर्गका राज्य भोगना चाहता है।’

“इन्द्रका यह आदेश पाकर हम दोनों उनके सामनेसे चलकर गोदावरीके तीरपर, जहाँ वे मुनि तपस्या करते थे, आयीं। वहाँ मन्द एवं गम्भीर स्वरसे बजते हुए मृदङ्ग तथा मधुर वेणुनादके साथ हम दोनोंने अन्य

अप्सराओंसहित मधुर स्वरमें गाना आरम्भ किया। इतना ही नहीं, उन योगी महात्माको वशमें करनेके लिये हमलोग स्वर, ताल और ल्यके साथ नृत्य भी करने लगीं। बीच-बीचमें जरा-जरा-सा अंचल खिसकनेपर उन्हें हमारी छाती भी दीख जाती थी। हम दोनोंकी उन्मत्त गति कामभावका उद्दीपन करनेवाली थी; किन्तु उसने उन निर्विकार चित्तवाले महात्माके मनमें क्रोधका सञ्चार कर दिया। तब उन्होंने हाथसे जल छोड़कर हमें क्रोधपूर्वक शाप दिया—‘अरी ! तुम दोनों गङ्गाजीके तटपर बेरके वृक्ष हो जाओ।’ यह सुनकर हमलोगोंने बड़ी विनयके साथ कहा—‘महात्मन् ! हम दोनों पराधीन थीं; अतः हमारे द्वारा जो दुष्कर्म बन गया है, उसे आप क्षमा करें।’ यों कहकर हमने मुनिको प्रसन्न कर लिया। तब उन पवित्र चित्तवाले मुनिने हमारे शापोद्धारकी अवधिं निश्चित करते हुए कहा—‘भरत मुनिके आनेतक ही तुमपर यह शाप लागू होगा। उसके बाद तुमलोगोंका मर्त्यलोकमें जन्म होगा और पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रहेगी।’

“मुने ! जिस समय हम दोनों बेर-वृक्षके रूपमें खड़ी थीं, उस समय आपने हमारे समीप आकर गीताके चौथे अध्यायका जप करते हुए हमारा उद्धार किया था; अतः हम आपको प्रणाम करती हैं। आपने केवल शापसे ही नहीं, इस भयानक संसारसे भी गीताके चतुर्थ अध्यायके पाठद्वारा हमें मुक्त कर दिया।”

श्रीभगवान् कहते हैं—उन दोनोंके इस प्रकार कहनेपर मुनि बहुत ही प्रसन्न हुए और उनसे पूजित हो विदा लेकर जैसे आये थे, वैसे ही चले गये तथा वे कन्याएँ भी बड़े आदरके साथ प्रतिदिन गीताके चतुर्थ अध्यायका पाठ करने लगीं, जिससे उनका उद्धार हो गया।



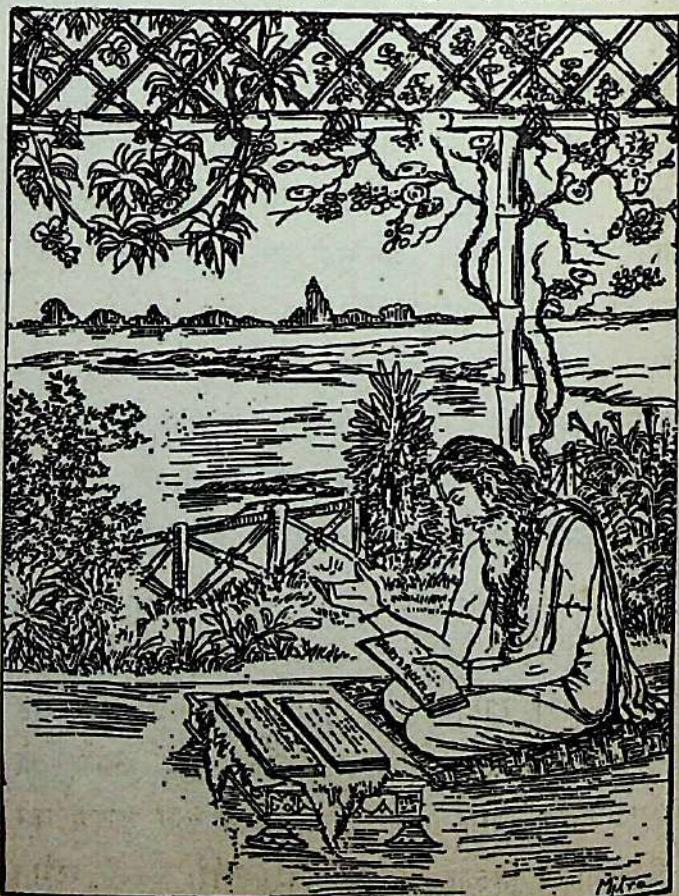
श्रीमद्भगवद्गीताके पाँचवें अध्यायका माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं—देवि ! अब सब लोगों-द्वारा सम्मानित पाँचवें अध्यायका माहात्म्य संक्षेपसे बतलाता हूँ, सावधान होकर सुनो । मद्रदेशमें पुरुकुत्सपुर नामक एक नगर है । उसमें पिङ्गल नामका एक ब्राह्मण रहता था । वह वेदपाठी ब्राह्मणोंके विव्यात वंशमें, जो सर्वथा निष्कलङ्घ था, उत्पन्न हुआ था; किन्तु अपने कुलके लिये उचित वेद-शास्त्रोंके स्वाध्यायको छोड़कर ढोल आदि बजाते हुए उसने नाच-गानमें मन लगाया । गीत, नृत्य और बाजा बजानेकी कलामें परिश्रम करके पिङ्गलने बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली और उसीसे उसका राजभवनमें भी प्रवेश हो गया । अब वह राजाके साथ रहने लगा और परायी स्त्रियोंको बुला-बुलाकर उनका उपभोग करने लगा । स्त्रियोंके सिवा और कहीं इसका मन नहीं लगता था । धीरे-धीरे अभिमान बढ़ जानेसे उच्छ्वस्त्र लोकर वह एकान्तमें राजासे दूसरोंके दोष बतलाने लगा । पिङ्गलकी एक स्त्री थी, जिसका नाम था अरुणा । वह नीच कुलमें उत्पन्न हुई थी और कामी पुरुषोंके साथ विहार करनेकी इच्छासे सदा उन्हींकी खोजमें घूमा करती थी । उसने पतिको अपने मार्गका कण्टक समझकर एक दिन आधी रातमें घरके भीतर ही उसका सिर काटकर मार डाला और उसकी लाशको जमीनमें गाड़ दिया । इस प्रकार प्राणोंसे वियुक्त होनेपर वह यमलोकमें पहुँचा और भीषण नरकोंका उपभोग करके निर्जन वनमें गिर्द्ध हुआ ।

अरुणा भी भगन्दर रोगसे अपने सुन्दर शरीरको त्याग कर घोर नरक भोगनेके पश्चात् उसी वनमें शुकी हुई । एक दिन वह दाना चुगनेकी इच्छासे इधर-उधर फुटकर रही थी, इतनेमें ही उस गिर्द्धने पूर्वजन्मके वैरका स्मरण करके उसे अपने तीखे नखोंसे फाड़ डाला । शुकी घायल होकर पानीसे भरी हुई मनुष्यकी खोपड़ीमें गिरी । गिर्द्ध पुनः उसकी ओर झापटा । इतनेमें ही जाल फैलनेवाले बहेलियोंने उसे भी बाणोंका निशाना बनाया । उसकी पूर्वजन्मकी पत्नी शुकी उस खोपड़ीके जलमें

झूबकर प्राण त्याग चुकी थी । फिर वह क्रूर पक्षी भी उसीमें गिरकर झूब गया । तब यमराजके दूत उन दोनोंको यमराजके लोकमें ले गये । वहाँ अपने पूर्वकृत पाप-कर्मको याद करके दोनों ही भयभीत हो रहे थे । तदनन्तर यमराजने जब उनके घृणित कर्मोंपर दृष्टिपात किया, तब उन्हें मालूम हुआ कि मृत्युके समय अकस्मात् खोपड़ीके जलमें स्नान करनेसे इन दोनोंका पाप नष्ट हो चुका है । तब उन्होंने उन दोनोंको मनोवाञ्छित लोकमें जानेकी आज्ञा दी । यह सुनकर अपने पापको याद करते हुए वे दोनों बड़े विस्मयमें पड़े और पास जाकर धर्मराजके चरणोंमें प्रणाम करके पूछने लगे—‘भगवन् ! हम दोनोंने पूर्वजन्ममें अत्यन्त घृणित पापका सञ्चय किया है । फिर हमें मनोवाञ्छित लोकोंमें भेजनेका क्या कारण है ? बताइये ।’

यमराजने कहा—गङ्गाके किनारे वट नामक एक उत्तम ब्रह्मज्ञानी रहते थे । वे एकान्तसेवी, ममतारहित, शान्त, विरक्त और किसीसे भी द्वेष न रखनेवाले थे ।



प्रतिदिन गीताके पाँचवें अध्यायका जप करना उनका सदाका नियम था । पाँचवें अध्यायको श्रवण कर लेनेपर महापापी पुरुष भी सनातन ब्रह्मका ज्ञान प्राप्त कर लेता है । उसी पुण्यके प्रभावसे शुद्धचित्त होकर उन्होंने अपने शरीरका परित्याग किया था । गीताके पाठसे जिनका शरीर निर्मल हो गया था, जो आत्मज्ञान प्राप्त कर चुके थे, उन्हीं महात्माकी खोपड़ीका जल पाकर तुम दोनों

पवित्र हो गये हो । अतः अब तुम दोनों मनोवाञ्छित लोकोंको जाओ; क्योंकि गीताके पाँचवें अध्यायके माहात्म्यसे तुम दोनों शुद्ध हो गये हो ।

श्रीभगवान् कहते हैं— सबके प्रति समान भाव रखनेवाले धर्मराजके द्वारा इस प्रकार समझाये जानेपर ये दोनों बहुत प्रसन्न हुए और विमानपर बैठकर वैकुण्ठधामको चले गये ।



श्रीमद्भगवद्गीताके छठे अध्यायका माहात्म्य

श्रीभगवान् कहते हैं— सुमुखि ! अब मैं छठे अध्यायका माहात्म्य बतलाता हूँ जिसे सुननेवाले मनुष्योंके लिये मुक्ति करतलगत हो जाती है । गोदावरी नदीके तटपर प्रतिष्ठानपुर (पैठण) नामक एक विशाल नगर है, जहाँ मैं पिप्पलेशके नामसे विख्यात होकर रहता हूँ । उस नगरमें जानश्रुति नामक एक राजा रहते थे, जो भूमप्डलकी प्रजाको अत्यन्त प्रिय थे । उनका प्रताप मार्त्प्ण-मप्डलके प्रचण्ड तेजके समान जान पड़ता था । प्रतिदिन होनेवाले उनके यज्ञके धुएंसे नन्दनवनके कल्पवृक्ष इस प्रकार काले पड़ गये थे, मानो राजाकी असाधारण दानशीलता देखकर वे लज्जित हो गये हों । उनके यज्ञमें प्राप्त पुरोडाशके रसाखादनमें सदा आसक्त होनेके कारण देवतालोग कभी प्रतिष्ठानपुरको छोड़कर बाहर नहीं जाते थे । उनके दानके समय छोड़े हुए जलकी धारा, प्रतापरूपी तेज और यज्ञके धूमोंसे पुष्ट होकर मेघ ठीक समयपर वर्षा करते थे । उस राजाके शासनकालमें ईतियों (खेतीमें होनेवाले छः प्रकारके उपद्रवों) के लिये कहीं थोड़ा भी स्थान नहीं मिलता था और अच्छी नीतियोंका सर्वत्र प्रसार होता था । वे बावली, कुएँ और पोखरे खुदवानेके बहाने मानो प्रतिदिन पृथ्वीके भीतरकी निधियोंका अवलोकन करते थे । एक समय राजाके दान, तप, यज्ञ और प्रजापालनसे सन्तुष्ट होकर स्वर्गके देवता उन्हें वर देनेके लिये आये । वे कमलनालके समान उज्ज्वल हंसोंका रूप धारण कर अपनी पाँखें हिलाते हुए आकाशमार्गसे चलने लगे ।

बड़ी उतावलीके साथ उड़ते हुए वे सभी हंस परस्पर बातचीत भी करते जाते थे । उनमेंसे भद्राश्व आदि दो-तीन हंस वेगसे उड़कर आगे निकल गये । तब पीछेवाले हंसोंने आगे जानेवालोंको संबोधित करके कहा—‘अरे भाई भद्राश्व ! तुमलोग वेगसे चलकर आगे क्यों हो गये ? यह मार्ग बड़ा दुर्गम है; इसमें हम सबको साथ मिलकर चलना चाहिये । क्या तुम्हें दिखायी नहीं देता, यह सामने ही पुण्यमूर्ति महाराज जानश्रुतिका तेजःपुंज अत्यन्त स्पष्ट रूपसे प्रकाशमान हो रहा है । [उस तेजसे भस्म होनेकी आशङ्का है, अतः सावधान होकर चलना चाहिये ।]’

पीछेवाले हंसोंके वचन सुनकर आगेवाले हंस हँस पड़े और उच्चस्वरसे उनकी बातोंकी अवहेलना करते हुए बोले—‘अरे भाई ! क्या इस राजा जानश्रुतिका तेज ब्रह्मवादी महात्मा रैकके तेजसे भी अधिक तीव्र है ?’

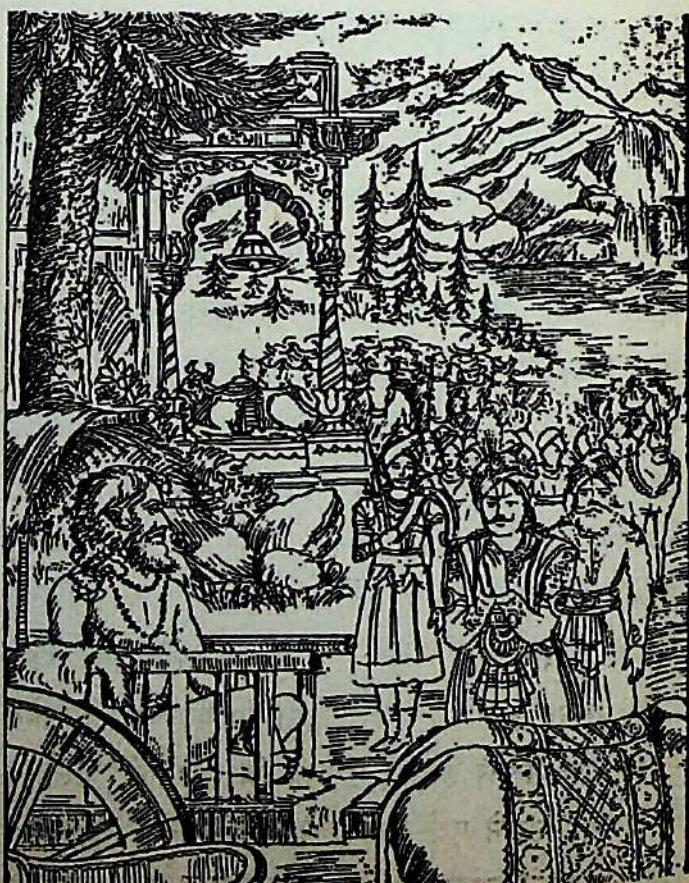
हंसोंकी ये बातें सुनकर राजा जानश्रुति अपने ऊँचे महलकी छतसे उत्तर गये और सुखपूर्वक आसनपर विराजमान हो अपने सारथिको बुलाकर बोले—‘जाओ, महात्मा रैकको यहाँ ले आओ ।’ राजाका यह अमृतके समान वचन सुनकर मह नामक सारथि प्रसन्नता प्रकट करता हुआ नगरसे बाहर निकला । सबसे पहले उसने मुक्तिदायिनी काशीपुरीकी यात्रा की, जहाँ जगत्के स्वामी भगवान् विश्वनाथ मनुष्योंको उपदेश दिया करते हैं । उसके बाद वह गयाक्षेत्रमें पहुँचा, जहाँ प्रफुल्ल नेत्रोंवाले भगवान् गदाधर सम्पूर्ण लोकोंका उद्धार करनेके लिये

निवास करते हैं। तदनन्तर नाना तीर्थोंमें भ्रमण करता हुआ सारथि पापनाशिनी मथुरापुरीमें गया; यह भगवान् श्रीकृष्णका आदि स्थान है, जो परम महान् एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। वेद और शास्त्रोंमें वह तीर्थ त्रिभुवनपति भगवान् गोविन्दके अवतारस्थानके नामसे प्रसिद्ध है। नाना देवता और ब्रह्मर्षि उसका सेवन करते हैं। मथुरा नगर कालिन्दी (यमुना) के किनारे शोभा पाता है। उसकी आकृति अर्द्धचन्द्रके समान प्रतीत होती है। वह सब तीर्थोंके निवाससे परिपूर्ण है। परम आनन्द प्रदान करनेके कारण सुन्दर प्रतीत होता है। गोवर्धन पर्वतके होनेसे मथुरामण्डलकी शोभा और भी बढ़ गयी है। वह पवित्र वृक्षों और लताओंसे आवृत है। उसमें बाहु वन हैं। वह परम पुण्यमय तथा सबको विश्राम देनेवाले श्रुतियोंके सारभूत भगवान् श्रीकृष्णकी आधारभूमि है।

तत्पश्चात् मथुरासे पश्चिम और उत्तर दिशाकी ओर बहुत दूरतक जानेपर सारथिको काश्मीर नामक नगर दिखायी दिया, जहाँ शङ्कके समान उज्ज्वल गगनचुम्बी महलोंकी पट्टियाँ भगवान् शङ्करके अद्वितीयकी भाँति शोभा पाती हैं। जहाँ ब्राह्मणोंके शास्त्रीय आलाप सुनकर मूक मनुष्य भी सुन्दर वाणी और पदोंका उच्चारण करते हुए देवताके समान हो जाते हैं। जहाँ निरन्तर होनेवाले यज-धूमसे व्याप्त होनेके कारण आकाश-मण्डल मेघोंसे धुलते रहनेपर भी अपनी कालिमा नहीं छोड़ता। जहाँ उपाध्यायके पास आकर छात्र जन्मकालीन अभ्याससे ही सम्पूर्ण कलाएँ स्वतः पढ़ लेते हैं तथा जहाँ माणिक्येश्वर नामसे प्रसिद्ध भगवान् चन्द्रशेखर देहधारियोंको वरदान देनेके लिये नित्य निवास करते हैं। काश्मीरके राजा माणिक्येशने दिग्विजयमें समस्त राजाओंको जीतकर भगवान् शिवका पूजन किया था, तभीसे उनका नाम माणिक्येश्वर हो गया था। उन्हींके मन्दिरके दरवाजेपर महात्मा रैक एक छोटी-सी गाड़ीपर बैठे अपने अङ्गोंको खुजलाते हुए वृक्षकी छायाका सेवन कर रहे थे। इसी अवस्थामें सारथिने उन्हें देखा। राजाके बताये हुए भिन्न-भिन्न चिह्नोंसे उसने शीघ्र ही रैकको पहचान लिया

और उनके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—‘ब्रह्मन्! आप किस स्थानपर रहते हैं? आपका पूरा नाम क्या है? आप तो सदा स्वच्छन्द विचरनेवाले हैं, फिर यहाँ किसलिये ठहरे हैं? इस समय आपका क्या करनेका विचार है?’

सारथिके ये वचन सुनकर परम आनन्दमें निमग्न महात्मा रैकने कुछ सोचकर उससे कहा—‘यद्यपि हम पूर्णकाम हैं—हमें किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है, तथापि कोई भी हमारी मनोवृत्तिके अनुसार परिचर्या कर सकता है।’ रैकके हार्दिक अभिप्रायको आदरपूर्वक ग्रहण करके सारथि धीरेसे राजाके पास चल दिया। वहाँ पहुँचकर राजाको प्रणाम करके उसने हाथ जोड़ सारा समाचार निवेदन किया। उस समय स्वामीके दर्शनसे उसके मनमें बड़ी प्रसन्नता थी। सारथिके वचन सुनकर राजाके नेत्र आश्र्यसे चकित हो उठे। उनके हृदयमें रैकका सत्कार करनेकी श्रद्धा जाग्रत् हुई। उन्होंने दो खचरियोंसे जुती हुई एक गाड़ी लेकर यात्रा की। साथ ही मोतीके हार, अच्छे-अच्छे वस्त्र और एक सहस्र गौँण भी ले लीं। काश्मीरमण्डलमें महात्मा रैक जहाँ रहते थे,



उस स्थानपर पहुँचकर राजाने सारी वस्तुएँ उनके आगे निवेदन कर दीं और पृथ्वीपर पड़कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। महात्मा रैक अत्यन्त भक्तिके साथ चरणोंमें पड़े हुए राजा जानश्रुतिपर कुपित हो उठे और बोले—‘रे शूद्र ! तू दुष्ट राजा है। क्या तू मेरा वृत्तान्त नहीं जानता ? यह खच्चरियोंसे जुती हुई अपनी ऊँची गाढ़ी ले जा। ये वस्त्र, ये मोतियोंके हार और ये दूध देनेवाली गौएँ भी स्वयं ही ले जा।’ इस तरह आज्ञा देकर रैकने राजाके मनमें भय उत्पन्न कर दिया। तब राजाने शापके भयसे महात्मा रैकके दोनों चरण पकड़ लिये और भक्तिपूर्वक कहा—‘ब्रह्मन् ! मुझपर प्रसन्न होइये। भगवन् ! आपमें यह अद्भुत माहात्म्य कैसे आया ? प्रसन्न होकर मुझे ठीक-ठीक बताइये।’

रैकने कहा—राजन् ! मैं प्रतिदिन गीताके छठे अध्यायका जप करता हूँ; इसीसे मेरी तेजोराशि देवताओंके लिये भी दुःसह है।

तदनन्तर परम बुद्धिमान् राजा जानश्रुतिने यत्पूर्वक महात्मा रैकसे गीताके छठे अध्यायका अभ्यास किया। इससे उन्हें मोक्षकी प्राप्ति हुई। इधर रैक भी भगवान् माणिक्येश्वरके समीप मोक्षदायक गीताके छठे अध्यायका जप करते हुए सुखसे रहने लगे। हंसका रूप धारण करके वरदान देनेके लिये आये हुए देवता भी विस्मित होकर खेच्छानुसार चले गये। जो मनुष्य सदा इस एक ही अध्यायका जप करता है, वह भी भगवान् विष्णुके ही स्वरूपको प्राप्त होता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

श्रीमद्भगवद्गीताके सातवें तथा आठवें अध्यायोंका माहात्म्य

भगवान् शिव कहते हैं—पार्वती ! अब मैं सातवें अध्यायका माहात्म्य बतलाता हूँ, जिसे सुनकर कानोंमें अमृत-राशि भर जाती है। पाटलिपुत्र नामक एक दुर्गम नगर है, जिसका गोपुर (द्वार) बहुत ही ऊँचा है। उस नगरमें शङ्कुकर्ण नामक एक ब्राह्मण रहता था; उसने वैश्य-वृत्तिका आश्रय लेकर बहुत धन कमाया, किन्तु न तो कभी पितरोंका तर्पण किया और न देवताओंका पूजन ही। वह धनोपार्जनमें तत्पर होकर राजाओंको ही भोज दिया करता था। एक समयकी बात है, उस ब्राह्मणने अपना चौथा विवाह करनेके लिये पुत्रों और बन्धुओंके साथ यात्रा की। मार्गमें आधी रातके समय जब वह सो रहा था, एक सर्पने कहींसे आकर उसकी बाँहमें काट लिया। उसके काटते ही ऐसी अवस्था हो गयी कि मणि, मन्त्र और ओषधि आदिसे भी उसके शरीरकी रक्षा असाध्य जान पड़ी। तत्पश्चात् कुछ ही क्षणोंमें उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। फिर बहुत समयके बाद वह प्रेत सर्पयोनिमें उत्पन्न हुआ। उसका चित्त धनकी वासनामें बँधा था। उसने पूर्व वृत्तान्तको स्मरण करके सोचा—‘मैंने जो घरके बाहर करोड़ोंकी संख्यामें अपना धन गाड़

रखा है, उससे इन पुत्रोंको वञ्चित करके स्वयं ही उसकी रक्षा करूँगा।’ एक दिन साँपकी योनिसे पीड़ित होकर पिताने स्वप्रमें अपने पुत्रोंके समक्ष आकर अपना मनोभाव बताया, तब उसके निरङ्कुश पुत्रोंने सबेरे उठकर बड़े विस्मयके साथ एक-दूसरेसे स्वप्रकी बातें कहीं। उनमेंसे मझला पुत्र कुदाल हाथमें लिये घरसे निकला और जहाँ उसके पिता सर्पयोनि धारण करके रहते थे, उस स्थानपर गया। यद्यपि उसे धनके स्थानका ठीक-ठीक पता नहीं था तो भी उसने चिह्नोंसे उसका ठीक निश्चय कर लिया और लोभबुद्धिसे वहाँ पहुँचकर बाँबीको खोदना आरम्भ किया। तब उस बाँबीसे बड़ा भयानक साँप प्रकट हुआ और बोला—ओ मूढ़ ! तू कौन है, किसलिये आया है, क्यों बिल खोद रहा है, अथवा किसने तुझे भेजा है ? ये सारी बातें मेरे सामने बता।’

पुत्र बोला—मैं आपका पुत्र हूँ। मेरा नाम शिव है। मैं रात्रिमें देखे हुए स्वप्नसे विस्मित होकर यहाँका सुवर्ण लेनेके कौतूहलसे आया हूँ।

पुत्रकी यह लोकनिन्दित वाणी सुनकर वह साँप हँसता हुआ उच्चस्वरसे इस प्रकार स्पष्ट वचन

बोला—‘यदि तू मेरा पुत्र है तो मुझे शीघ्र ही बन्धनसे मुक्त कर। मैं पूर्वजन्मके गाड़े हुए धनके ही लिये सर्पयोनिमें उत्पन्न हुआ हूँ।’

पुत्रने पूछा—पिताजी ! आपकी मुक्ति कैसे होगी ? इसका उपाय मुझे बताइये; क्योंकि मैं इस रातमें सब लोगोंको छोड़कर आपके पास आया हूँ।

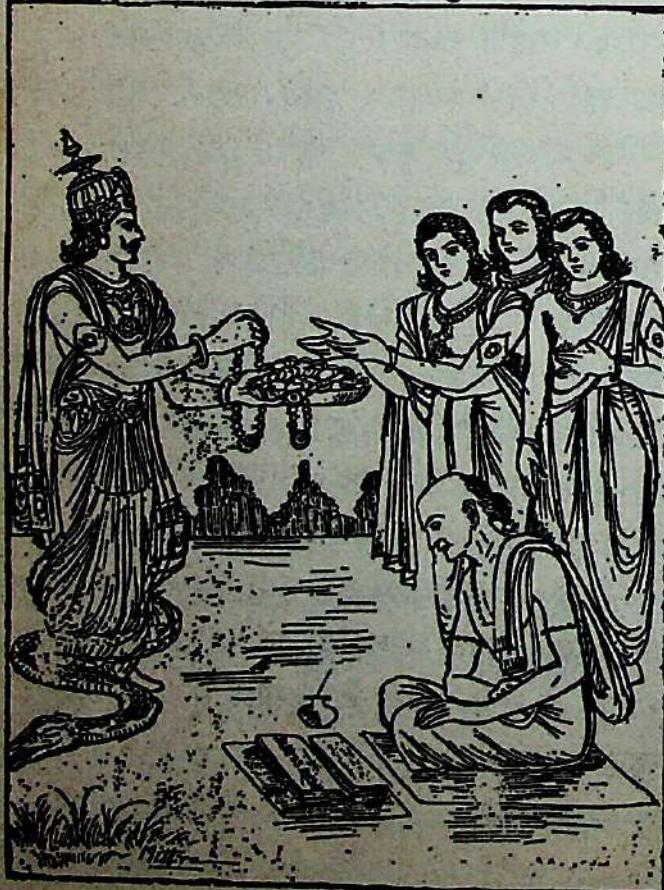
पिताने कहा—बेटा ! गीताके अमृतमय सप्तम अध्यायको छोड़कर मुझे मुक्त करनेमें तीर्थ, दान, तप और यज्ञ भी सर्वथा समर्थ नहीं हैं। केवल गीताका सातवाँ अध्याय ही प्राणियोंके जरा-मृत्यु आदि दुःखको दूर करनेवाला है। पुत्र ! मेरे श्रद्धके दिन सप्तम अध्यायका पाठ करनेवाले ब्राह्मणको श्रद्धापूर्वक भोजन कराओ। इससे निस्सन्देह मेरी मुक्ति हो जायगी। बत्स ! अपनी शक्तिके अनुसार पूर्ण श्रद्धाके साथ वेद-विद्यामें प्रवीण अन्य ब्राह्मणोंको भी भोजन कराना।

सर्पयोनिमें पड़े हुए पिताके ये वचन सुनकर सभी पुत्रोंने उसकी आज्ञाके अनुसार तथा उससे भी अधिक किया। तब शङ्कुकर्णने अपने सर्पशरीरको त्यागकर दिव्य देह धारण किया और सारा धन पुत्रोंके अधीन कर-

दिया। पिताने करोड़ोंकी संख्यामें जो धन बाँटकर दिया था, उससे वे सदाचारी पुत्र बहुत प्रसन्न हुए। उनकी बुद्धि धर्ममें लगी हुई थी; इसलिये उन्होंने बावली, कुआँ, पोखरा, यज्ञ तथा देवमन्दिरके लिये उस धनका उपयोग किया और अन्नशाला भी बनवायी। तत्पश्चात् सातवें अध्यायका सदा जप करते हुए उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया। पार्वती ! यह तुम्हें सातवें अध्यायका माहात्म्य बताया गया है; जिसके श्रवणमात्रसे मानव सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है।

भगवान् शिव कहते हैं—देवि ! अब आठवें अध्यायका माहात्म्य सुनो ! उसके सुननेसे तुम्हें बड़ी प्रसन्नता होगी। [लक्ष्मीजीके पूछनेपर भगवान् विष्णुने उन्हें इस प्रकार अष्टम अध्यायका माहात्म्य बतलाया था।] दक्षिणमें आमर्दकपुर नामक एक प्रसिद्ध नगर है। वहाँ भावशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था, जिसने वेश्याको पत्नी बनाकर रखा था। वह मांस खाता, मदिरा पीता, साधुओंका धन चुराता, परायी स्त्रीसे व्यभिचार करता और शिकार खेलनेमें दिलचस्पी रखता था। वह बड़े भयानक खभावका था और मनमें बड़े-बड़े हौसले रखता था। एक दिन मदिरा पीनेवालोंका समाज जुटा था। उसमें भावशर्मने भर पेट ताड़ी पी—खूब गलेतक उसे चढ़ाया; अतः अजीर्णसे अत्यन्त पीड़ित होकर वह पापात्मा कालवश मर गया और बहुत बड़ा ताड़का वृक्ष हुआ। उसकी घनी और ठण्डी छायाका आश्रय लेकर ब्रह्म-राक्षसभावको प्राप्त हुए कोई पति-पत्नी वहाँ रहा करते थे।

उनके पूर्वजन्मकी घटना इस प्रकार है। एक कुशीबल नामक ब्राह्मण था, जो वेद-वेदाङ्गके तत्त्वोंका ज्ञाता, सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थका विशेषज्ञ और सदाचारी था। उसकी स्त्रीका नाम कुमति था। वह बड़े खोटे विचारकी थी। वह ब्राह्मण विद्वान् होनेपर भी अत्यन्त लोभवश अपनी स्त्रीके साथ प्रतिदिन भैंस, कालपुरुष और घोड़े आदि बड़े दानोंको ग्रहण किया करता था; परन्तु दूसरे ब्राह्मणोंको दानमें मिली हुई कौड़ी भी नहीं देता था। वे ही दोनों पति-पत्नी कालवश



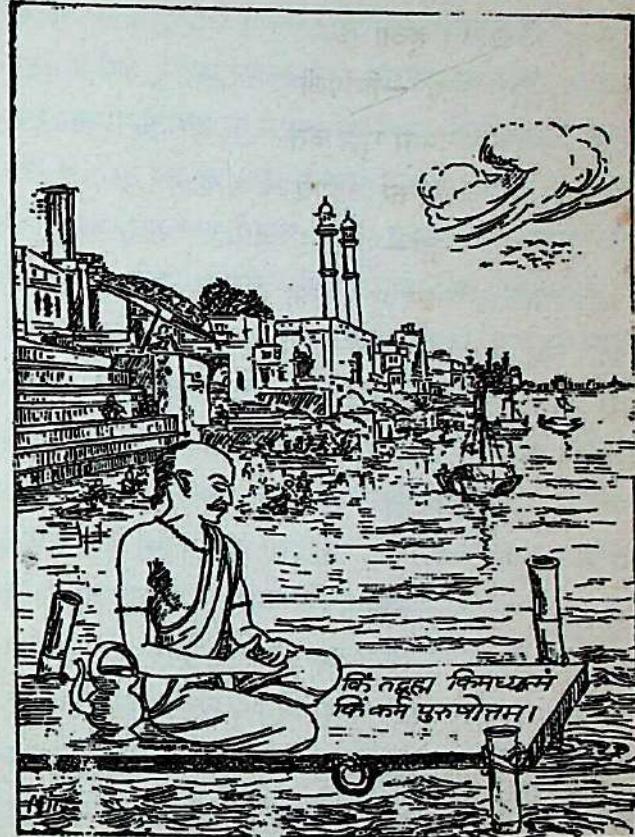
मृत्युको प्राप्त होकर ब्रह्मराक्षस हुए। वे भूख और प्याससे पीड़ित हो इस पृथ्वीपर घूमते हुए उसी ताढ़-वृक्षके पास आये और उसके मूल भागमें विश्राम करने लगे। इसके बाद पत्नीने पतिसे पूछा—‘नाथ ! हमलोगोंका यह महान् दुःख कैसे दूर होगा तथा इस ब्रह्मराक्षसयोनिसे किस प्रकार हम दोनोंकी मुक्ति होगी ?’ तब उस ब्राह्मणने कहा—‘ब्रह्मविद्याके उपदेश, अध्यात्म-तत्त्वके विचार और कर्मविधिके ज्ञान बिना किस प्रकार सङ्कटसे छुटकारा मिल सकता है !’

यह सुनकर पत्नीने पूछा—‘किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम’ (पुरुषोत्तम ! वह ब्रह्म क्या है ? अध्यात्म क्या है और कर्म कौन-सा है ?) उसकी पत्नीके इतना कहते ही जो आश्चर्यकी घटना घटित हुई, उसको सुनो। उपर्युक्त वाक्य गीताके आठवें अध्यायका आधा श्लोक था। उसके श्रवणसे वह वृक्ष उस समय ताढ़के रूपको त्यागकर भावशर्मा नामक ब्राह्मण हो गया। तल्काल ज्ञान होनेसे विशुद्धचित्त होकर वह पापके चोलेसे मुक्त हो गया। तथा उस आधे श्लोकके ही माहात्म्यसे वे पति-पत्नी भी मुक्त हो गये। उनके मुखसे दैवात् ही आठवें अध्यायका आधा श्लोक निकल पड़ा था। तदनन्तर आकाशसे एक दिव्य विमान आया और वे दोनों पति-पत्नी उस विमानपर आरूढ़ होकर स्वर्गलोकको चले गये। वहाँका यह सारा वृत्तान्त अत्यन्त आश्चर्यजनक था।

उसके बाद उस बुद्धिमान् ब्राह्मण भावशर्माने आदरपूर्वक उस आधे श्लोकको लिखा और देवदेव जनार्दनकी आराधना करनेकी इच्छासे वह मुक्तिदायिनी काशीपुरीमें चला गया। वहाँ उस उदार बुद्धिवाले ब्राह्मणने भारी तपस्या आरम्भ की। उसी समय क्षीरसागरकी कन्या भगवती लक्ष्मीने हाथ जोड़कर देवताओंके भी देवता जगत्पति जनार्दनसे पूछा—‘नाथ ! आप सहसा नींद त्यागकर खड़े क्यों हो गये ?’

श्रीभगवान् बोले—देवि ! काशीपुरीमें

भागीरथीके तटपर बुद्धिमान् ब्राह्मण भावशर्मा मेरे भक्तिरससे परिपूर्ण होकर अत्यन्त कठोर तपस्या कर रहा



है। वह अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके गीताके आठवें अध्यायके आधे श्लोकका जप करता है। मैं उसकी तपस्यासे बहुत सन्तुष्ट हूँ। बहुत देरसे उसकी तपस्याके अनुरूप फलका विचार कर रहा था। प्रिये ! इस समय वह फल देनेको मैं उत्कण्ठित हूँ।

पार्वतीजीने पूछा—भगवन् ! श्रीहरि सदा प्रसन्न होनेपर भी जिसके लिये चिन्तित हो उठे थे, उस भगवद्भक्त भावशर्माने कौन-सा फल प्राप्त किया ?

श्रीमहादेवजी बोले—देवि ! द्विजश्रेष्ठ भावशर्मा प्रसन्न हुए भगवान् विष्णुके प्रसादको पाकर आत्यन्तिक सुख (मोक्ष) को प्राप्त हुआ तथा उसके अन्य वंशज भी, जो नरक-यातनामें पड़े थे, उसीके शुभकर्मसे भगवद्भामको प्राप्त हुए। पार्वती ! यह आठवें अध्यायका माहात्म्य थोड़ेमें ही तुम्हें बताया है। इसपर सदा विचार करते रहना चाहिये।

श्रीमद्भगवद्गीताके नवें और दसवें अध्यायोंका माहात्म्य

महादेवजी कहते हैं—पार्वती ! अब मैं आदर-पूर्वक नवम अध्यायके माहात्म्यका वर्णन करूँगा, तुम स्थिर होकर सुनो । नर्मदाके तटपर माहिष्मती नामकी एक नगरी है । वहाँ माधव नामके एक ब्राह्मण रहते थे, जो वेद-वेदाङ्गोंके तत्त्वज्ञ और समय-समयपर आनेवाले अतिथियोंके प्रेमी थे । उन्होंने विद्याके द्वारा बहुत धन कमाकर एक महान् यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया । उस यज्ञमें बलि देनेके लिये एक बकरा मँगाया गया । जब उसके शरीरकी पूजा हो गयी, तब सबको आश्र्यमें डालते हुए उस बकरेने हँसकर उच्च स्वरसे कहा—‘ब्रह्मन् ! इन बहुत-से यज्ञोंद्वारा क्या लाभ है । इनका फल तो नष्ट हो जानेवाला है तथा ये जन्म, जरा और मृत्युके भी कारण हैं । यह सब करनेपर भी मेरी जो वर्तमान दशा है, इसे देख लो ।’ बकरेके इस अत्यन्त कौतूहलजनक वचनको सुनकर यज्ञमण्डपमें रहनेवाले सभी लोग बहुत ही विस्मित हुए । तब वे यजमान ब्राह्मण हाथ जोड़ अपलक नेत्रोंसे देखते हुए बकरेको प्रणाम करके श्रद्धा और आदरके साथ पूछने लगे ।

ब्राह्मण बोले—आप किस जातिके थे ? आपका स्वभाव और आचरण कैसा था ? तथा किस कर्मसे आपको बकरेकी योनि प्राप्त हुई ? यह सब मुझे बताइये ।

बकरा बोला—ब्रह्मन् ! मैं पूर्वजन्ममें ब्राह्मणोंके अत्यन्त निर्मल कुलमें उत्पन्न हुआ था । समस्त यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला और वेद-विद्यामें प्रवीण था । एक दिन मेरी खीने भगवती दुर्गाकी भक्तिसे विनम्र होकर अपने बालकके रोगकी शान्तिके लिये बलि देनेके निमित्त मुझसे एक बकरा माँगा । तत्पश्चात् जब चण्डिकाके मन्दिरमें वह बकरा मारा जाने लगा, उस समय उसकी माताने मुझे शाप दिया—‘ओ ब्राह्मणोंमें नीच, पापी ! तू मेरे बच्चेका वध करना चाहता है; इसलिये तू भी बकरेकी योनिमें जन्म लेगा ।’ द्विजश्रेष्ठ ! तब कालबद्ध मृत्युको प्राप्त होकर मैं बकरा हुआ । यद्यपि

मैं पशु-योनिमें पड़ा हूँ, तो भी मुझे अपने पूर्वजन्मोंका स्मरण बना हुआ है । ब्रह्मन् ! यदि आपको सुननेकी उत्कण्ठा हो, तो मैं एक और भी आश्र्यर्थकी बात बताता हूँ । कुरुक्षेत्र नामका एक नगर है, जो मोक्ष प्रदान करनेवाला है । वहाँ चन्द्रशर्मा नामक एक सूर्यवंशी राजा राज्य करते थे । एक समय जब कि सूर्यग्रहण लगा था, राजाने बड़ी श्रद्धाके साथ कालपुरुषका दान करनेकी तैयारी की । उन्होंने वेद-वेदाङ्गोंके पारगामी एक विद्वान् ब्राह्मणको बुलवाया और पुरोहितके साथ वे तीर्थके पावन जलसे स्नान करनेको चले । तीर्थके पास पहुँचकर राजाने स्नान किया और दो वस्त्र धारण किये । फिर पवित्र एवं प्रसन्नचित्त होकर उन्होंने श्वेत चन्दन लगाया और बगलमें खड़े हुए पुरोहितका हाथ पकड़कर तत्कालीनचित्त मनुष्योंसे धिरे हुए अपने स्थानपर लौट आये । आनेपर राजाने यथोचित विधिसे भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको कालपुरुषका दान किया ।

तब कालपुरुषका हृदय चीरकर उसमेंसे एक पापात्मा चाण्डाल प्रकट हुआ । फिर थोड़ी देरके बाद निन्दा भी चाण्डालीका रूप धारण करके कालपुरुषके शरीरसे निकली और ब्राह्मणके पास आ गयी । इस प्रकार चाण्डालोंकी वह जोड़ी आँखें लाल किये निकली और ब्राह्मणके शरीरमें हठात् प्रवेश करने लगी । ब्राह्मण मन-ही-मन गीताके नवम अध्यायका जप करते थे और राजा चुपचाप यह सब कौतुक देखने लगे । ब्राह्मणके अन्तःकरणमें भगवान् गोविन्द शयन करते थे । वे उन्हींका ध्यान करने लगे । ब्राह्मणने [जब गीताके नवम अध्यायका जप करते हुए] अपने आश्र्यभूत भगवान्का ध्यान किया, उस समय गीताके अक्षरोंसे प्रकट हुए विष्णुदूतोंद्वारा पीड़ित होकर वे दोनों चाण्डाल भाग चले । उनका उद्योग निष्फल हो गया । इस प्रकार इस घटनाको प्रत्यक्ष देखकर राजाके नेत्र आश्र्यसे चकित हो उठे । उन्होंने ब्राह्मणसे पूछा—‘विप्रवर ! इस महाभयङ्कर आपत्तिको आपने कैसे पार किया ? आप किस मन्त्रका

जप तथा किस देवताका स्मरण कर रहे थे ? वह पुरुष तथा वह स्त्री कौन थी ? वे दोनों कैसे उपस्थित हुए ? फिर वे शान्त कैसे हो गये ? यह सब मुझे बतलाइये ।



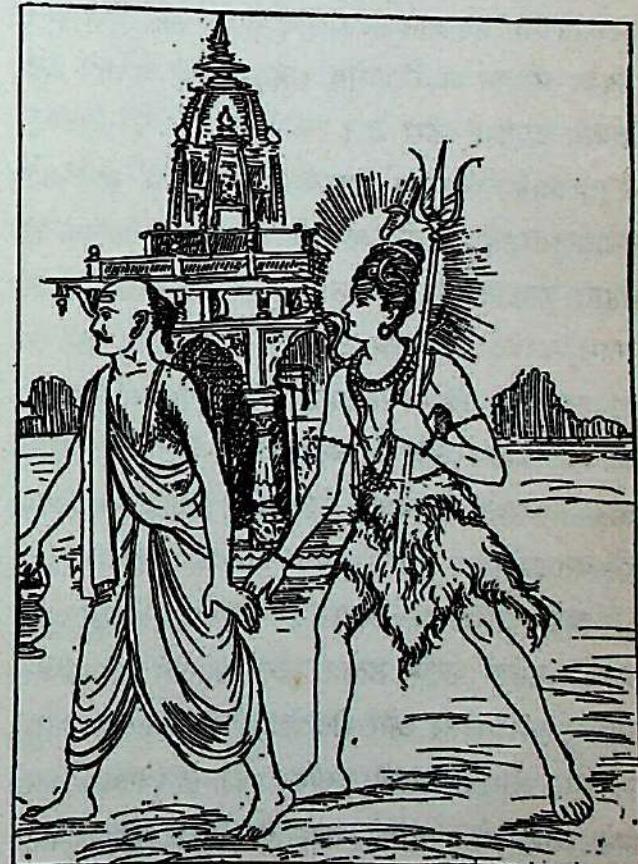
ब्राह्मणने कहा—राजन् ! चाण्डालका रूप धारण करके भयङ्कर पाप ही प्रकट हुआ था तथा वह स्त्री निन्दाकी साक्षात् मूर्ति थी । मैं इन दोनोंको ऐसा ही समझता हूँ । उस समय मैं गीताके नवें अध्यायके मन्त्रोंकी माला जपता था । उसीका माहात्म्य है कि सारा सङ्कट दूर हो गया । महीपते ! मैं नित्य ही गीताके नवम अध्यायका जप करता हूँ । उसीके प्रभावसे प्रतिग्रहजनित आपत्तियोंके पार हो सका हूँ ।

यह सुनकर राजाने उसी ब्राह्मणसे गीताके नवम अध्यायका अभ्यास किया, फिर वे दोनों ही परमशान्ति (मोक्ष) को प्राप्त हो गये ।

[यह कथा सुनकर ब्राह्मणने बकरेको बन्धनसे मुक्त कर दिया और गीताके अभ्याससे परमगतिको प्राप्त किया ।]

भगवान् शिव कहते हैं—सुन्दर ! अब तुम दशम अध्यायके माहात्म्यकी परम पावन कथा सुनो,

जो स्वर्गरूपी दुर्गमें जानेके लिये सुन्दर सोपान और प्रभावकी चरम सीमा है । काशीपुरीमें धीरबुद्धि नामसे विख्यात एक ब्राह्मण था, जो मुझमें नन्दीके समान भक्ति रखता था । वह पावन कीर्तिके अर्जनमें तत्पर रहनेवाला, शान्तचित्त और हिंसा, कठोरता एवं दुःसाहससे दूर रहनेवाला था । जितेन्द्रिय होनेके कारण वह निवृत्तिमार्गमें ही स्थित रहता था । उसने वेदरूपी समुद्रका पार पालिया था । वह सम्पूर्ण शास्त्रोंके तात्पर्यका ज्ञाता था । उसका चित्त सदा मेरे ध्यानमें संलग्न रहता था । वह मनको अन्तरात्मामें लगाकर सदा आत्मतत्त्वका साक्षात्कार किया करता था; अतः जब वह चलने लगता तो मैं प्रेमवश उसके पीछे दौड़-दौड़कर उसे हाथका सहारा देता रहता था ।



यह देख मेरे पार्षद भृङ्गिरिटिने पूछा—
भगवन् ! इस प्रकार भला, किसने आपका दर्शन किया होगा । इस महात्माने कौन-सा तप, होम अथवा जप किया है कि स्वयं आप ही पद-पदपर इसे हाथका सहारा देते चलते हैं ?

भृङ्गिरिटिका यह प्रश्न सुनकर मैंने इस प्रकार उत्तर

देना आरम्भ किया । एक समयकी बात है, कैलास-पर्वतके पार्श्वभावमें पुन्नाग वनके भीतर चन्द्रमाकी अमृतमयी किरणोंसे धुली हुई भूमिमें एक वेदीका आश्रय लेकर मैं बैठा हुआ था । मेरे बैठनेके क्षणभर बाद ही सहसा बड़े जोरकी आँधी उठी, वहाँके वृक्षोंकी शाखाएँ नीचे-ऊपर होकर आपसमें टकराने लगीं, कितनी ही ठहनियाँ टूट-टूटकर बिखर गयीं । पर्वतकी अविचल छाया भी हिलने लगी । इसके बाद वहाँ महान् भयङ्कर शब्द हुआ । जिससे पर्वतकी कन्दराएँ प्रतिघ्वनित हो उठीं । तदनन्तर आकाशसे कोई विशाल पक्षी उतरा, जिसकी कान्ति काले मेघके समान थी । वह कज्जलकी राशि, अन्धकारके समूह अथवा पंख कटे हुए काले पर्वत-सा जान पड़ता था । पैरोंसे पृथ्वीका सहारा लेकर उस पक्षीने मुझे प्रणाम किया और एक सुन्दर नवीन कमल मेरे चरणोंमें रखकर स्पष्ट वाणीमें स्तुति करनी आरम्भ की ।

पक्षी बोला—देव ! आपकी जय हो । आप चिदानन्दमयी सुधाके सागर तथा जगत्के पालक हैं । सदा सन्देवनासे युक्त एवं अनासक्तिकी लहरोंसे उल्लसित हैं । आपके वैभवका कहीं अन्त नहीं है । आपकी जय हो । अद्वैतवासनासे परिपूर्ण बुद्धिके द्वारा आप त्रिविध मलोंसे रहित हैं । आप जितेन्द्रिय भक्तोंके अधीन रहते हैं तथा ध्यानमें आपके स्वरूपका साक्षात्कार होता है । आप अविद्यामय उपाधिसे रहित, नित्यमुक्त, निराकार, निरामय, असीम, अहङ्कारशून्य, आवरणरहित और निर्गुण हैं । आपके चरणकमल शरणागत भक्तोंकी रक्षा करनेमें प्रवीण हैं । अपने भयङ्कर ललाटरूपी महासर्पकी विष-ज्वालासे आपने कामदेवको भस्म किया है । आपकी जय हो । आप प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे दूर होते हुए भी प्रामाण्यस्वरूप हैं । आपको बासन्बार नमस्कार है । चैतन्यके स्वामी तथा त्रिभुवनरूप-धारी आपको प्रणाम है । मैं श्रेष्ठ योगियोद्वारा चुम्बित आपके उन चरण-कमलोंकी बन्दना करता हूँ, जो अपार भव-पापके समुद्रसे पार उतारनेमें अद्भुत शक्तिशाली हैं । महादेव ! साक्षात् ब्रह्मस्ति भी आपकी स्तुति करनेकी

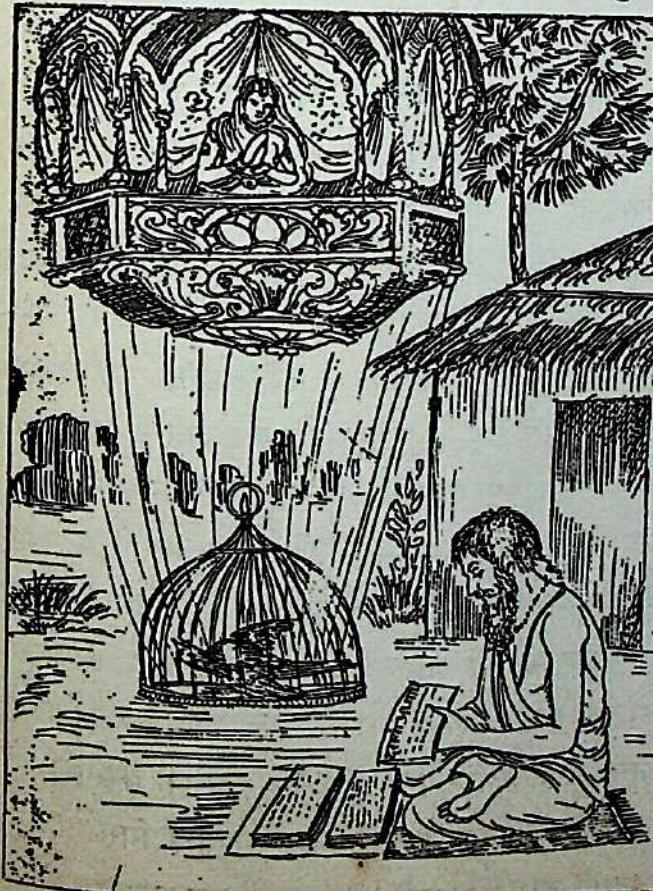
धृष्टता नहीं कर सकते । सहस्र मुखोंवाले नागराज शेषमें भी इतनी चातुरी नहीं है कि वे आपके गुणोंका वर्णन कर सकें । फिर मेरे-जैसे छोटी बुद्धिवाले पक्षीकी तो बिसात ही क्या है ।

उस पक्षीके द्वारा किये हुए इस स्तोत्रको सुनकर मैंने उससे पूछा—‘विहङ्गम ! तुम कौन हो और कहाँसे आये हो ? तुम्हारी आकृति तो हंस-जैसी है, मगर रंग कौएका मिला है । तुम जिस प्रयोजनको लेकर यहाँ आये हो, उसे बताओ ।’

पक्षी बोला—देवेश ! मुझे ब्रह्माजीका हस जानिये । धूजटि ! जिस कर्मसे मेरे शरीरमें इस समय कालिमा आ गयी है, उसे सुनिये । प्रभो ! यद्यपि आप सर्वज्ञ हैं [अतः आपसे कोई भी बात छिपी नहीं है] तथापि यदि आप पूछते हैं तो बतलाता हूँ । सौराष्ट्र (सूरत) नगरके पास एक सुन्दर सरोवर है, जिसमें कमल लहलहाते रहते थे । उसीमेंसे बालचन्द्रमाके दुकड़े-जैसे श्वेत मृणालोंके ग्रास लेकर मैं बड़ी तीव्र गतिसे आकाशमें उड़ रहा था । उड़ते-उड़ते सहसा वहाँसे पृथ्वीपर गिर पड़ा । जब होशमें आया और अपने गिरनेका कोई कारण न देख सका तो मन-ही-मन सोचने लगा—‘अहो ! यह मुझपर क्या आ पड़ा ? आज मेरा पतन कैसे हो गया ? पके हुए कपूरके समान मेरे श्वेत शरीरमें यह कालिमा कैसे आ गयी ?’ इस प्रकार विस्मित होकर मैं अभी विचार ही कर रहा था कि उस पोखरेके कमलोंमेंसे मुझे ऐसी वाणी सुनायी दी—‘हंस ! उठो, मैं तुम्हारे गिरने और काले होनेका कारण बताती हूँ।’ तब मैं उठकर सरोवरके बीचमें गया और वहाँ पाँच कमलोंसे युक्त एक सुन्दर कमलिनीको देखा । उसको प्रणाम करके मैंने प्रदक्षिणा की और अपने पतनका सारा कारण पूछा ।

कमलिनी बोली—कलहंस ! तुम आकाश-मार्गसे मुझे लाँघकर गये हो, उसी पातकके परिणामवश तुम्हें पृथ्वीपर गिरना पड़ा है तथा उसीके कारण तुम्हरे शरीरमें कालिमा दिखायी देती है । तुम्हें गिरा देख मेरे हृदयमें दया भर आयी और जब मैं इस मध्यम कमलके

द्वारा बोलने लगी हैं, उस समय मेरे मुखसे निकली हुई सुंगन्धको सूँघकर साठ हजार भँवरे स्वर्गलोकको प्राप्त हो गये हैं। पक्षिराज ! जिस कारण मुझमें इतना वैभव—ऐसा प्रभाव आया है, उसे बतलाती हैं सुनो ! इस जन्मसे पहले तीसरे जन्ममें मैं इस पृथ्वीपर एक ब्राह्मणकी कन्याके रूपमें उत्पन्न हुई थी। उस समय मेरा नाम सरोजवदना था। मैं गुरुजनोंकी सेवा करती हुई सदा एकमात्र पातिव्रत्यके पालनमें तत्पर रहती थी। एक दिनकी बात है, मैं एक मैनाको पढ़ा रही थी। इससे पतिसेवामें कुछ विलम्ब हो गया। इससे पतिदेवता कुपित हो गये और उन्होंने शाप दिया—‘पापिनी ! तू मैना हो जा !’ मरनेके बाद यद्यपि मैं मैना ही हुई, तथापि पातिव्रत्यके प्रसादसे मुनियोंके ही घरमें मुझे आश्रय मिला। किसी मुनिकन्याने मेरा पालन-पोषण किया। मैं जिनके घरमें थी, वे ब्राह्मण प्रतिदिन प्रातःकाल विभूतियोग नामसे प्रसिद्ध गीताके दसवें अध्यायका पाठ करते थे और मैं उस पापहारी अध्यायको सुना करती थी। विहङ्गम ! काल आनेपर मैं मैनाका शरीर छोड़कर दशम अध्यायके माहात्म्यसे स्वर्गलोकमें अप्सरा हुई।



मेरा नाम पद्मावती हुआ और मैं पद्माकी प्यारी सखी हो गयी। एक दिन मैं विमानसे आकाशमें विचर रही थी। उस समय सुन्दर कमलोंसे सुशोभित इस रमणीय सरोवरपर मेरी दृष्टि पड़ी और इसमें उत्तरकर ज्यों ही मैंने जलक्रीड़ा आरम्भ की, त्यों ही दुर्वासा मुनि आ धमके। उन्होंने वस्त्रहीन अवस्थामें मुझे देख लिया। उनके धयसे मैंने स्वयं ही यह कमलिनीका रूप धारण कर लिया। मेरे दोनों पैर दो कमल हुए। दोनों हाथ भी दो कमल हो गये और शेष अङ्गोंके साथ मेरा मुख भी एक कमल हुआ। इस प्रकार मैं पाँच कमलोंसे युक्त हुई। मुनिवर दुर्वासाने मुझे देखा। उनके नेत्र क्रोधाग्रिसे जल रहे थे। वे बोले—‘पापिनी ! तू इसी रूपमें सौ वर्षोंतक पड़ी रह।’ यह शाप देकर वे क्षणभरमें अन्तर्धान हो गये। कमलिनी होनेपर भी विभूति-योगाध्यायके माहात्म्यसे मेरी वाणी लुप्त नहीं हुई है। मुझे लाँघनेमात्रके अपराधसे तुम पृथ्वीपर गिरे हो। पक्षिराज ! यहाँ खड़े हुए तुम्हरे सामने ही आज मेरे शापकी निवृत्ति हो रही है, क्योंकि आज सौ वर्ष पूरे हो गये। मेरे द्वारा गाये जाते हुए उस उत्तम अध्यायको तुम भी सुन लो। उसके श्रवणमात्रसे तुम भी आज ही मुक्त हो जाओगे।

यों कहकर पद्मिनीने स्पष्ट एवं सुन्दर वाणीमें दसवें अध्यायका पाठ किया और वह मुक्त हो गयी। उसे सुननेके बाद उसीके दिये हुए इस उत्तम कमलको लाकर मैंने आपको अर्पण किया है।

इतनी कथा सुनाकर उस पक्षीने अपना शरीर त्याग दिया। यह एक अद्भुत-सी घटना हुई। वही पक्षी अब दसवें अध्यायके प्रभावसे ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुआ है। जन्मसे ही अभ्यास होनेके कारण शैशवावस्थासे ही इसके मुखसे सदा गीताके दसवें अध्यायका उच्चारण हुआ करता है। दसवें अध्यायके अर्थ-चिन्तनका यह परिणाम हुआ है कि यह सब भूतोंमें स्थित शङ्ख-चक्रधारी भगवान् विष्णुका सदा ही दर्शन करता रहता है। इसकी स्नेहपूर्ण दृष्टि जब कभी किसी देहधारीके शरीरपर पड़ जाती है, तो वह चाहे शराबी और ब्रह्महत्यार ही क्यों न हो, मुक्त हो जाता है। तथा

पूर्वजन्ममें अभ्यास किये हुए दसवें अध्यायके माहात्म्यसे इसको दुर्लभ तत्त्वज्ञान प्राप्त है तथा इसने जीवन्मुक्ति भी पा ली है। अतः जब यह रास्ता चलने लगता है तो मैं इसे हाथका सहारा दिये रहता हूँ। भृङ्गिरिटे ! यह सब दसवें अध्यायकी ही महामहिमा है।

पार्वती ! इस प्रकार मैंने भृङ्गिरिटे के सामने जो पापनाशक कथा कही थी, वही यहाँ तुमसे भी कही है। नर हो या नारी, अथवा कोई भी क्यों न हो, इस दसवें अध्यायके श्रवणमात्रसे उसे सब आश्रमोंके पालनका फल प्राप्त होता है।



श्रीमद्भगवद्गीताके ग्यारहवें अध्यायका माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं—प्रिये ! गीताके वर्णनसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा एवं विश्वरूप अध्यायके पावन माहात्म्यको श्रवण करो। विशाल नेत्रोंवाली पार्वती ! इस अध्यायके माहात्म्यका पूरा-पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता। इसके सम्बन्धमें सहस्रों कथाएँ हैं। उनमेंसे एक यहाँ कही जाती है। प्रणीता नदीके तटपर मेघङ्कर नामसे विश्वात एक बहुत बड़ा नगर है। उसके प्राकार और गोपुर बहुत ऊँचे हैं। वहाँ बड़ी-बड़ी विश्रामशालाएँ हैं, जिनमें सोनेके खंभे शोभा दे रहे हैं। उस नगरमें श्रीमान्, सुखी, शान्त, सदाचारी तथा जितेन्द्रिय मनुष्योंका निवास है। वहाँ हाथमें शार्ङ्ग-नामक धनुष धारण करनेवाले जगदीश्वर भगवान् विष्णु विराजमान हैं। वे परब्रह्मके साकार स्वरूप हैं। संसारके नेत्रोंको जीवन प्रदान करनेवाले हैं। उनका गौरवपूर्ण श्रीविग्रह भगवती लक्ष्मीके नेत्र-कमलोंद्वारा पूजित होता है। भगवान्की वह झाँकी वामन-अवतारकी है। मेघके समान उनका श्यामवर्ण तथा कोमल आकृति है। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न शोभा पाता है। वे कमल और वनमालासे विभूषित हैं। अनेक प्रकारके आभूषणोंसे सुशोभित हो भगवान् वामन रत्नयुक्त समुद्रके सदृश जान पड़ते हैं। पीताम्बरसे उनके श्याम विश्रहकी कान्ति ऐसी प्रतीत होती है, मानो चमकती हुई बिजलीसे घिरा हुआ खिंच मेघ शोभा पा रहा हो। उन भगवान् वामनका दर्शन करके जीव जन्म एवं संसारके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। उस नगरमें मेखला नामक महान् तीर्थ है, जिसमें स्नान करके मनुष्य शाश्वत वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है। वहाँ जगत्के स्वामी करुणासागर भगवान्

नृसिंहका दर्शन करनेसे मनुष्य सात जन्मोंके किये हुए घोर पापसे छुटकारा पा जाता है। जो मनुष्य मेखलामें गणेशजीका दर्शन करता है, वह सदा दुस्तर विघ्नोंके भी पार हो जाता है।

उसी मेघङ्कर नगरमें कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, जो ब्रह्मचर्यपरायण, ममता और अहङ्कारसे रहित, वेद-शास्त्रोंमें प्रवीण, जितेन्द्रिय तथा भगवान् वासुदेवके शरणागत थे। उनका नाम सुनन्द था। प्रिये ! वे शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले भगवान्के पास गीताके ग्यारहवें अध्याय—विश्वरूपदर्शनयोगका पाठ किया करते थे। उस अध्यायके प्रभावसे उन्हें ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति हो गयी थी। परमानन्द-सन्दोहसे पूर्ण उत्तम ज्ञानमयी समाधिके द्वारा इन्द्रियोंके अन्तर्मुख हो जानेके कारण वे निश्चल स्थितिको प्राप्त हो गये थे और सदा जीवन्मुक्त योगीकी स्थितिमें रहते थे। एक समय जब बृहस्पति सिंह राशिपर स्थित थे, महायोगी सुनन्दने गोदावरीतीर्थकी यात्रा आरम्भ की। वे क्रमशः विरजतीर्थ, तारा तीर्थ, कपिलासंगम, अष्टतीर्थ, कपिलाद्वार, नृसिंहवन, अम्बिकापुरी तथा करस्थानपुर आदि क्षेत्रोंमें स्नान और दर्शन करते हुए विवाहमण्डप नामक नगरमें आये। वहाँ उन्होंने प्रत्येक घरमें जाकर अपने ठहरनेके लिये स्थान माँगा, परन्तु कहीं भी उन्हें स्थान नहीं मिला। अन्तमें गाँवके मुखियाने उन्हें एक बहुत बड़ी धर्मशाला दिखाई दी। ब्राह्मणने साथियोंसहित उसके भीतर जाकर रातमें निवास किया। सबेरा होनेपर उन्होंने अपनेको तो धर्मशालाके बाहर पाया, किन्तु उनके और साथी नहीं दिखायी दिये। वे उन्हें खोजनेके लिये चले, इतनेमें ही

ग्रामपाल (मुखिये) से उनकी भेट हो गयी। ग्रामपालने कहा—‘मुनिश्रेष्ठ ! तुम सब प्रकारसे दीर्घायु जान पड़ते हो। सौभाग्यशाली तथा पुण्यवान् पुरुषोंमें तुम सबसे पवित्र हो। तुम्हरे भीतर कोई लोकोत्तर प्रभाव विद्यमान है। तुम्हरे साथी कहाँ गये ? और कैसे इस भवनसे बाहर हुए ? इसका पता लगाओ। मैं तुम्हरे सामने इतना ही कहता हूँ कि तुम्हरे-जैसा तपस्वी मुझे दूसरा कोई नहीं दिखायी देता। विप्रवर ! तुम्हें किस महामन्त्रका ज्ञान है ? किस विद्याका आश्रय लेते हो तथा किस देवताकी दयासे तुममें अलौकिक शक्ति आ गयी है ? भगवन् ! कृपा करके इस गाँवमें रहो ! मैं तुम्हारी सब सेवा-शुश्रूषा करूँगा।’

यों कहकर ग्रामपालने मुनीश्वर सुनन्दको अपने गाँवमें ठहरा लिया। वह दिन-रात बड़ी भक्तिसे उनकी सेवा-ठहल करने लगा। जब सात-आठ दिन बीत गये, तब एक दिन प्रातःकाल आकर वह बहुत दुःखी हो महात्माके सामने रोने लगा और बोला—‘हाय ! आज रातमें राक्षसने मुझ भाग्यहीनके बेटेको चबा लिया है। मेरा पुत्र बड़ा ही गुणवान् और भक्तिमान् था।’ ग्रामपालके इस प्रकार कहनेपर योगी सुनन्दने पूछा—‘कहाँ है वह राक्षस ? और किस प्रकार उसने तुम्हरे पुत्रका भक्षण किया है ?’

ग्रामपाल बोला—ब्रह्मन् ! इस नगरमें एक बड़ा भयङ्कर नरभक्षी राक्षस रहता है। वह प्रतिदिन आकर इस नगरके मनुष्योंको खा लिया करता था। तब एक दिन समस्त नगरवासियोंने मिलकर उससे ग्रार्थना की—‘राक्षस ! तुम हम सब लोगोंकी रक्षा करो। हम तुम्हरे लिये भोजनकी व्यवस्था किये देते हैं। यहाँ बाहरके जो पथिक रातमें आकर नींद लेने लगें, उनको खा जाना।’ इस प्रकार नागरिक मनुष्योंने गाँवके (मुझ) मुखिया-द्वारा इस धर्मशालामें भेजे हुए पथिकोंको ही राक्षसका आहार निश्चित किया। अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये ही उन्हें ऐसा करना पड़ा। तुम भी अन्य राहगीरोंके साथ इस घरमें आकर सोये थे; किन्तु राक्षसने उन सबोंको तो खा लिया, केवल तुम्हें छोड़ दिया है। द्विजोत्तम ! तुममें ऐसा

क्या प्रभाव है, इस बातको तुम्हीं जानते हो। इस समय मेरे पुत्रका एक मित्र आया था, किन्तु मैं उसे पहचान न सका। वह मेरे पुत्रको बहुत ही प्रिय था; किन्तु अन्य राहगीरोंके साथ उसे भी मैंने उसी धर्मशालामें भेज दिया। मेरे पुत्रने जब सुना कि मेरा मित्र भी उसमें प्रवेश कर गया है, तब वह उसे वहाँसे ले आनेके लिये गया। परन्तु राक्षसने उसे भी खा लिया। आज सबवेरे मैंने बहुत दुःखी होकर उस पिशाचसे पूछा—‘ओ दुष्टात्मन् ! तूने रातमें मेरे पुत्रको भी खा लिया। तुम्हारे पेटमें पड़ा हुआ मेरा पुत्र जिससे जीवित हो सके, ऐसा कोई उपाय यदि हो तो बता।’

राक्षसने कहा—ग्रामपाल ! धर्मशालके भीतर घुसे हुए तुम्हरे पुत्रको न जाननेके कारण मैंने भक्षण किया है। अन्य पथिकोंके साथ तुम्हारा पुत्र भी अनजानमें ही मेरा ग्रास बन गया है। वह मेरे उदरमें जिस प्रकार जीवित और रक्षित रह सकता है, वह उपाय स्वयं विधाताने ही कर दिया है। जो ब्राह्मण सदा गीताके ग्यारहवें अध्यायका पाठ करता हो, उसके प्रभावसे मेरी मुक्ति होगी और मेरे हुओंको पुनः जीवन प्राप्त होगा। यहाँ कोई ब्राह्मण रहते हैं, जिनको मैंने एक दिन धर्मशालेसे बाहर कर दिया था। वे निरन्तर गीताके ग्यारहवें अध्यायका जप किया करते हैं। इस अध्यायके मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित करके यदि वे मेरे ऊपर जलका छींटा दें तो निसन्देह मेरा शापसे उद्धार हो जायगा।

इस प्रकार उस राक्षसका सन्देश पाकर मैं तुम्हरे निकट आया हूँ।

ब्राह्मणने पूछा—ग्रामपाल ! जो रातमें सोये हुए मनुष्योंको खाता है, वह प्राणी किस पापसे राक्षस हुआ है ?

ग्रामपाल बोला—ब्रह्मन् ! पहले इस गाँवमें कोई किसान ब्राह्मण रहता था। एक दिन वह अगहनीके खेतकी क्यारियोंकी रक्षा करनेमें लगा था। वहाँसे थोड़ी ही दूरपर एक बहुत बड़ा गिर्द किसी राहीको मारकर खा रहा था। उसी समय एक तपस्वी कहाँसे आ निकले, जो उस राहीको बचानेके लिये दूरसे ही दिया दिखाते आ रहे

थे। गिर्द्ध उस राहीको खाकर आकाशमें उड़ गया। तब तपस्वीने कुपित होकर उस किसानसे कहा—‘ओ दुष्ट हलवाहे ! तुझे धिक्कार है। तू बड़ा ही कठोर और निर्दयी है। दूसरेकी रक्षासे मुँह मोड़कर केवल पेट पालनेके धंधेमें लगा है। तेरा जीवन नष्टप्राय है। अरे ! जो चोर, दाढ़वाले जीव, सर्प, शत्रु, अग्नि, विष, जल, गीध, राक्षस, भूत तथा बेताल आदिके द्वारा घायल हुए मनुष्योंकी शक्ति होते हुए भी उपेक्षा करता है, वह उनके वधका फल पाता है। जो शक्तिशाली होकर भी चोर आदिके चंगुलमें फँसे हुए ब्राह्मणको छुड़ानेकी चेष्टा नहीं करता, वह घोर नरकमें पड़ता और पुनः भेड़ियेकी योनिमें जन्म लेता है। जो वनमें मारे जाते हुए तथा गृध्र और व्याघ्रकी दृष्टिमें पड़े हुए जीवकी रक्षाके लिये ‘छोड़ो, छोड़ो’ की पुकार करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। जो मनुष्य गौओंकी रक्षाके लिये व्याघ्र, भील तथा दुष्ट राजाओंके हाथसे मारे जाते हैं, वे भगवान् विष्णुके उस परमपदको पाते हैं जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। सहस्र अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ मिलकर शरणागत-रक्षाकी सोलहवीं कलगके बराबर भी नहीं हो सकते। दीन तथा भयभीत जीवकी उपेक्षा करनेसे पुण्यवान् पुरुष भी समय आनेपर कुर्षीपाक नामक नरकमें पकाया जाता है।* तूने दुष्ट गिर्द्धके द्वारा खाये जाते हुए राहीको देखकर उसे बचानेमें समर्थ होते हुए भी जो उसकी रक्षा नहीं की, इससे तू निर्दयी जान पड़ता है; अतः तू राक्षस हो जा ?’

हलवाहा बोला—महात्मन् ! मैं यहाँ उपस्थित अवश्य था, किन्तु मेरे नेत्र बहुत देरसे खेतकी रक्षामें लगे थे, अतः पास होनेपर भी गिर्द्धके द्वारा मारे जाते हुए इस मनुष्यको मैं नहीं जान सका। अतः मुझ दीनपर आपको अनुग्रह करना चाहिये।

तपस्वी ब्राह्मणने कहा—जो प्रतिदिन गीताके

ग्यारहवें अध्यायका जप करता है, उस मनुष्यके द्वारा अभिमन्त्रित जल जब तुम्हारे मस्तकपर पड़ेगा, उस समय तुम्हें शापसे छुटकारा मिल जायगा।

यह कहकर तपस्वी ब्राह्मण चले गये और वह हलवाहा राक्षस हो गया; अतः द्विजश्रेष्ठ ! तुम चलो और ग्यारहवें अध्यायसे तीर्थके जलको अभिमन्त्रित करो। फिर अपने ही हाथसे उस राक्षसके मस्तकपर उसे छिड़क दो।

ग्रामपालकी यह सारी प्रार्थना सुनकर ब्राह्मणका हृदय करुणासे भर आया। वे ‘बहुत अच्छा’ कहकर उसके साथ राक्षसके निकट गये। वे ब्राह्मण योगी थे। उन्होंने विश्वरूपदर्शन नामक ग्यारहवें अध्यायसे जल अभिमन्त्रित करके उस राक्षसके मस्तकपर डाला। गीताके अध्यायके प्रभावसे वह शापसे मुक्त हो गया। उसने राक्षस-देहका परित्याग करके चतुर्भुज रूप धारण कर लिया तथा उसने



* अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ॥
शरणागतसंत्राणकलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
दीनस्योपेक्षणं कृत्वा भीतस्य च शरीरणः ॥
पुण्यवानपि कालेन कुर्षीपाके स पच्यते ।

(१८१। ८२—८४)



COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

जिन सहस्रों पथिकोंका भक्षण किया था, वे भी शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण किये चतुर्भुज रूप हो गये। तत्पश्चात् वे सभी विमानपर आरूढ़ हुए। इतनेमें ही ग्रामपालने रक्षससे कहा—‘निशाचर ! मेरा पुत्र कौन है ? उसे दिखाओ।’ उसके यों कहनेपर दिव्य बुद्धिवाले रक्षसने कहा—‘ये जो तमालके समान श्याम, चार भुजाधारी, माणिक्यमय मुकुटसे सुशोभित तथा दिव्य मणियोंके बने हुए कुण्डलोंसे अलङ्घृत हैं, हार पहननेके कारण जिनके कंधे मनोहर प्रतीत होते हैं, जो सोनेके भुजबंदोंसे विभूषित, कमलके समान नेत्रवाले, स्त्रिघरूप तथा हाथमें कमल लिये हुए हैं और दिव्य विमानपर बैठकर देवत्वको प्राप्त हो चुके हैं, इन्हींको अपना पुत्र समझो।’ यह सुनकर ग्रामपालने उसी रूपमें अपने पुत्रको देखा और उसे अपने घर ले जाना चाहा। यह देख उसका पुत्र हँस पड़ा और इस प्रकार कहने लगा।

पुत्र बोला—ग्रामपाल ! कई बार तुम भी मेरे पुत्र हो चुके हो। पहले मैं तुम्हारा पुत्र था, किन्तु अब देवता हो गया हूँ। इन ब्राह्मण-देवताके प्रसादसे वैकुण्ठधामको जाऊँगा। देखो, यह निशाचर भी चतुर्भुज रूपको प्राप्त हो गया। ग्यारहवें अध्यायके माहात्म्यसे यह सब लोगोंके साथ श्रीविष्णुधामको जा रहा है; अतः तुम भी इन ब्राह्मणदेवसे गीताके ग्यारहवें अध्यायका अध्ययन करो

और निरन्तर उसका जप करते रहो। इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारी भी ऐसी ही उत्तम गति होगी। तात ! मनुष्योंके लिये साधु पुरुषोंका सङ्ग सर्वथा दुर्लभ है। वह भी इस समय तुम्हें प्राप्त है; अतः अपना अभीष्ट सिद्ध करो। धन, भोग, दान, यज्ञ, तपस्या और पूर्तकर्मोंसे क्या लेना है। विश्वरूपाध्यायके पाठसे ही परम कल्याणकी प्राप्ति हो जाती है। पूर्णनन्दसन्दोह-स्वरूप श्रीकृष्ण नामक ब्रह्मके मुखसे कुरुक्षेत्रमें अपने मित्र अर्जुनके प्रति जो अमृतमय उपदेश निकला था, वही श्रीविष्णुका परम तात्त्विक रूप है। तुम उसीका चिन्तन करो। वह मोक्षके लिये प्रसिद्ध रसायन है। संसार-भयसे डरे हुए मनुष्योंकी आधि-व्याधिका विनाशक तथा अनेक जन्मके दुःखोंका नाश करनेवाला है। मैं उसके सिवा दूसरे किसी साधनको ऐसा नहीं देखता, अतः उसीका अध्यास करो।

श्रीमहादेवजी कहते हैं—यों कहकर वह सबके साथ श्रीविष्णुके परमधामको चला गया। तब ग्रामपालने ब्राह्मणके मुखसे उस अध्यायको पढ़ा। फिर वे दोनों ही उसके माहात्म्यसे विष्णुधामको चले गये। पार्वती ! इस प्रकार तुम्हें ग्यारहवें अध्यायकी माहात्म्य-कथा सुनायी है। इसके श्रवणमात्रसे महान् पातकोंका नाश हो जाता है।



श्रीमद्भगवद्गीताके बारहवें अध्यायका माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती ! दक्षिण-दिशामें कोल्हापुर नामका एक नगर है, जो सब प्रकारके सुखोंका आधार, सिद्ध-महात्माओंका निवासस्थान तथा सिद्ध-प्राप्तिका क्षेत्र है। वह पराशक्ति भगवती लक्ष्मीका प्रधान पीठ है। सम्पूर्ण देवता उसका सेवन करते हैं। वह पुराणप्रसिद्ध तीर्थ भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। वहाँ करोड़ों तीर्थ और शिवलिङ्ग हैं। रुद्रगया भी वहाँ है। वह विशाल नगर लोगोंमें बहुत विख्यात है। एक दिन कोई युवक पुरुष उस नगरमें आया। [वह कहींका राजकुमार था।] उसके शरीरका रंग गोरा, नेत्र

सुन्दर, ग्रीवा शङ्खके समान, कंधे मोटे, छाती चौड़ी तथा भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं। नगरमें प्रवेश करके सब ओर महलोंकी शोभा निहारता हुआ वह देवेश्वरी महालक्ष्मीके दर्शनार्थ उत्कण्ठित हो मणिकण्ठ तीर्थमें गया और वहाँ स्थान करके उसने पितरोंका तर्पण किया। फिर महामाया महालक्ष्मीजीको प्रणाम करके भक्तिपूर्वक स्तवन करना आरम्भ किया।

राजकुमार बोला—जिसके हृदयमें असीम दया भरी हुई है, जो समस्त कामनाओंको देली तथा अपने कटाक्षमात्रसे सारे जगत्की सृष्टि, पालन और संहार